रामायण

सन्तराम वत्स्य

राम की यह कथा

• •

राम की यह कथा सबसे पहले महर्षि वाल्मीकि ने रची, इसीलिए वे 'आदि कवि' कहलाये और उनकी यह कथा 'रामायण' आदि महाकाव्य कहा गया। इस महाकाव्य की रचना-प्रेरणा आदि कवि को कब-कैसे-कहाँ हुई—इस विस्तार में न जाकर इतना ही कहना काफी होगा कि करुण रस-सम्भूत यह महाकाव्य एक ऐसा वटवृक्ष है जिसे उपजीव्य बनाकर विविध साहित्य-रूपों की सृष्टि हुई है। 'रघुवंश', 'रामचरित मानस', 'कम्बरामायण', 'कृत्तिवास रामायण' आदि अनेक ग्रन्थ 'वाल्मीकि रामायण' के सहारे कालजयी हो गये! बताना न होगा कि प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में रामायण की रचना हुई है; आज भी हो रही है।

'मानस चतुःशती' के अवसर पर 'वाल्मीकि रामायण' का यह सचित्र हिन्दी सार-संक्षेप उन पाठकों की आवश्यकता को ध्यान में रख-कर प्रस्तुत है जो बृहदाकार और संस्कृत में होने के कारण 'वाल्मीकि रामायण' का रसास्वादन नहीं कर सकते। प्रतिष्ठित विद्वान् श्री सन्त-राम वत्स्य द्वारा सरस प्रवाहमयी भाषा में किया गया यह हिन्दी रूपान्तर संस्कृत से अनभिज्ञ सुधी पाठकों के लिए तो उपयोगी होगा ही, यह किशोर पाठकों को भारतीय साहित्य और संस्कृति की एक गौरवमयी जीवन्त उपलब्धि से भी सहज ही परिचित करायेगा।

—प्रकाशक

क्रम

बालकाण्ड	९
अयोध्याकाण्ड	३५
अरण्यकाण्ड	७९
किष्किन्धाकाण्ड	९६
सुन्दरकाण्ड	१०६
युद्धकाण्ड	११९

बालकाण्ड

तपस्वी और स्वाध्यायशील, परम विद्वान् देवर्षि नारद से एक बार महर्षि वाल्मीकि ने पूछा, "इस समय संसार में सद्गुणों की खान, वीर, धर्मात्मा, सत्यवादी और दृढ़ प्रतिज्ञ कौन है ? कौन ऐसा है जो ऊँचे चरित्र वाला, सबका हित करने वाला, विद्वान्, सामर्थ्यवान् और रूपवान हो ? ऐसा कौन है जो आत्म-विश्वासी, क्रोध के वशीभूत न होने वाला, दूसरों की निन्दा न करने वाला हो और संग्राम में जिसके कुपित होने पर देवता भी डरते हों ? हे महर्षि नारद ! आप अवश्य ही ऐसे किसी श्रेष्ठ पुरुष को जानते होंगे ! मैं इसके बारे में सुनना चाहता हूँ । मेरे मन में ऐसे उदात्त चरित्र को सुनने की बड़ी उत्सुकता है ।"

तीनों लोकों की जानकारी रखने वाले नारद मुनि वाल्मीकि की बात सुनकर प्रसन्न होकर बोले, "हे मुने ! आपने जिन बहुत से दुर्लभ गुणों के नाम लिए, उन सब से युक्त पुरुष के सम्बन्ध में मैं आपको बताता हूँ । इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए एकमात्र श्रीराम ही ऐसे आदर्श पुरुष हैं । वे मनस्वी, महाशक्तिशाली, धैर्यवान् और जितेन्द्रिय हैं । वे बुद्धिमान, नीतिकुशल, प्रभावशाली वक्ता, शत्रुओं के लिए काल के समान और सांचे में ढले जैसे सुगठित शरीर वाले हैं । उनके पुष्ट कन्धे, जानुओं को छूती लम्बी भुजाएं, शंख जैसी ग्रीवा, दोहरी ठोढ़ी, चौड़ी-चकली छाती और चौड़ा माथा है । उनकी बड़ी-बड़ी चमकती आँखें और चिकनी देह है । वे महापुरुषों के समस्त शुभ लक्षणों से युक्त हैं । वे धर्म के तत्व को जानने वाले, बात के धनी, प्रजा के सच्चे कल्याण-साधक, ज्ञानी, निर्मल चित्त, प्राणिमात्र और धर्म की रक्षा करने वाले, स्वधर्म-पालन में तत्पर, शास्त्र और शस्त्रविद्या में पारंगत हैं । वे प्रतिभावान, लोकप्रिय और स्वभाव के उदार हैं । वे गंभीरता में समुद्र के समान और धैर्य में हिमवान के समान हैं । वे भगवान विष्णु के समान बलवान और पूर्ण चन्द्र के समान प्रियदर्शन हैं । वे क्रोध में कालाग्नि के समान, क्षमा में पृथ्वी जैसे और सत्य में धर्मराज जैसे हैं । ये महाराज दशरथ के बड़े पुत्र हैं ।"

संक्षेप में देवर्षि नारद ने दशरथनन्दन राम का उदात्त चरित्र वाल्मीकि मुनि को कह सुनाया ।

इस पावन रामचरित्र को सुनने के बाद, वाल्मीकि मुनि ने अपने शिष्यों-सहित नारद जी का बहुत आदर-सत्कार किया।

नारद जी ने कहा कि अब मुझे जाने की आज्ञा दीजिये। वाल्मीकि जी ने उनसे दोबारा दर्शन देने और आश्रम को पवित्र करने की प्रार्थना की और वे चले गये।

नारद जी को गये अभी थोड़ी ही देर हुई थी कि वाल्मीकि जी शिष्यों-सहित तमसा नदी के तट पर स्नान के लिये गये। तमसा के तट पर पहुँचकर उन्होंने स्नान के लिये उपयुक्त घाट को देखकर अपने शिष्य भरद्वाज से कहा, "अरे भरद्वाज ! देख तो कितना बढ़िया घाट है। कीचड़ का तो यहाँ नाम भी नहीं है। पानी सत्पुरुष के मन की तरह निर्मल है। अब तुम इस कलश को एक ओर रख दो और मेरा वल्कल मुझे दे दो। मैं यहीं स्नान करूँगा।" भरद्वाज ने वल्कल वस्त्र दे दिया और वाल्मीकि चारों ओर की वनश्री को देखने लगे।

उनके पास ही क्रौंच पक्षियों का एक जोड़ा बैठा आपस में क्रीड़ा कर रहा था। तभी एक निषाद ने बाण मारकर उस जोड़े में से नर को मार डाला। खून से लथपथ घायल वह नर-पक्षी पंख फड़फड़ाता धरती पर गिर पड़ा और तड़पने लगा। उसे तड़पता देखकर उसकी साथिन क्रौंची करुण-कूजित करते हुए रो पड़ी। अभी-अभी जो पक्षियों का जोड़ा एक-दूसरे की चोंच में चोंच डाले क्रीड़ा कर रहा था, उनमें से एक को मरते और दूसरे को वियोग में रोते देखकर धर्मात्मा वाल्मीकि का मन करुणा से भर उठा। करुणा के वेग के कारण वे कहने लगे, "ओ दुष्ट निषाद ! तुझे कभी सुख-शान्ति न मिले, क्योंकि तूने अकारण ही क्रौंच के इस जोड़े में से कामातुर नर को मार डाला है।"[1] यह कह चुकने के बाद उन्होंने सहसा निकले अपने शब्दों पर जब विचार किया तो मन में सोचा, कि मैंने पक्षी के दुःख से दुखित होकर यह क्या कह डाला ?

वे बोले, "भरद्वाज, करुणार्द्र मैंने चार पादों और प्रत्येक पाद में समान अक्षरों वाला लयपूर्ण, गाया जाने योग्य जो वाक्य कहा है, यह तो छन्दमय है।"

भरद्वाज ने वाल्मीकि से सुनकर उस छन्दमय वाक्य को याद कर लिया। स्नान करके वे गुरु-शिष्य आश्रम को लौट आये। सब काम करते हुए भी वह श्लोक वाल्मीकि की स्मृति से नहीं हटा।

इतने में सृष्टिकर्ता चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा आश्रम में पधारे। वाल्मीकि जी ने उनका खूब आदर-सत्कार किया। जब दोनों बात करने बैठे तो भी प्रात:काल देखी वह घटना वाल्मीकि के मन से नहीं हटी। उनके अन्तःकरण को इस घटना ने ऐसा व्यथित कर दिया था कि भुलाए नहीं भूलती थी। उन्हें इस बात का खेद था कि क्रोध के कारण उन्होंने व्याध को शाप क्यों दे

1. मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
   यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः, काम-मोहितम् ॥

डाला। मुझ तपस्वी को तो क्रोध नहीं करना चाहिए था न !

यही सब सोचते-सोचते उन्होंने उस श्लोक को गुनगुना दिया। वे फिर चिन्ता में डूब गये कि क्यों उन्होंने शाप दे डाला।

ब्रह्मा जी ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा, "आप तो यों ही चिन्ता कर रहे हैं। मेरी इच्छा से ही आपने यह छन्दमयी रचना की है। आपकी वाणी पर सरस्वती आ विराजी है। इसलिये हे मुनिश्रेष्ठ ! अब आप नारद से सुने हुए वीर-वीर राम-चरित को छन्द-बद्ध कीजिये। मेरे अनुग्रह से रामचरित के अज्ञात अंश भी आपके मन के सामने प्रकट हो जायेंगे। इस काव्य में कही हुई आपकी कोई भी बात झूठी नहीं होगी। जब तक इस धरती पर पर्वत और नदियाँ रहेंगी, तब तक राम-कथा का प्रचार होता रहेगा।"

यह कहकर ब्रह्मा वहीं अन्तर्धान हो गये। इससे उनके शिष्य बड़े विस्मित हुए और बार-बार इस श्लोक का गान करने लगे। फिर वे बोले, "महर्षि का घनीभूत शोक ही श्लोक रूप हो गया।"

महर्षि वाल्मीकि ने मन में निश्चय किया कि मैं सम्पूर्ण रामचरित को इसी प्रकार श्लोक-बद्ध करूंगा।

व्याकरण-सम्मत भाषा, निर्दोष काव्य-रचना, रघुकुल-तिलक भगवान् राम का उदात्त चरित्र और दशग्रीव रावण के वध की कथा को उन्होंने पूरा कर लिया।

महर्षि वाल्मीकि रामकाव्य को पूरा करके सोचने लगे कि अब लोगों में इसका प्रचार कैसे हो कि तभी उनके आश्रम में रह रहे मुनि-वेषधारी राजकुमार लव और कुश ने आकर प्रणाम किया। लव और कुश का स्वर बड़ा मधुर था और स्मरण-शक्ति भी तेज। शस्त्र और शास्त्र दोनों में वे पारंगत थे, सो वाल्मीकि जी ने उन्हें रामायण का अध्ययन कराया।

रामायण पढ़ने और गाने में मधुर, सप्त स्वरों से युक्त ताल और लय में गेय, नव रसों और काव्य-गुणों से युक्त है ही, सो दोनों भाई उसका स्वर-सहित पाठ करने लगे। जो भी इस रामचरित को सुनता, करुण प्रसंगों में उसके नेत्र छल-छला पड़ते और गला रुंध जाता। राम का पावन चरित, तपस्वी वाल्मीकि द्वारा काव्य-रचना और मधुर कण्ठ वाले और रूपवान् लव-कुश द्वारा उसका गायन—श्रोताओं के सामने जैसे सारे पात्र जीवित हो उठते।

एक बार रामचरित को गाते लव-कुश घूमते-घामते अयोध्या नगरी में जा पहुँचे। अयोध्यापति राम ने उन्हें देखा तो आदर-सहित राजमहल में बुला लाये और सस्वर काव्य-पाठ करने को कहा। उन दोनों ने शास्त्रीय संगीत विधान की रीति से रामायण का गान किया। भगवान् राम उस संगीतमय काव्य को आत्म-विभोर होकर सुनने लगे।

सरयू नदी के किनारे कौशल नाम का एक प्रसिद्ध और विस्तृत जनपद है। कौशल जनपद की राजधानी अयोध्या नगरी है। अयोध्या में साफ-सुथरी, चौड़ी, सीधी सड़कें, सड़कों के दोनों ओर हरे-भरे वृक्षों की पांतें। सड़कों पर प्रतिदिन पानी का छिड़काव होता। चौराहों पर नागरिकों की भीड़ जुड़ती। नगरी चारों ओर से ऊँची दीवार से घिरी हुई है। दीवार में बड़े-बड़े फाटक और फाटकों को बन्द करने के लिये बड़े-बड़े किवाड़ लगे हैं। एक तरह की वस्तुओं के लिये एक बाजार, दूसरी तरह की वस्तुओं के लिये दूसरा। एक से एक बढ़कर शिल्पी और यन्त्रकार वहाँ रहते और काम करते। तरह-तरह के यन्त्र, शस्त्र और अस्त्र, उच्चकोटि के शिल्प वाले वस्त्र और आभूषण बाजारों में भरे पड़े थे। इतनी ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ इस नगरी में थीं, कि देखने के लिये गर्दन टेढ़ी करनी पड़ती। अट्टालिकाओं पर रंग-बिरंगे झंडे फहराते रहते थे। बाहरी दीवार पर जगह-जगह तोपें लगी हुई थीं। उसमें फूलों से भरे बड़े उद्यान, छोटी वाटिकाएँ और फलदार वृक्षों के बगीचे थे। दीवार से बाहर चारों ओर ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की कतार थी। नाटकघरों और नृत्यशालाओं का तो कहना ही क्या। दीवार के साथ,बाहर की ओर गहरी पानी से भरी खाई थी। विभिन्न देशों के व्यापारियों का वहाँ तांता लगा रहता। नगर के बीचोंबीच राजप्रासाद था और वहाँ से समान-विभक्त आठ सड़कें दीवार के फाटकों तक जाती थीं। बड़ी घनी बसी हुई थी यह अयोध्या नगरी। वेद-वेदांग को जानने वाले ब्राह्मण, लक्ष्य-वेध में सिद्धहस्त वीरक्षत्रिय, व्यापार से समृद्धि बढ़ाने वाले वैश्य और सेवाधर्म-परायण शूद्रों से सुशोभित वह नगरी महाराज दशरथ द्वारा सुशासित और सुरक्षित थी।

महाराज दशरथ की मन्त्री परिषद् में आठ सुयोग्य मन्त्री थे। वसिष्ठ और वामदेव राज-पुरोहित थे। वहाँ न्याय का शासन था। राजा प्रजा को बिना कष्ट पहुँचाये कर-संग्रह करते और फिर उसे प्रजा के कल्याण के लिये व्यय कर देते। उस नगरी में कोई ,चोर या दुराचारी व्यक्ति नहीं था। 'अयोध्या' अपने नाम को सार्थक कर रही थी। शत्रु इस नगरी की ओर आँख उठाने का साहस भी नहीं कर सकते थे।

कौशल जनपद की प्रजा राजा दशरथ के शासन में सुखी-समृद्ध थी किन्तु राजा दशरथ कोई सन्तान न होने के कारण उदास-चिन्तित रहते। पुत्र-प्राप्ति की चिन्ता में डूबे राजा दशरथ के मन में विचार आया कि यदि मैं पुत्र-कामेष्टि यज्ञ करूँ तो संभव है मेरी पुत्र-कामना पूरी हो जाये। उन्होंने अपनी मन्त्री परिषद् से यज्ञ के बारे में विचार-विमर्श किया और मन्त्री सुमन्त्र को पुरोहितों और गुरुजनों को बुलाने के लिये भेजा।

जब मन्त्रीवर सुमन्त्र वामदेव, जाबालि, कश्यप, वसिष्ठ आदि सब मुनियों और ब्राह्मणों को बुला लाये तो राजा ने उनका आदर-सत्कार करने के बाद अपने मन की बात कह सुनायी।

मुनियों और ब्राह्मणों ने राजा के विचार का अनुमोदन किया। राजा ने मन्त्रियों को

यज्ञ की प्रारम्भिक तैयारी करने का आदेश दिया। फिर राजा ने अन्तःपुर में रानियों को भी यज्ञ करने की बात बतायी। सूनी गोद वाली रानियाँ, भविष्य में यज्ञ के सुफल से पुत्र-प्राप्ति होगी, यह सोचकर प्रसन्न हो उठीं।

मन्त्री सुमन्त ने सुझाव दिया कि द्विज-श्रेष्ठ ऋष्यशृंग को यज्ञ का आचार्य-पद दिया जाये। कुलगुरु वसिष्ठ ने इसका समर्थन किया। राजाओं को यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रण भेजे गये। प्रसिद्ध ऋषि-मुनियों और विद्वान् ब्राह्मणों को आदर-सहित निमन्त्रित किया गया। सरयू के उत्तरी तट पर यज्ञ भूमि का निर्माण होने लगा। अजेय वीरों के संरक्षण में अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा छोड़ा गया।

एक वर्ष पूरा होने को आया। अब राजा दशरथ यज्ञ की दीक्षा लेने के लिये कुलगुरु वसिष्ठ के पास गये और उनसे यज्ञ के समस्त विधि-विधानों को पूरा करने की प्रार्थना की। कुलगुरु वसिष्ठ ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और तैयारी कराने लगे।

वसिष्ठ जी ने यज्ञकार्य में कुशल, परम धर्मात्मा, वयोवृद्ध तथा ज्ञानवृद्ध ब्राह्मणों, सेवकों, शिल्पियों, बढ़इयों, ज्योतिषियों, नटों, नर्तकों और कारीगरों को बुलाकर यज्ञ की तैयारी के लिये आवश्यक निर्देश दिये।

निमन्त्रित ऋषियों, ब्राह्मणों और राजाओं के लिये उनके योग्य भोजन और निवास की व्यवस्था की गयी। हाथियों और घोड़ों के लिये शालाएं बनायीं। सेवकों के शयन-विश्राम के लिये घर तथा विदेशी सैनिकों के लिये छावनियाँ बनायी गयीं। सभी जगह खाने-पीने के उत्तमोत्तम पदार्थों का संग्रह किया गया। नगर-निवासियों के लिये भी भोजन की व्यवस्था की गयी। महर्षि वसिष्ठ ने सभी-कर्मचारियों को सावधान करते हुये कहा, "यज्ञ में सम्मिलित होने वाले छोटे-बड़े सभी लोगों का यथोचित सत्कार-सम्मान होना चाहिये। भूलकर भी किसी के साथ ऐसा व्यवहार न किया जाय जिससे कोई समझे कि मेरा सम्मान नहीं हो रहा है। यज्ञ की तैयारी में लगे हुए शिल्पियों और सेवकों की सुख-सुविधा में किसी प्रकार की त्रुटि न हो।"

फिर महर्षि वसिष्ठ मन्त्रीवर सुमन्त को बुलाकर बोले, "मन्त्रीवर! इस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये समस्त धार्मिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को निमन्त्रित कीजिये। रघुकुल के पुराने सम्बन्धी मिथिला-नरेश जनक को, काशी नरेश को, महाराज दशरथ के श्वसुर केकय देश के राजा को, राजा के परम मित्र अंगराज रोमपाद को, कोसलराज भानुमान को और मगध देश के राजा प्राप्तिज्ञ को, स्वयं जाकर निमन्त्रित कीजिये।"

"पूर्वभारत, सिन्धु-सौवीर एवं सौराष्ट्र के नरेशों को राजा से आज्ञा लेकर विधिवत निमन्त्रित कीजिये। इसी प्रकार दाक्षिणात्य नरेशों तथा महाराज के प्रति स्नेह रखने वाले समस्त नरेशों को सपरिवार, नौकर-चाकरों सहित दूतों द्वारा बुलवाइये।"

यज्ञ की तैयारी में लगे लोग अपने-अपने कार्य की प्रगति का विवरण महर्षि वसिष्ठ को

नगरी गूंज उठी। ब्राह्मणों को अन्न-धन और गौओं का दान किया गया।

ग्यारह दिन बीत जाने पर कुमारों का नामकरण संस्कार किया गया। महर्षि वसिष्ठ ने कौशल्या के पुत्र का राम, कैकेयी के पुत्र का भरत और सुमित्रा के दो पुत्रों का लक्ष्मण और शत्रुघ्न नाम रखा। राजा ने ब्राह्मणों और नगर-वासियों को भोज दिया। स्त्रियों ने मंगल-गीत गाये। दान-दक्षिणा में हीरे-मोती बाँटे गये।

बड़े होने पर राजकुमारों को शिक्षा प्रारम्भ हुई। हाथी और घोड़े पर चढ़ना, बाण चलाना, रथ हाँकना, सभी कुछ उन्होंने सीख लिया। बचपन में राम और लक्ष्मण में एक-दूसरे के लिये बड़ा प्रेम था। वे एक दूसरे के बिना न खाते, न सोते और न खेलते। इसी तरह भरत और शत्रुघ्न में बड़ी प्रीति थी। वे भी एक दूसरे से अलग नहीं होते।

चारों राजकुमार प्रतिदिन वेद-शास्त्रों का अध्ययन करते, शस्त्रों-अस्त्रों को चलाना सीखते और माता-पिता की आज्ञा का पालन करते।

राजकुमार बड़े हो चले थे। राजा दशरथ एक दिन पुरोहित, मन्त्रियों तथा सम्बन्धियों के साथ बैठे राजकुमारों के विवाह के सम्बन्ध में विचार कर रहे थे कि इतने में द्वारपाल ने महामुनि विश्वामित्र के पधारने की सूचना दी। राजा ने पुरोहित को साथ लेकर महर्षि विश्वामित्र की अगवानी की। उन्हें लाकर आसन पर बिठाया और आदर-सत्कार किया।

महर्षि विश्वामित्र ने राजा का कुशल-मंगल पूछा। राजा दशरथ ने महर्षि के दर्शनों से कृतार्थ होकर महर्षि से आगमन का कारण पूछा और कहा, "मेरे योग्य जो सेवा हो बताएं। आप जो भी आज्ञा देंगे मैं उसका पूरी तरह पालन करूंगा।"

राजा के विनय-युक्त वचनों को सुनकर तपस्वी महात्मा विश्वामित्र परम प्रसन्न हुये और बोले, "नरेन्द्र ! आपने जो कुछ कहा, वह आपके कुल की परम्परा के अनुरूप ही है। आपके वचनों से उत्साहित होकर मैं अब अपने मन की बात बताता हूँ। मेरी बात को ध्यान से सुनिये और जैसा कि आपने कहा, उसको पूरा कीजिये।"

"मैं सिद्धि प्राप्त करने के लिये एक अनुष्ठान कर रहा हूँ। उसके लिये आवश्यक नियमों का पालन करना होता है। इस नियम-पालन में इच्छानुसार रूप धारण करने वाले दो राक्षस विघ्न-बाधा डाल रहे हैं। यह अनुष्ठान अब पूरा होने ही वाला है पर मारीच और सुबाहु नाम के दो राक्षस कहीं से आ धमके हैं और व्रत-अनुष्ठान को पूरा नहीं होने दे रहे हैं। वे बड़े शक्तिशाली और सुशिक्षित हैं। उन्होंने मेरे यज्ञस्थल में रक्त-मांस की वर्षा करके उसे अपवित्र कर दिया है। इस विघ्न के कारण मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ चला गया। और मुझे अनुष्ठान बन्द करके वह स्थान छोड़ना पड़ा। यदि मैं क्रोध करके उन्हें शाप देता हूं तो भी मेरा व्रत टूटता है, क्योंकि इस अनुष्ठान में क्रोध करना और शाप देना निषिद्ध है। अतः आप अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को मेरे साथ भेज दें ताकि वह उन राक्षसों से मेरे यज्ञस्थल की

रक्षा कर सके। यह अपने दिव्य तेज से उन विघ्न उपस्थित करने वाले राक्षसों का विनाश करने में समर्थ है। मैं राम को अनेक प्रकार की दिव्य शक्तियां प्रदान करूंगा जिनके कारण यह तीनों लोकों में प्रसिद्धि प्राप्त करेगा। राम के सामने वे मायावी राक्षस ठहर नहीं सकेंगे। उन दोनों राक्षसों के सिर पर मौत मंडरा रही है। उन्हें अपने बल का बड़ा घमण्ड है। राम के हाथों उनका अन्त सुनिश्चित है। इस समय पुत्र के लिये ममता को अपने हृदय में स्थान न देकर राम को मेरे साथ भेज दीजिये। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप उन राक्षसों को मरा समझें। पराक्रमी राम की वास्तविक शक्ति को मैं जानता हूँ। महर्षि वसिष्ठ और दूसरे तपस्वी भी उसकी दिव्य शक्तियों से सुपरिचित हैं। आप अपने कुलगुरु और मन्त्रियों से सलाह कर लें, यदि वे अनुमति दें तो राम को मेरे साथ भेज दीजिये। मैं राम को दस दिन अपने पास रखूंगा। अपने मन में किसी चिन्ता और शंका को स्थान मत दीजिये।"

पुत्र के प्रति अत्यन्त ममता होने के कारण, विश्वामित्र की बात सुनकर राजा दशरथ का शरीर कांपने और सिर चकराने लगा। जब कुछ देर बाद उनकी चेतना लौटी तो वे मारे डर के गिड़गिड़ाने लगे और दोबारा अचेत हो गये। उन्हें डर था कि किशोर राम राक्षसों से पार नहीं पा सकेगा और संकट में पड़ जायेगा। दूसरी ओर विश्वामित्र को वे वचन दे चुके थे कि आपकी आज्ञा का पालन करूंगा। राम को उनके साथ न भेजने से प्रतिज्ञा टूटती थी और महात्मा विश्वामित्र के शाप का भी डर था।

राजा ने गिड़गिड़ाते हुये महर्षि से कहा, "राम अभी सोलह वर्ष का भी नहीं है। वह राक्षसों के साथ क्या लड़ेगा! मैं अपनी सारी सेना को साथ लेकर स्वयं आपके साथ चलता हूँ। मेरे रहते राक्षस आपका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। राक्षस बड़े मायावी, छली-कपटी होते हैं। राम को युद्ध का अनुभव भी नहीं है। आप कृपा करके राम को ले जाने का हठ छोड़ दीजिये, क्योंकि राम के बिना मैं क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकूंगा। और यदि आप राम को ही ले जाना चाहते हैं तो मैं भी अपनी चतुरंगिणी सेना सहित साथ चलूंगा। अकेले राम को तो मैं किसी तरह नहीं भेज सकता। आप तो जानते ही हैं कि बुढ़ापे में मेरे सन्तान हुयी है। राम के सबसे बड़ा होने के कारण उसके प्रति मेरी ममता और स्नेह सर्वाधिक है। इसलिये मेरी आपसे बार-बार प्रार्थना है कि राम को मत ले जाइये। कृपया मुझे बताइये कि ये राक्षस कौन हैं और उनसे किस तरह निबटा जाये।"

राजा के पुत्र-स्नेह से भरे वचनों को सुनकर महात्मा विश्वामित्र बोले, "ब्रह्मा से मुंह-मांगा वरदान पाकर पुलस्त्यवंशी राक्षस रावण तीनों लोकों को पीड़ित कर रहा है। उसी के उकसाये हुये ये मारीच और सुबाहु नाम के राक्षस यज्ञ-कार्य में विघ्न उपस्थित कर रहे हैं।"

रावण का नाम सुनकर दशरथ भयभीत होकर बोले, "उस दुरात्मा रावण के सामने युद्ध में मैं नहीं टिक सकता। इसलिये आप मेरे पुत्र और अभागे मुझपर कृपा कीजिये, क्योंकि

आप हमारे देवता तथा गुरु हैं। महर्षे, उस दुर्जय रावण के सामने युद्ध में देवता भी नहीं टिक सकते, फिर मेरी तो सामर्थ्य ही क्या है! और ये मारीच और सुबाहु पराक्रमी दैत्य सुन्द और उपसुन्द के पुत्र हैं। वे मुझसे अनजाने नहीं हैं। उनके साथ भिड़ने के लिये मैं राम को कदापि नहीं भेज सकता।"

राजा दशरथ के यों स्पष्ट मना कर देने पर विश्वामित्र का क्रोध घृताहुति डाली हुई आग की तरह एकदम भड़क उठा। विश्वामित्र बोले, "राजन्! पहले मुंह मांगी वस्तु देने की प्रतिज्ञा करके अब आप टालमटोल कर रहे हैं। यह प्रतिज्ञा-भंग रघुकुल की रीति के योग्य नहीं है। यह तो इस महान् कुल के पतन का सूचक है। यदि आप इसीको उचित समझते हैं तो मैं जैसा आया था, वैसा ही लौट जाऊंगा। आप अपनी प्रतिज्ञा को झुठलाकर मन्त्रियों और मित्रों के बीच सुख से रहिये।"

महर्षि विश्वामित्र के क्रोधित होने से सभी भयभीत हो गये। कौन जाने उनके क्रोध से क्या अनिष्ट हो जाये! कहीं शाप ही न दे डालें। तब कुलगुरु वसिष्ठ राजा दशरथ से बोले "राजन्! आप धार्मिक होकर भी यह कैसा धर्मविरुद्ध कार्य कर रहे हैं। आपके कुल में ऐसा कभी, नहीं हुआ। जो अपनी प्रतिज्ञा से फिर जाता है, उसके सारे पुण्य कर्मों का फल नष्ट हो जाता है। इसलिये आप राम को इन महर्षि के साथ भेज दीजिये। महर्षि विश्वामित्र राम की सुरक्षा का आश्वासन दे रहे हैं। फिर आपको भय किस बात का है? आप नहीं जानते कि महात्मा विश्वामित्र अनेक दिव्य अस्त्रों के जानकार हैं। वे राक्षसों का संहार करने में स्वयं ही समर्थ हैं। ये तो आपके पुत्र राम के हितसाधन के लिये उसे आपसे मांग रहे हैं।"

कुलगुरु वसिष्ठ के इस सत्य परामर्श से राजा दशरथ आश्वस्त हुये और उन्होंने प्रसन्न मन से राम को विश्वामित्र जी के साथ भेजना स्वीकार कर लिया। राजा दशरथ ने राम और लक्ष्मण को अपने पास बुलाया और विश्वामित्र को सौंप दिया।

आगे-आगे महातपस्वी विश्वामित्र चले, उनके पीछे धनुष-बाण लिये श्री राम और लक्ष्मण जा रहे थे। अयोध्या से डेढ़ योजन (छः कोस) दूर चलने पर सरयू नदी के दक्षिण तट पर पहुंचकर विश्वामित्र राम से बोले, "वत्स! सरयू के जल से आचमन करो। मैं तुम्हें बला और अतिबला नाम से प्रसिद्ध मन्त्रों का उपदेश देता हूँ। इनके प्रभाव से तुम्हें न तो कभी थकावट होगी और न कभी ज्वर। साथ ही तुम्हारे रूप में भी कभी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होगा। तुम्हारे सोये होने या असावधान होने पर भी राक्षस तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं कर सकेंगे। बल-वीर्य में तुम्हारा सामना करने वाला इस पृथ्वी पर कोई नहीं होगा। ये विद्याएँ समस्त ज्ञान-विज्ञान की मातृ-स्वरूपा हैं। इनका अभ्यास कर लेने पर तुम्हें कभी भूख-प्यास का कष्ट नहीं होगा। ये बहुरूपिणी विद्याएं हैं। इनसे अनेक कार्यों को सिद्ध किया जा सकता है।"

तब श्रीराम ने आचमन किया और पुतात्मा विश्वामित्र से वे दोनों विद्याएँ ग्रहण कीं।

उस रात वे तीनों वहीं सरयू-तट पर घास-फूस बिछाकर सोये।

दूसरे दिन प्रातः विश्वामित्र जी ने उन्हें जगाया और प्रातःकृत्य करने के लिये कहा। दोनों राजकुमारों ने नहा-धोकर सन्ध्या की और गायत्री मन्त्र का जाप किया।

अब फिर यात्रा प्रारम्भ हुई। सरयू और गंगा के संगमस्थल पर उन्होंने त्रिपथगा गंगा के दर्शन किये। संगम के पास ही एक पवित्र आश्रम को भी उन्होंने देखा। वे रात को उसी आश्रम में रहे। आश्रम-वासियों ने उनका यथोचित सत्कार किया। रात को महात्मा विश्वामित्र ने दोनों राजकुमारों को अनेक मनोरंजक कथाएं सुनायीं।

प्रातः तीनों नदी तट पर आये और नाव पर बैठकर नदी पार की। नदी पार करके वे एक जंगल में प्रविष्ट हुये। बड़ा भयानक था यह जंगल। हिंसक जानवरों की भीषण गर्जना से गुंजायमान, कंटीली झाड़ियों और ऊंचे वृक्षों से भरा हुआ। कहीं कोई मार्ग दिखायी नहीं देता था। मनुष्य का तो आस-पास कहीं कोई चिह्न था ही नहीं। इस जंगल के ऐसा भयानक और निर्जन होने का क्या कारण है, यह श्रीराम ने विश्वामित्र जी से पूछा।

महर्षि विश्वामित्र जी बोले, "इच्छानुसार रूप धारण करने वाली ताटका नामक राक्षसी इसमें रहती है। एक हजार हाथियों जितनी शक्ति उसमें है। उसके पति का नाम सुन्द और पुत्र का नाम मारीच है। यह मारीच देवराज इन्द्र के समान शक्तिशाली है। विशाल शरीर, बड़ा-सा सिर और फैला हुआ उसका मुंह है। यह ताटका और उसका पुत्र मारीच यहाँ के निवासियों को बहुत सताते हैं। उन्हीं दोनों ने इस प्रदेश को उजाड़ डाला है। वह राक्षसी ताटका इस घोर वन में डेढ़ योजन (छः कोस) तक के क्षेत्र को घेरे रहती है। अब हम उसी ओर से जायेंगे, जहाँ ताटका रहती है। हे राम! तुम अपने बाहुबल से इस दुष्ट राक्षसी को मार डालो। मेरे कहने से आज तुम इस प्रदेश को राक्षसों के भय से मुक्त कर दो।"

महात्मा विश्वामित्र की यह बात सुनकर श्रीराम ने कहा, "कृपा करके बताइये कि यह राक्षसी इतनी बलशालिनी कैसे बन गयी?" तब विश्वामित्र जी ने उसके जन्म, वरदान और शाप की कथा सुनायी और कहा कि कहीं स्त्री समझकर उस पर दया मत दिखाना। राजपुत्र को प्रजा की रक्षा के लिये किसी दुराचारिणी स्त्री की हत्या भी करने में संकोच नहीं करना चाहिये। प्रजा-पालक राजा को ऊपर से पाप और दोषयुक्त दीखने वाले कार्यों को करना ही पड़ता है। इसलिये आज तुम इस महापापचारिणी राक्षसी का निःसंकोच वध कर डालो। पूर्वकाल में भी राजाओं ने पापचारिणी स्त्रियों का वध किया है। आज तुम भी मेरी आज्ञा से दया और घृणा छोड़कर इसे मार ही डालो।" मुनि की आज्ञा को सुनकर श्रीराम बोले, "अयोध्या से आते समय पिता जी ने कहा था कि मैं निःशंक होकर आपकी आज्ञा का पालन करने में तत्पर रहूँ। अतः मैं पिता के उपदेश और आपकी आज्ञानुसार ताटका का वध करूंगा। मैं गौ, ब्राह्मण और देश के हित के लिये आपके वचनों के अनुसार कार्य करने के लिये पूरी तरह तैयार हूँ।"

यह कहकर श्रीराम ने धनुष-बाण की टंकार की। उससे ऐसी तीखी ध्वनि निकली कि सारा जंगल गूंज उठा। सारे जंगल के जीव भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। यह ध्वनि ताटका ने भी सुनी। पहले तो वह भौचक्की-सी रह गयी किन्तु कुछ क्षणों बाद क्रोध से भरी उठी और जिस ओर से आवाज आयी थी, उसी ओर दौड़ पड़ी। दौड़ती और क्रोध से पागल वह बड़ी डरावनी लग रही थी। उसे आता देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा, "अरे लक्ष्मण, देखो तो सही इस ताटका राक्षसी को, कैसा भयंकर है इसका विशाल शरीर। लोग तो इसे देखकर मारे डर के मर जाते होंगे। यह माया के बल से दुर्जेय है। मैं अभी इसके नाक-कान काटकर, इसे लौट जाने के लिये विवश कर दूंगा। स्त्री होने के कारण इसे मारने के लिये मुझमें उत्साह नहीं है। मैं सोच रहा हूं कि इसे शक्तिहीन और गतिहीन कर दूं।"

श्रीराम यह कह ही रहे थे कि ताटका बाहें फैलाये गर्जती हुई राम की ओर झपटी। महर्षि विश्वामित्र ने उसे डांट दिया। फिर श्रीराम-लक्ष्मण को कल्याण-कामना करते हुये उन्हें विजय का आशीर्वाद दिया।

ताटका ने धूल का बादल-सा उड़ाकर राम-लक्ष्मण को घड़ी भर चक्कर में डाल दिया। फिर वह मायाविनी उन दोनों पर पत्थर बरसाने लगी। अब तो श्रीराम को क्रोध आ गया और उन्होंने बाणों से उस राक्षसी के दोनों हाथ काट डाले। इस पर वह कराह उठी और खड़ी होकर भयंकर गर्जना करने लगी। अब की बार लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट डाले। हाथ और नाक-कान कट जाने पर इच्छानुसार रूप धारण करने वाली वह राक्षसी अनेक प्रकार के रूप बनाकर श्रीराम-लक्ष्मण को भ्रम में डालती हुई छिप गयी। थोड़ी देर बाद फिर उसने दोनों राजकुमारों पर पत्थर बरसाने प्रारम्भ कर दिये।

विश्वामित्र यह सब देख ही रहे थे। उन्होंने श्रीराम से कहा, "हे राम! इस दुराचारिणी पापिनी पर दया मत दिखाओ। यह अपनी माया से फिर प्रबल न हो उठे, उससे पहले ही इसे मार डालो। सांझ होने वाली है। इसलिये इसे अभी मार डालना चाहिये क्योंकि, राक्षस सांझ के समय दुर्जेय हो जाते हैं।"

महर्षि विश्वामित्र के कहने पर श्रीराम ने बाणों की वर्षा करते हुए उसे घेर लिया। पर वह मायाविनी उस घेरे को तोड़कर गाज की तरह गर्जती हुई दोनों भाइयों पर टूट पड़ी। अब तो श्रीराम ने एक तीखा बाण मारकर उसकी छाती चीर डाली और वह धरती पर गिरकर मर गयी।

ताटका वध से सन्तुष्ट होकर ऋषि विश्वामित्र ने श्रीराम को आशीर्वाद दिया और कहा कि आज की रात यहीं रहेंगे। और प्रातः अपने आश्रम को जायेंगे।

प्रातःकाल नित्य-क्रियाओं से निवृत्त होकर महामुनि विश्वामित्र ने श्रीराम से कहा, "ताटका वध के कारण मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूं। तुमने महान् पराक्रम कर दिखाया है। मैं तुम्हें अनेक ऐसे अस्त्र प्रदान करूँगा जिनके प्रभाव से तुम अपने शत्रुओं पर विजयी होओगे।

मैं तुम्हें दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र और शत्रुओं के लिये अत्यन्त भयंकर ऐन्द्रचक्र दूंगा। इनके अतिरिक्त इन्द्र का वज्रास्त्र, शिव का त्रिशूल तथा ब्रह्मा का ब्रह्मशिर नामक अस्त्र भी दूंगा। ऐषीक और ब्रह्मास्त्र भी मैं तुम्हें प्रदान करूंगा। मोदकी और शिखरी नाम की दो गदाएं, धर्मपाश, कालपाश और वरुणपाश भी तुम्हें दूंगा।" यह कहते हुये महर्षि पूर्व की ओर मुंह करके बैठ गये और श्रीराम को अस्त्रों के प्रयोग की विधि बताने लगे। अस्त्रों के प्रयोग और संहार को भलीभांति सीख लेने के बाद तीनों आश्रम की ओर चल दिये। ताटका-वन से बाहर निकलने पर श्रीराम ने सामने के पर्वत की तलहटी में वृक्षों से घिरे स्थान की ओर संकेत करते हुये कहा, "महर्षि ! क्या वह सामने वाला स्थान आपका आश्रम है ? क्या यहीं वे दुराचारी राक्षस आपके यज्ञ-कार्य में विघ्न डालते हैं ?"

महर्षि बोले, "हां, यही वह सिद्धाश्रम है। यहां पूर्व काल में भगवान् वामन ने तपस्या की थी। मुझे यह आश्रम बहुत प्रिय है। यहीं वे राक्षस मेरे यज्ञ में विघ्न डालते हैं, जिनका नाश करने के लिये मैं तुम्हें ले आया हूं।"

दोनों राजकुमारों सहित महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में पधारने पर वहां तपस्या-आराधना करने वाले ऋषि-मुनि उनके स्वागत-सत्कार के लिये दौड़ आये।

कुछ देर विश्राम करने के पश्चात् श्रीराम ने महर्षि से प्रार्थना की, "आप आज ही यज्ञ की दीक्षा ग्रहण करके अनुष्ठान प्रारम्भ करें। हम उन बलशाली राक्षसों से निबट लेंगे।"

उनके ऐसा कहने पर महातपा विश्वामित्र यज्ञ की दीक्षा लेकर उसे सम्पन्न करने में लग गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल सन्ध्या-जाप आदि से निवृत्त होकर श्रीराम-लक्ष्मण ने यज्ञशाला में बैठे विश्वामित्र जी के चरणों में प्रणाम किया और बोले, "कृपया उन राक्षसों के यहां विघ्न डालने आने के समय और स्वभाव के बारे में हमें समझाइये जिससे हम चूक न जायें।"

वहां उपस्थित ऋषि-मुनियों ने श्रीराम से कहा, "महर्षि विश्वामित्र यज्ञ की दीक्षा ग्रहण कर लेने के कारण मौन व्रत का पालन कर रहे हैं। वे कुछ बोलेंगे नहीं। आप छः दिन और छः रात तक सावधान होकर यज्ञ की रक्षा करें।

श्रीराम और लक्ष्मण दिन-रात जागकर यज्ञ-स्थल और विश्वामित्र की रक्षा करते रहे। छठे दिन यज्ञ हो रहा था कि आकाश में बड़े जोर की गर्जना हुई। इसके तुरन्त बाद ही घटा की तरह दौड़ते हुये राक्षस यज्ञ-मण्डप की ओर झपटे। वहां पहुंचते ही उन्होंने रक्त की धाराएँ बरसाना प्रारम्भ कर दीं। यज्ञ भूमि को रक्त वर्षा से गीली देखकर जब श्रीराम ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई तो आकाश में वे मायावी राक्षस दिखायी दिये। श्रीराम उन राक्षसों को लक्ष्मण को दिखाते हुये बोले, "मैं अपने अस्त्र से इन्हें अभी भगाता हूँ, तुम देखते रहो। इन घृणित जीवों को मारने की मेरी इच्छा नहीं है।" यह कहकर उन्होंने मारीच की छाती

में ऐसा अस्त्र मारा जो उसे ठेलता हुआ दूर, बहुत दूर ले गया और समुद्र में जाकर गिरा दिया। श्रीराम ने लक्ष्मण को बताया कि इस अस्त्र की यही विशेषता है कि यह प्रतिपक्षी को दूर ले जाकर गिराता है किन्तु मारता नहीं। फिर श्रीराम ने एक अस्त्र का प्रयोग सुबाहु की छाती पर किया और वह लड़खड़ाकर गिर पड़ा और मर गया। उनके साथी राक्षस कुछ तो भय से भाग खड़े हुये और कुछ श्रीराम ने अस्त्रों द्वारा मार गिराये।

यज्ञ-विध्वंसकारी राक्षसों का विनाश हो जाने से सिद्धाश्रमवासी ऋषि-मुनियों की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। सभी श्रीराम-लक्ष्मण की प्रशंसा करने लगे और मंगल-आशीर्वाद देने लगे।

यज्ञ समाप्त होने पर विश्वामित्र जी ने राक्षसों के वध के लिये श्रीराम की बड़ी प्रशंसा की। फिर वे तीनों सन्ध्या-उपासना करने लगे। उस रात वे यज्ञशाला में ही सोये। जब प्रभात वेला हुई तो वे दोनों भाई प्रातःकाल के नित्य कर्मों से निवृत्त होकर एक साथ महर्षि विश्वामित्र तथा आश्रमवासी अन्य ऋषियों के पास गये। अग्नि के समान तेजस्वी महात्मा विश्वामित्र को प्रणाम करके श्रीराम ने निवेदन किया, "हे मुनिश्रेष्ठ! हम दोनों आपके दास हैं और सेवा के लिये उपस्थित हैं। आज्ञा दीजिये, हम क्या सेवा करें?"

उन दोनों राजकुमारों के इस प्रकार पूछने पर महर्षि विश्वामित्र बोले, "मिथिला के राजा जनक का यज्ञ प्रारम्भ होने वाला है, हम सब वहाँ चलेंगे। तुम दोनों भी हमारे साथ चलोगे। वहाँ एक अद्भुत धनुष है। तुम्हें उसे देखना चाहिये। पूर्वकाल में देवताओं ने जनक के किसी पूर्वज को वह धनुष दिया था। बड़ा अद्भुत है वह धनुष। ऐसा धनुष तुमने कभी देखा न होगा। उस धनुष पर कोई भी प्रत्यंचा नहीं चढ़ा सकता। तुम हमारे साथ चलोगे तो उस यज्ञ और धनुष दोनों को देखने का अवसर मिलेगा। राजा जनक देवताओं से प्राप्त उस शिवधनुष को देवता की तरह पूजते हैं।"

सारे आश्रमवासियों ने मिथिला-यात्रा का समर्थन किया। महर्षि विश्वामित्र ने ऋषि मण्डली और राम-लक्ष्मण सहित मिथिला के लिये प्रस्थान किया। सांझ तक वे शोणभद्र के तट पर जा पहुंचे और रात्रि वहीं काटने का निश्चय किया। सूर्यास्त होने पर उन्होंने स्नान और अग्निहोत्र किया। फिर वे सब ऋषिवर विश्वामित्र को घेर कर बैठ गये। महातेजस्वी श्रीराम ने तपोधन विश्वामित्र से शोणभद्र तटवर्ती सुरम्य प्रदेश के बारे में पूछा तो विश्वामित्र ने उस प्रदेश से सम्बन्धित कथा कह सुनायी। वास्तव में शोणभद्र का यह तटवर्ती प्रदेश महात्मा विश्वामित्र के पूर्वजों का प्रदेश था। यहीं उनके पिता का जन्म हुआ था और यहीं विश्वामित्र का। अपनी जन्म-भूमि से महर्षि को बड़ा प्यार था। सिद्धाश्रम में तो वे सिद्धि प्राप्त करने के विचार से गये थे। अब वे सिद्ध हो गये थे और फिर से यहीं हिमालय की इस उपत्यका में रहना चाहते थे।

कथा सुनाते-सुनाते आधी रात बीत गयी तो महर्षि ने सबको सोने के लिये कहा, क्योंकि

प्रातः फिर यात्रा करनी थी।

सभी ने कुशवंश की इस सुन्दर कथा को सुनाने के लिये उनका धन्यवाद किया और शयन करने के लिये चले गये।

दूसरे दिन प्रातः ही जगकर महर्षि विश्वामित्र ने श्रीराम-लक्ष्मण को जगाया और जल्दी तैयार हो जाने को कहा। जल्दी-जल्दी प्रातः कृत्यों को पूरा करके यह मण्डली आगे बढ़ी। शोणभद्र को पार करके, वनों को पार करते हुये वे पुण्य-सलिला गंगा के तट पर जा पहुंचे। आज की रात यहीं ठहरने का निश्चय हुआ। सभी ने गंगाजल में स्नानकर यात्रा की क्लान्ति को दूर किया। फिर सभी ने देवताओं और पितरों का तर्पण किया। सन्ध्या-अग्निहोत्र के बाद भोजन करके सभी महात्मा विश्वामित्र को घेरकर बैठ गये।

श्रीराम ने महर्षि से पुण्यतोया गंगा के अवतरण की कथा सुनाने की प्रार्थना की।

महर्षि ने गंगा की उत्पत्ति की पूरी कथा उपस्थित श्रोताओं को कह सुनाई। गंगा की कथा सुनकर श्रीराम-लक्ष्मण को बड़ा विस्मय हुआ। वे जितनी देर कथा सुनते रहे थे, उतनी देर इस मनोरम कथा के कारण समय कब बीत गया, इसका उन्हें पता ही नहीं चला। शेष रात्रि वे दोनों भाई कथा-प्रसंग पर विचार करते रहे और यों ही प्रभात हो गया। सारी रात एक क्षण के समान बीत गयी।

प्रातः सभी नित्य कृत्यों को कर चुके तब श्रीराम ने तपोधन विश्वामित्र जी के पास जाकर कहा, "महर्षि, गंगा पार करने के लिये नौका तैयार खड़ी है।"

सारी मण्डली गंगा पारकर विशाला नगरी की शोभा देखने लगी। श्रीराम-लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्र के साथ उस नगरी में गये। श्रीराम के पूछने पर महर्षि ने विशाला नगरी का इतिहास बताया। उस रात वे वहीं रहे। विशाला के राजा सुमति को जब पता लगा कि महर्षि विश्वामित्र उनकी नगरी में पधारे हैं तो वे उनका स्वागत-सत्कार करने आये और इस नगरी में पधारने के लिये उनका आभार माना।

दूसरे दिन यह मण्डली जनक की राजधानी मिथिला की ओर प्रस्थित हुई। मिथिला के उपवन में एक पुराना आश्रम था, जो अत्यन्त रमणीय होते हुये भी जनशून्य दिखायी देता था। श्रीराम ने उस मुनि-रहित आश्रम को देखकर विश्वामित्र जी से पूछा, "महर्षि! यह सुन्दर स्थान आश्रम जैसा दिखायी देता है पर यहां कोई भी ऋषि-मुनि दिखायी नहीं देता। इसका क्या कराण है?"

श्रीराम की जिज्ञासा का समाधान करने के लिये महर्षि विश्वामित्र बोले, "रघुनन्दन! पूर्वकाल में महात्मा गौतम इस आश्रम में तपस्या करते थे। उनकी पत्नी अहल्या उनकी सेवा में तत्पर रहकर, उनके साथ रहती थीं। एक बार वे महर्षि गौतम अपनी पत्नी अहल्या के आचरण से क्रुद्ध हुये और उन्होंने उसे शाप दे डाला। वे बोले, "दुष्टे! तू यहां चिरकाल तक निराहार—केवल वायुभक्षण करती हुई, राख पर सोती हुई कष्ट पायेगी। कोई

तुझे देख नहीं पायेगा। जब दशरथ नन्दन श्रीराम यहाँ आयेंगे, तभी तेरा उद्धार होगा। श्रीराम का आतिथ्य करने पर तेरे सारे पाप क्षीण हो जायेंगे और तू पहले जैसी होकर मेरे पास पहुंच जायेगी।' यह शाप देकर महर्षि गौतम वहाँ से चले गये। इसलिये हे राम! अब तुम पुतात्मा गौतम के इस आश्रम में चलो और देवरूपिणी महाभागा अहल्या का उद्धार करो।''

विश्वामित्र जी की बात सुनकर लक्ष्मण-सहित श्रीराम ने विश्वामित्र जी को आगे करके उस निर्जन आश्रम में प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने तपोदीप्त अहल्या को देखा। वे धूम से घिरी अग्निशिखा-सी जान पड़ती थीं। श्रीराम का दर्शनलाभ करके वे शाप-मुक्त हो गयीं। अब वे सभी को दिखने लगीं।

श्रीराम-लक्ष्मण ने महाभागा अहल्या के पांव छूकर नमस्कार किया। अहल्या को अपने पति गौतम का वचन स्मरण हो आया कि श्रीराम के यहाँ पधारने पर तुम शाप-मुक्त हो जाओगी। अहल्या ने उनका यथोचित सत्कार किया।

शाप-मुक्त अहल्या ने फिर से अपने पति गौतम का सान्निध्य प्राप्त किया और वे सुख से रहने लगे।

श्रीराम भी उनका आतिथ्य ग्रहण करने के पश्चात् महर्षि के साथ मिथिलापुरी को चले गये।

महाराज जनक के यज्ञ-मण्डप में पहुंचकर श्रीराम ने महर्षि से निवेदन किया, ''यहाँ रहने के लिये कोई स्थान निश्चित कर लीजिये।''

एक एकान्त स्थान को जहाँ पानी आदि की सुविधा थी, महर्षि ने अपने ठहरने के लिये चुना।

महाराज जनक को जब पता लगा कि तपोधन विश्वामित्र यज्ञ में पधारे हैं तो वे अपने पुरोहित शतानन्द को साथ लेकर उनका स्वागत करने गये।

विश्वामित्र जी का सत्कार करके उनके पधारने से महाराज जनक बहुत प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मण का परिचय पूछा। महर्षि ने दोनों राजकुमारों का परिचय दिया। परिचय पाकर राजा जनक और भी प्रसन्न हुए। विश्वामित्र जी ने राजा जनक को बताया कि ये राजकुमार आपके यहाँ सुरक्षित शिव-धनुष को देखना चाहते हैं।

साँझ होने लगी थी। महर्षि से अनुमति लेकर महाराज जनक लौट आये। श्रीराम-लक्ष्मण सहित विश्वामित्र भी विश्राम करने लगे।

दूसरे दिन प्रातः महाराज जनक ने प्रातःकृत्यों से निवृत्त होकर श्रीराम-लक्ष्मण सहित विश्वामित्र को बुलाया और उनका आदर-सत्कार करने के बाद बोले, ''हे तपोधन! मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ?''

महात्मा जनक के पूछने पर मुनिवर विश्वामित्र बोले, ''महाराज दशरथ के ये पुत्र श्रीराम

और लक्ष्मण उस विख्यात शिव-धनुष को देखना चाहते हैं जो आपके पास सुरक्षित रखा हुआ है। कृपया उसे इन्हें दिखा दीजिए जिससे इनकी इच्छा पूरी हो जाये और ये अपनी राजधानी को लौट जायें।"

महामुनि के कहने पर राजा जनक बोले, "ब्रह्मर्षे ! मैं इस धनुष का इतिहास और इसे रखने का प्रयोजन आपको बताता हूँ। निमि के पुत्र राजा देवरात के नाम से विख्यात थे। उन्हीं को धरोहर के रूप में यह धनुष प्राप्त हुआ था। कहते हैं, पूर्वकाल में दक्ष-यज्ञ-विध्वंस के समय भगवान शंकर ने विनोद के साथ रोषपूर्वक इस धनुष को उठाकर देवताओं से कहा कि मैं यज्ञ में अपना भाग चाहता था किन्तु आपने वह नहीं दिया, इसलिए मैं इस धनुष से आप सबके सिर काट डालूँगा। यह सुनकर सब देवता उदास हो गये और भगवान् शंकर को मनाने लगे। तब भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर वह धनुष देवताओं को सौंप दिया। यही वह प्रसिद्ध धनुष है।

एक दिन मैं यज्ञ-स्थल के लिए भूमि को समतल करने के लिए हल चला रहा था कि हल की नोक से यह सीता प्रकट हुई। धरती की पुत्री यह सीता अवस्था पाकर सयानी हुई। इस कन्या के विवाह के बारे में मैंने यह निश्चय किया कि जो भी पराक्रमी वीर इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा देगा, मैं उसी के साथ इसका विवाह करूंगा। अनेक राजाओं ने इसे वरण करने की इच्छा व्यक्त की किन्तु मैंने उन्हें अपनी शर्त बता दी। तब वे मिथिला में आ-आकर इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने का प्रयत्न करने लगे, किन्तु उनमें से कोई भी इस शिव-धनुष को हिला तक नहीं सका। मैंने उनमें से प्रत्येक को सीता का वरण करने के अयोग्य समझा। इस पर वे क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने मिथिला को चारों ओर से घेर लिया था। उन्होंने समझा कि मैंने उनका अपमान किया है और इस अपमान का बदला लेने के लिए उन्होंने नगर-निवासियों को सताना प्रारम्भ कर दिया। हे मुनिश्रेष्ठ ! वे राजा पूरे एक वर्ष तक मिथिला को घेरे पड़े रहे। इस एक वर्ष में मेरे सामने भयंकर संकट उपस्थित हो गया और मैं बहुत दुःखी हुआ। इस विपत्ति काल में मैंने देवताओं की आराधना-उपासना का सहारा लिया। देवताओं ने प्रसन्न होकर मुझे चतुरंगिणी सेना प्रदान की जिसकी सहायता से मैंने उन पापी राजाओं को मार भगाया। मुनिश्रेष्ठ ! यह इस धनुष की कथा है। अब मैं इसे श्रीराम और लक्ष्मण को दिखाता हूँ। तपोधन मुनिश्रेष्ठ ! यदि श्रीराम इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा दें तो मैं अपनी पुत्री सीता का इनके साथ विवाह करके चिन्तामुक्त होऊं।"

राजा जनक की बात सुनकर महामुनि विश्वामित्र बोले, "राजन् ! आप श्रीराम को अपना धनुष दिखाइये।"

राजा जनक ने तुरंत मन्त्रियों को आज्ञा दी कि उस धनुष को यहाँ मंगवाइये। राजा से आज्ञा मिलते ही पांच सौ जवान आठ पहियों वाली गाड़ी पर लोहे के सन्दूक में रखे उस धनुष को ले आये। राजा जनक ने सन्दूक का ढक्कन खोलकर धनुष को दिखाते हुए कहा,

"ऋषिवर, यह है वह प्रसिद्ध धनुष। आज तक कोई भी इस पर प्रत्यंचा नहीं चढ़ा सका। मनुष्यों की तो बात ही क्या देवता, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर भी इस पर प्रत्यंचा चढ़ाने में असमर्थ रहे। यहाँ तक कि कोई इसे हिला-डुला भी नहीं सका। श्रीराम-लक्ष्मण इसे देखना चाहते हैं तो देखें।"

उस धनुष को देखते हुए श्रीराम ने कहा, "मैं इस धनुष को छूकर देखता हूँ और इसे उठाने तथा प्रत्यंचा चढ़ाने का प्रयत्न भी करूंगा।"

तब राजा जनक और महात्मा विश्वामित्र ने एक साथ उन्हें प्रयत्न करने के लिए कहा। श्रीराम ने धनुष को मध्य भाग से पकड़कर ऐसे उठा लिया जैसे यह कोई साधारण-सा धनुष हो और उस पर प्रत्यंचा भी चढ़ा दी। आस-पास खड़े राजपुरुष आश्चर्य-चकित हो यह सब देख रहे थे। प्रत्यंचा चढ़ाने के बाद श्रीराम ने उसे तानकर उसकी डोर को ज्यों ही जोर से कान तक खींचा, वह बीच में से टूटकर दो टुकड़े हो गया। उस धनुष के टूटने से ऐसी गंभीर ध्वनि उत्पन्न हुई जैसे कोई पर्वत फट पड़ा हो। राजा जनक, महर्षि विश्वामित्र और श्रीराम-लक्ष्मण के अतिरिक्त वहाँ खड़े सब लोग लड़खड़ाकर गिर पड़े। कुछ क्षण बाद राजा जनक ने हाथ जोड़कर विश्वामित्र जी से कहा, "भगवन्! आज मैंने श्रीराम के बल-पराक्रम को अपनी आँखों से देख लिया। इस शिव-धनुष को सहज ही उठाकर इस पर प्रत्यंचा चढ़ाना और डोर खींचने पर इसका टूट जाना ये ऐसे अद्भुत कार्य हैं जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। मेरी पुत्री सीता दशरथ नन्दन श्रीराम को पति-रूप में प्राप्त करके हमारे कुल का नाम उज्ज्वल करेगी। मैंने उसके विवाह के लिए जो शर्त लगायी थी, वह आज श्रीराम ने पूरी कर दी। मैं प्राणों से भी प्यारी अपनी पुत्री सीता को श्रीराम को सौंपता हूँ। उसे योग्य पति को देते हुए मैं निश्चिन्त हुआ। आज मेरी प्रसन्नता का पारावार नहीं है। मैं बड़ा सौभाग्यशाली हूँ। अब यदि आप आज्ञा दें तो मैं तुरन्त अपने मन्त्रियों को रथ लेकर अयोध्या भेजूं ताकि वे यह शुभ समाचार महाराज दशरथ को पहुंचा दें और उन्हें सम्मानपूर्वक यहाँ ले आयें। वे उन्हें बता दें कि आपके साथ श्रीराम-लक्ष्मण मिथिला पधारे हैं।"

विश्वामित्र ने राजा जनक की बात का समर्थन किया। तब धर्मात्मा जनक ने मन्त्रियों को महाराज दशरथ को सारा समाचार देने और मिथिला बुला लाने के लिए भेज दिया।

राजा जनक द्वारा भेजे हुए दूत चौथे दिन अयोध्या पहुँचे। महाराज दशरथ से उन्होंने राजा जनक का सन्देश कह सुनाया।

सन्देश-वाहकों से शुभ समाचार सुनकर राजा दशरथ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने कुलगुरु वसिष्ठ और मंत्रियों को यह शुभ समाचार सुनाया और उनकी सम्मति मांगी। सभी ने अनुकूल सम्मति दी और यह निश्चित हुआ कि दूसरे दिन प्रातः मिथिला के लिए प्रस्थान किया जाए।

दूसरे दिन प्रातः राजा दशरथ ने अपने सचिव सुमंत्र को बुलाकर यात्रा के सम्बन्ध में

आवश्यक निर्देश दिये।

वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप तथा मार्कण्डेय प्रभृति ऋषियों, ब्राह्मणों, सम्बन्धियों, प्रतिष्ठित नागरिकों और चतुरंगिणी सेना-सहित महाराज दशरथ ने मिथिला के लिए प्रस्थान किया। चौथे दिन उन्होंने मिथिला की सीमा में प्रवेश किया। दूतों से राजा दशरथ के शुभागमन का समाचार पाकर राजा जनक उनके स्वागत-सत्कार के लिए पहुँचे। उनके मिथिला पधारने पर राजा जनक ने अपना अहोभाग्य समझा। वसिष्ठ आदि का दर्शन और चरण-स्पर्श करके राजा जनक बड़े प्रसन्न हुए। सभी के निवास और भोजन-शयन की समुचित व्यवस्था की गई थी। राजा जनक ने उनसे निवेदन किया कि कल प्रातः आप विवाह विधि सम्पन्न करने के लिए मेरे राज-प्रासाद में पधारें।

राजा दशरथ ने कहा,"जैसा आप कहेंगे, वैसा ही होगा।" यह सब निश्चित कर राजा जनक महल में लौट आए।

श्रीराम और लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्र के साथ अपने पिता राजा दशरथ के पास गए और उनकी चरण वन्दना की।

दूसरे दिन प्रातः जनक ने अपने पुरोहित शतानन्द जी से कहा, "हे द्विजश्रेष्ठ, मेरे भाई कुशध्वज इक्षुमती नदी के तट पर बसी संकाश्या नगरी में निवास कर रहे हैं। मैं चाहता हूं कि इस शुभ अवसर पर वे यहां अवश्य पधारें।" उसी समय संकाश्या को तेज घोड़ों पर सवार दूत भेज दिए गए। दूतों से भाई का सन्देश सुनकर कुशध्वज मिथिला पधारे।

राजा जनक ने अपने मंत्री सुदामन को महाराज दशरथ के पास जाकर उन्हें पुत्रों, पुरोहितों और मंत्रियों सहित बुला लाने को कहा। बुलावा आने पर महाराज दशरथ पुत्रों-पुरोहितों और मित्रों-मंत्रियों सहित विवाह-मण्डप में पहुंचे।

वहां पहुंचकर राजा दशरथ ने जनक से कहा, "महाराज! आप जानते ही हैं कि महर्षि वसिष्ठ हमारे कुलगुरु हैं। हम सभी कार्यों में इनके उपदेश और आदेश का पालन करते हैं। यदि महात्मा विश्वामित्र तथा अन्य उपस्थित द्विजश्रेष्ठ आज्ञा दें तो महात्मा वसिष्ठ आपको हमारी वंश-परम्परा का परिचय दें?"

सबने महाराज दशरथ की बात का अनुमोदन किया। तब ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने इक्ष्वाकु वंश की उत्पत्ति से लेकर महाराज दशरथ के पुत्रों तक की वंशावली बताई। इस यशस्वी वंश के धर्मात्मा, वीर और सत्यवादी होने की बात कहते हुए उन्होंने राजा जनक से निवेदन किया कि आप अपनी दोनों पुत्रियों, सीता और उर्मिला को श्रीराम और लक्ष्मण के लिए पत्नी-रूप में सौंपें।

महर्षि वसिष्ठ जब कह चुके तो राजा जनक ने अपने वंश का परिचय देते हुए अन्त में कहा, "मेरे पिता ह्रस्वरोमा के दो पुत्रों में मैं बड़ा और कुशध्वज छोटा है। कुशध्वज संकाश्या के नगर-राज्य पर शासन करता है और मैं मिथिला पर। मैं अपनी पुत्री सीता को श्रीराम के

लिए और उर्मिला को भी लक्ष्मण के लिए समर्पित करता हूं । आप इन्हें बहुओं के रूप में स्वीकार करें । मैं वाग्दान की इस प्रतिज्ञा को तीन बार दोहराता हूं ।'' फिर कुछ रुककर राजा जनक बोले, "हे नरेन्द्र ! अब श्रीराम और लक्ष्मण से इनके कल्याण के लिए गोदान करवाइये । तत्पश्चात् नान्दीमुख श्राद्ध का कार्य सम्पन्न कीजिए । इसके बाद विवाह-संस्कार सम्पन्न होगा । आज मघा नक्षत्र है । आज से तीसरे दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र की शुभ वेला में विवाह सम्पन्न होगा । आज श्रीराम-लक्ष्मण के मंगल के लिए ब्राह्मणों को यथेच्छ दान दीजिए । दान से सदा कल्याण होता है ।''

जब राजा जनक अपनी बात कह चुके तो वसिष्ठ-सहित विश्वामित्र बोले, "आप दोनों नृपश्रेष्ठ महान् राजवंशों के उत्तराधिकारी हैं । आज आपके इन दोनों कुलों में जो नया सम्बन्ध स्थापित हो रहा है, वह सर्वथा एक-दूसरे के योग्य है । रूप-गुण में भी सीता और उर्मिला श्रीराम-लक्ष्मण के अनुरूप हैं । पर मुझे इसके अतिरिक्त कुछ और भी कहना है । ये जो आपके छोटे भाई धर्मात्मा कुशध्वज हैं, इनके भी दो कन्याएं हैं । वे भी रूप-गुण में प्रसिद्ध हैं । मैं चाहता हूं कि उन दोनों का आप भरत और शत्रुघ्न से विवाह कर दें ।''

वसिष्ठ जी से अनुमोदित विश्वामित्र के ये वचन सुनकर राजा जनक बोले,"मैं अपना और अपने कुल का परम सौभाग्य समझता हूं कि मुनियों में श्रेष्ठ आप दोनों धर्मात्मा मुझे इक्ष्वाकु-वंश के साथ सम्बन्ध जोड़ने के योग्य समझ रहे हैं । आप जो कह रहे हैं, मैं वैसा ही करूंगा । प्रिय कुशध्वज की एक कन्या भरत को और दूसरी शत्रुघ्न को ब्याह दी जाएगी । हे महर्षे ! चारों राजकुमार एक ही दिन हमारी चारों कन्याओं का पाणि ग्रहण करें ।'' यह कहकर नृप-श्रेष्ठ जनक उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर बोले, "मुनि श्रेष्ठों ! मैं आपका शिष्य हूं । आपने हमारी बेटियों का सुयोग्य सम्बन्ध कराकर हमारे ऊपर महान् उपकार किया है । मिथिला को भी आप अयोध्या की भांति अपना ही समझें और मेरे योग्य सेवा बताएं ।''

महाराज दशरथ ने अपने विश्राम-स्थान पर जाने की आज्ञा चाही जिससे वे विवाह-सम्बन्धी मांगलिक कृत्यों को सम्पन्न कर सकें । वे महर्षि वसिष्ठ और विश्वामित्र के साथ वहां से चले गए । दूसरे दिन चारों राजकुमारों से हजारों गौओं का दान करवाया । उनके सींग सोने के मढ़े हुए थे । वे सब गाएं बछड़ों वाली और दुधारू थीं । दूध दुहने के लिए कांसे के बर्तन भी साथ दिये गये । इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों को बहुत-सा धन दान दिया ।

दोपहर बाद केकय देश से भरत के मामा युधाजित आ पहुंचे । वास्तव में वे अपने पिता—भरत के नाना के कहने से भरत को अपने यहां ले जाने आए थे । जब वे अयोध्या पहुंचे तो यह पता लगने पर कि सभी मिथिला गये हैं, मिथिला चले आए । कुशल-मंगल पूछने-बताने के पश्चात् राजकुमार युधाजित ने अपने आने का उद्देश्य बताया ।

दूसरे दिन निश्चित समय पर विवाह-योग्य वेश-भूषा में सजे चारों राजकुमारों सहित महाराज दशरथ कुलगुरु वसिष्ठ और महामुनि विश्वामित्र को आगे कर राजा जनक की

यज्ञशाला में पहुंचे।

विवाह मण्डप खूब सजा हुआ था। मध्य भाग में वेदी बनाई गई थी। यज्ञ और पूजा की सारी वस्तुएं एकत्र की गई थीं। पुरोहित शतानन्द तथा वामदेव जी ने विवाह-संस्कार प्रारम्भ कराया। बहुमूल्य वस्त्रों और रत्नजटित आभूषणों से सजी चारों राजकुमारियां वहां बैठी यज्ञाग्नि की शिखाओं की तरह तेजस्विनी लग रही थीं।

सर्वप्रथम श्रीराम ने सीता जी का पाणि ग्रहण किया। फिर लक्ष्मण ने उर्मिला का, भरत ने माण्डवी का और अन्त में शत्रुघ्न ने श्रुतकीर्ति का पाणि ग्रहण किया। सम्पूर्ण विवाह-विधि सम्पन्न हुई।

चारों राजकुमार पत्नियों और परिजनों सहित मंगल-वाद्यों के साथ जनवासे में लौट गये।

दूसरे दिन ब्रह्मर्षि विश्वामित्र राजा दशरथ और जनक से विदा लेकर उत्तर पर्वत पर जहां कौशिकी के तट पर उनका आश्रम था, लौट गये।

महाराज दशरथ भी अयोध्या लौटने की तैयारी करने लगे। राजा जनक ने पुत्रियों को दहेज के रूप में गौएं, कम्बल, कालीन तथा रेशमी और सूती वस्त्र दिये। सजे हुए हाथी, घोड़े, रथ और पालकियां तथा दास-दासियां भी दी गईं। इसके अतिरिक्त एक करोड़ सोने की मोहरें, हीरे-मोती तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएं प्रदान कीं।

राजा जनक से विदा लेकर महाराज दशरथ प्रसन्न-वदन अयोध्या को लौट चले। यह यात्रा प्रारम्भ हुई ही थी कि तरह-तरह के अमंगल-सूचक शकुन होने लगे। साथ ही कुछ ऐसे शकुन भी हुए जो मंगलसूचक थे। चिन्तित राजा दशरथ ने महर्षि वसिष्ठ से इनके बारे में पूछा तो वे बोले, "महाराज! कोई भयानक घटना घटने वाली है किन्तु शीघ्र ही वह भय दूर भी हो जायेगा, इसलिए चिन्ता का कोई कारण नहीं है।"

इसके कुछ देर बाद ही बड़े जोर से आंधी चलने लगी। धूल के कारण कुछ भी दिखाई नहीं देता था। मार्ग के वृक्ष उखड़ कर गिरने लगे। राह चलतों के पैर उखड़ने लगे और हाथी-घोड़े मार्ग से बिदक गये। आगे का मार्ग दिखना बन्द हो गया।

और तभी महाराज दशरथ ने सामने से आते भगवान् परशुराम को देखा। क्षत्रियों का मानमर्दन करने के लिए परशुराम प्रसिद्ध थे। जटा-जूट से मण्डित और तेज से चमकता उनका चेहरा, वे क्रोधित होने के कारण बड़े भयानक लग रहे थे। उनके कन्धे पर चमकता हुआ फरसा और हाथ में लिया धनुष उन्हें और भी उग्र बना रहा था।

उन्हें इस प्रकार क्रोध में भरा आता देख महर्षि वसिष्ठ अन्य मुनियों से बोले कि क्षत्रिय द्वारा अपने पिता के वध का बदला तो ये बहुत ले चुके हैं। इनका क्रोध तो शान्त हो चुका था। फिर आज ये क्यों क्रोधित हैं, कुछ समझ में नहीं आता!

वे ऋषि-मुनि उनका आदर-सत्कार करने के लिए उनके पास गये। ऋषियों द्वारा कहे

गये, प्रशंसा और सत्कारपूर्ण वचनों को सुनकर वे श्रीराम से बोले, "श्रीराम ! तुम्हारे बल-पराक्रम की बहुत-सी बातें मैंने सुनी हैं। शिव-धनुष के तोड़े जाने का समाचार भी मैंने सुन लिया है। तुमने ऐसा कार्य कर दिखाया है, जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। मैं एक दूसरा धनुष लेकर आया हूँ। हां, तो जरा मेरे सामने इस धनुष पर प्रत्यंचा लगाकर बाण चढ़ाकर दिखाओ। यदि तुम इस धनुष पर शर-सन्धान कर लोगे तो फिर मैं तुम्हारे साथ द्वन्द्व-युद्ध करूंगा। उससे तुम्हारे बल-पौरुष की अच्छी तरह जांच हो जायेगी।

अतुल पराक्रमी भगवान परशुराम की बात सुनकर राजा दशरथ ने हाथ जोड़कर गिड़-गिड़ाते हुए कहा, "हे तपस्वी ब्राह्मण श्रेष्ठ ! क्षत्रियों से पर्याप्त बदला ले लेने के बाद आपका क्रोध शान्त हो चुका है और आपने प्रतिज्ञा पूर्वक शस्त्र उठाना छोड़ दिया है। इसलिए मेरे इन बालक पुत्रों को अभयदान देने की कृपा करें। मुझे आपसे बहुत डर लग रहा है। आपके क्रोध को मैं अपने सर्वनाश का कारण समझता हूं। यदि राम को कुछ हो गया तो हम जीवित नहीं बचेंगे।"

पर भगवान् परशुराम ने राजा दशरथ की बात को अनसुना करते हुए राम से कहा, "ये दो धनुष सब धनुषों में श्रेष्ठ थे। विश्वकर्मा के बनाये ये धनुष बड़े प्रबल थे। उनमें से एक भगवान शंकर के पास था और उसे तुम तोड़ चुके हो। और दूसरा यह मेरे पास है। अब तुम इस पर बाण चढ़ाकर दिखा दो तो फिर मेरा और तुम्हारा द्वन्द्व-युद्ध होगा।"

श्रीराम पिता के सामने द्विजश्रेष्ठ परशुराम को कुछ कहने में संकोच कर रहे थे परन्तु अब उनकी ललकार को सुनकर बोले, "आपने क्षत्रिय-संहार का जो कार्य किया है, उसकी बात मैं सुन चुका हूँ। मैं अब तक आपके प्रति पूज्यभाव के कारण चुप था, किन्तु आप मेरा तिरस्कार कर रहे हैं। इसलिए अब मेरे बल-पराक्रम को देखिये।" यह कहकर श्रीराम ने परशुराम जी के हाथ से वह धनुष-बाण ले लिया और धनुष को तानकर श्रीराम ने उस पर बाण रखा और प्रत्यंचा को खींचकर कान तक ले आये। फिर वे भगवान् परशुराम से बोले, "आप ब्राह्मण होने के कारण मेरे पूज्य हैं, इसलिए इस बाण को मैं आपके शरीर को लक्ष्य बनाकर नहीं छोड़ सकता। किन्तु इस दिव्य धनुष पर चढ़ा यह बाण निष्फल भी नहीं जा सकता। इसलिए आपने अपने तपोबल से सर्वत्र आ-जा सकने की जो शीघ्र गति प्राप्त कर ली है और जो पुण्य आपने प्राप्त किया है, उसी को नष्ट कर डालता हूँ।"

जब भगवान् परशुराम ने देखा कि राम ने इस धनुष पर भी शर-सन्धान कर लिया तो उनका चेहरा मुर्झा गया। उन्होंने श्रीराम से कहा, "हे राम, पूर्वकाल में जब मैंने यह पृथ्वी महर्षि कश्यप को दान में दी थी तो उन्होंने कहा था कि अब तुम्हें मेरे राज्य में नहीं रहना चाहिये। तब से मैं कभी रात को पृथ्वी पर विश्राम नहीं करता। इसलिये हे राम, तुम मेरी शीघ्र गमन की शक्ति को मत नष्ट करो। मैं मन के समान-वेग से अभी महेन्द्र पर्वत पर चला जाऊंगा। हां, मैंने तप से जिन पुण्य-लोकों की प्राप्ति की है, उन्हें तुम अपने बाण

का लक्ष्य बना सकते हो। अब देर मत करो, क्योंकि सन्ध्या होने वाली है। हे शत्रुसंहारक वीर! इस धनुष पर शर-सन्धान कर लेने से मुझे आपकी शक्ति का यथार्थ परिचय मिल गया है। आप मधु दैत्य का नाश करने वाले देवेश्वर विष्णु ही हैं। आपका कल्याण हो। हे रघुनन्दन! मुझे इस बात से तनिक भी लज्जा और ग्लानि का अनुभव नहीं हो रहा, क्योंकि मैं जान गया हूँ कि मेरी पराजय त्रिलोकीनाथ से हुई है। अब अपना बाण छोड़िये। इसके पश्चात् ही मैं महेन्द्र पर्वत पर जाऊंगा।"

भगवान् परशुराम के कहने पर दशरथनन्दन राम ने वह बाण छोड़ दिया। तदनन्तर श्रीराम ने परशुराम जी का पूजन किया और परशुराम जी ने दशरथनन्दन राम की प्रदक्षिणा करके अपनी दिव्यगति से महेन्द्र पर्वत के लिए प्रस्थान किया।

महात्मा परशुराम के चले जाने पर श्रीराम ने वह धनुष महाशक्तिशाली वरुण के हाथ में दे दिया। फिर पिता से बोले, "पिताजी, परशुराम चले गए। अब हमें भी प्रस्थान करना चाहिए।"

परशुराम जी चले गये, यह सुनकर दशरथ बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने श्रीराम को छाती से लगाकर प्यार किया। उन्होंने ऐसा अनुभव किया जैसे वे सब किसी भयंकर विपत्ति से मुक्त हुए हों।

उन्होंने सेना को कूच करने की आज्ञा दी। यथासमय वे अयोध्या जा पहुँचे।

नव-वधुओं के स्वागत के लिए अयोध्या खूब सजी हुई थी। ध्वजा-पताकाएं फहरा रही थीं। जगह-जगह तोरण-द्वार बने हुए थे। मंगल-वाद्यों से सारी नगरी उत्सव का दृश्य उपस्थित कर रही थी। सड़कों पर पानी का छिड़काव किया गया था। पुष्प-वर्षा के लिए जगह-जगह फूलों के ढेर रखे हुए थे। नागरिक भेंट के लिए तरह-तरह की मांगलिक वस्तुएं लिए राजा के स्वागत के लिए खड़े थे। चौराहों पर भीड़ जमी हुई थी। नव-वधू की तरह सजी-संवरी अयोध्या में महाराज दशरथ ने नव-विवाहित पुत्रों और पुत्र-वधुओं सहित बाजे-गाजे के साथ प्रवेश किया। चारों ओर हर्ष-उल्लास छाया हुआ था। राजरानियाँ बहुओं को रथों से उतार कर मंगल-गीत गाती हुई देव-मंदिर में देव-पूजन के लिए ले गईं। उसके बाद पुत्रों और बहुओं सब ने गुरुजनों के चरण छुए।

महाराज दशरथ का राजमहल पुत्रों और बहुओं से द्विगुणित शोभा पाने लगा। राजरानियां भी बहुओं के साथ व्यस्त हो चलीं। राजकुमार तत्पर होकर पिता की आज्ञा का पालन करने लगे।

कुछ समय बाद महाराज दशरथ ने भरत को बुलाकर कहा कि तुम्हारे मामा युधाजित तुम्हें केकय देश ले जाने के लिए आए हुए हैं। तुम्हारे नाना ने तुम्हें बुलाया है। वे कई दिनों से यहाँ ठहरे हुए हैं।

पिता की आज्ञा पाकर भरत ने शत्रुघ्न को भी अपने साथ ले जाने के लिए कहा। फिर

वे माता-पिता और बड़े भाइयों को प्रणाम करके मामा युधाजित के साथ केकय देश चले गये।

श्रीराम और लक्ष्मण पिता की आज्ञानुसार राज-काज में हाथ बंटाने लगे। वे प्रजाजनों को अधिकाधिक सुख देने और हित-साधन के कामों में जुट गये।

उनके प्रजा-रंजन के कार्यों से माता-पिता, विद्वन्मण्डली और प्रजा बहुत प्रसन्न थी। श्रीराम और सीता में बहुत गहरा प्रेम था। सीता जी श्रीराम के मन में बस गई थीं। वे क्षण-भर उन्हें नहीं भूलते थे। यही दशा सीताजी की थी। वे श्रीराम के रूप-गुण पर न्योछावर थीं। उनकी प्रीति दिनों-दिन बढ़ती जाती थी। वे एक-दूसरे के मन की बात को बिना कहे ही जान लेते थे। उनकी जोड़ी भगवान् विष्णु और लक्ष्मी जैसी थी।

अयोध्याकाण्ड

भरत और शत्रुघ्न मामा युधाजित के साथ केकय देश चले गए। वहां पर नाना और मामा ने बड़े स्नेह से उन्हें रखा। वहां पर रहते भी उन्हें वृद्ध पिता दशरथ और श्रीराम-लक्ष्मण की याद कभी नहीं भूलती। राजा दशरथ भी चारों पुत्रों को अपनी चार भुजाएं समझते और बड़ा स्नेह करते। किन्तु सब से ज्येष्ठ और श्रेष्ठ होने के कारण परम्परा के अनुसार श्रीराम ही राज्य के उत्तराधिकारी थे और प्रजा भी उन्हें अधिक मानती थी, इसलिए श्रीराम के प्रति राजा दशरथ के मन में विशेष प्रीति थी। श्रीराम तेजस्वी और रूप-गुण-सम्पन्न थे। वे किसीसे ईर्ष्या-द्वेष नहीं करते थे। मीठा बोलते और शान्त रहते। कोई कठोर वचन भी कह देता तो उत्तर नहीं देते। वे दूसरों के छोटे-से-छोटे उपकार को भी स्मरण रखते और सारे अपकारों को भूले रहते। वे अपने व्यस्त समय से अवसर निकालकर चरित्रवान्, ज्ञानवान् और वयोवृद्ध सत्पुरुषों से बातें करते। वे शक्तिशाली होते हुए भी कभी गर्व नहीं करते। असत्य वचन तो कभी भूलकर भी उनके मुख से नहीं निकलता। वे बड़े-बूढ़ों का सम्मान करते। वे प्रजा को और प्रजा उन्हें प्रेम करती। शास्त्र और शस्त्र विद्या में भी उनका कोई प्रतियोगी नहीं था। वे शत्रु-सेना पर आक्रमण और प्रहार करने में विशेष कुशल थे। वे परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने वाले, धरती की तरह क्षमाशील और गुणों के सागर थे।

श्रीराम के श्रेष्ठ चरित्र को देखते हुए वृद्ध पिता दशरथ ने मन में सोचा कि मैं अपने जीते-जी ही इसे युवराज-पद पर प्रतिष्ठित कर दूं और यह सुख भी देख लूं। यह विचार उनके मन-मस्तिष्क पर ऐसे छा गया कि प्रतिक्षण वे यही सोचते रहते। उन्होंने अनुभव किया कि राम बल-पराक्रम में देवराज इन्द्र के समान, बुद्धि में देवगुरु बृहस्पति के समान और धैर्य में पर्वत के समान है। गुणों में मुझसे बढ़-चढ़कर है। इसलिए राम का राज्याभिषेक करके निश्चिन्त हो जाऊं तो मोक्ष की चिन्ता करूं। उन्हें यह अपने जीवन की अन्तिम साध दिखाई दी और इस शुभ कार्य को शीघ्रातिशीघ्र सम्पन्न करने के लिए वे अधीर हो उठे। उन्होंने इस सम्बन्ध में अपनी मंत्रि-परिषद् से मंत्रणा ली और सब की सहमति प्राप्त होने पर अपने निश्चय को

अन्तिम रूप दिया । यथासमय राज्याभिषेक के लिए सारे प्रबन्ध करने के लिए उन्होंने मंत्रियों को आज्ञा दी । विभिन्न नगरवासी श्रेष्ठ पुरुषों और सामन्तों को इस शुभ अवसर पर निमंत्रित करने के लिए दूत भेजे गए । सारा कार्य शीघ्रतापूर्वक करने से वे राजा जनक और कैकय देश के राजा को नहीं बुला सके । उन्होंने सोचा, वे इस शुभ समाचार को बाद में सुन कर प्रसन्न ही होंगे ।

राजा जनक ने समस्त आमंत्रित प्रमुख नागरिकों, सामन्तों, इष्ट मित्रों और राजपुरुषों को राजसभा में सम्बोधित करते हुए कहा, "सज्जनो ! मैंने अपने यशस्वी वंश की परम्परा के अनुसार अपनी प्रजा का पालन किया । इस राजछत्र के नीचे बैठकर प्रजा की रक्षा और पालना करते-करते मैं बूढ़ा हो चला । मैं अब विश्रान्ति चाहता हूँ। इसलिए आप समस्त द्विज-श्रेष्ठों और प्रजा के शुभचिन्तकों की अनुमति लेकर मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम को राजपद पर अभिषिक्त करना चाहता हूँ। मैं कल प्रातःकाल शुभ पुष्य नक्षत्र में श्रीराम का अभिषेक करना चाहता हूँ । यदि आपको मेरा यह विचार उचित प्रतीत होता है तो मुझे इसकी अनुमति दीजिए, अथवा यह बताइए कि मैं किस प्रकार कार्य करूं । यद्यपि मैं श्रीराम को युवराज-पद देना चाहता हूँ, किन्तु यदि कोई दूसरा सर्व-हितकारी विकल्प आप बता सकें तो बताएं। क्योंकि आप मध्यस्थ हैं और एक व्यक्ति के विचार की अपेक्षा आपका विचार अधिक उपादेय हो सकता है ।"

महाराज दशरथ के अभिप्राय को समझकर सभासद् परस्पर विचार-विनिमय करने लगे और जब सर्व-सम्मति से एक निश्चय पर पहुँचे तो बोले, "महाराज, आप अब बूढ़े हो चले हैं और प्रजा-पालन के गुरुतर कार्य से विश्रान्ति भी चाहते हैं। अतः यह उचित ही है कि श्रीराम का युवराज-पद पर अभिषेक कर दिया जाये, जिससे वे राजकाज संभालने लगें । हम रघुवीर श्रीराम को राजछत्र के नीचे बैठे गजारूढ़ देखना चाहते हैं ।"

उनके मन को प्रिय लगने वाली इस बात को सुनकर अनजान-सा बनते हुए राजा दशरथ ने कहा, "सज्जनो ! आपकी बात को सुनकर मेरे मन में एक शंका उत्पन्न हुई है । उसी के निवारणार्थ मैं आपसे पूछता हूँ कि मैं धर्मपूर्वक प्रजा का पालन कर रहा हूं, फिर भी आप श्रीराम को राज्य-सिंहासन पर बैठा क्यों देखना चाहते हैं । उसमें क्या विशेषता है ?"

राजा दशरथ के पूछने पर वे बोले, "महाराज ! श्रीराम में अनेक कल्याणकारी गुण हैं । वे अपने देवतुल्य गुणों के कारण ही सबको प्रिय हैं । उनके गुणों का कहां तक वर्णन किया जाए । अतः हमारा तो आपसे यही निवेदन है कि आप शीघ्रातिशीघ्र श्रीराम को युवराज-पद सौंपिए ।"

सभासदों की बात सुनकर राजा दशरथ मन में प्रसन्न होते हुए बोले, "मेरी शंका का समाधान हो गया । श्रीराम को, गुणों में ज्येष्ठ-श्रेष्ठ होने के कारण ही आप युवराज बनाना चाहते हैं ।" और सभी सभासदों को सुनाते हुए वे कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ और पुरोहित वामदेव

से बोले, "ऋतुराज वसन्त का चैत्रमास अभिषेक के लिए सर्वोत्तम काल है, इसलिए आप समस्त पूजा-सामग्री एकत्र करवाइए।" यह कहकर राजा दशरथ ज्यों ही चुप हुए, सब लोग प्रसन्नता से आपस में बातें करने लगे जिससे सभास्थल में कोलाहल-सा मच गया। उसके कुछ क्षण बाद शान्त होने पर राजा दशरथ ने महर्षि वसिष्ठ से कहा, "अभिषेक-सम्बन्धी जो-जो कार्य सम्पन्न होने हैं, उनके सम्बन्ध में सेवकों को आवश्यक निर्देश आप आज ही दे दें।"

महाराज का वचन सुन मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ ने आज्ञापालन के लिए तत्पर सेवकों को कहा :

"सुवर्ण, हीरक-मुद्रा आदि रत्न, पूजा-सामग्री, औषधियां, श्वेत पुष्पों की मालाएं, खीलें, घी, मधु, वस्त्र, रथ, अस्त्र-शस्त्र, सेना, हाथी, चौरी, ध्वजा, छत्र, सौ सोने के घड़े, सुवर्ण से मढ़े हुए सींगों वाला एक सांड, पूरा व्याघ्र-चर्म तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं राजा की यज्ञशाला में एकत्र कर दो। राजप्रासाद और समस्त नगर के द्वारों को मालाओं से सजाकर सुगन्धित धूप सुलगा दो। दूध, दही और घी से युक्त अनेक प्रकार के स्वादु व्यंजन इतनी मात्रा में बनवाने की व्यवस्था करो जो एक लाख ब्राह्मणों के भोजन के लिए पर्याप्त हों। कल प्रातः ब्राह्मणों को वह भोजन और खूब दक्षिणा देने की व्यवस्था करो। कल सूर्योदय के समय स्वस्ति-वाचन होगा। उसके लिए वेदज्ञ ब्राह्मणों को निमंत्रित करो और उनके लिए आसनों का प्रबन्ध करो। सारे नगर को पताकाओं और तोरणों से सजा दो। सड़कों पर छिड़काव करवा दो और गाने, नाचने, बजाने वालों की मण्डलियाँ दूसरी ड्योढ़ी पर बैठें। नगर के समस्त देव मन्दिरों और चैत्यों में कल मिष्टान्न और दक्षिणा पहुंचाने की व्यवस्था करो। स्वच्छ गणवेष में ढाल-तलवार लिए योद्धा महाराज के प्रांगण में प्रवेश करें।" ये सारे काम सेवकों को समझा कर वे दोनों विप्रवर राजा से बोले, "सब कार्य यथासमय सम्पन्न हो जाएगा, इसकी व्यवस्था हमने कर दी है।"

राजा दशरथ ने सचिव सुमंत्र को आज्ञा दी कि श्रीराम को शीघ्र यहां बुला लाओ। राजा की आज्ञा से सुमंत्र श्रीराम को रथ पर बिठाकर राजसभा में ले आए। श्रीराम ने पिता के चरणों में प्रणाम निवेदन किया। राजा ने उन्हें खींचकर छाती से लगा लिया और पहले से उनके लिए सुनिश्चित आसन पर बैठने को कहा। श्रीराम के उस आसन पर विराजमान होने से उनकी कान्ति से आसन और प्रभावशाली व्यक्तित्व से सभा की शोभा द्विगुणित हो गई। जैसे दर्पण में आत्मछवि देखकर प्रसन्नता होती है, आत्मज राम को देखकर वैसी ही प्रसन्नता राजा दशरथ को हुई। वे श्रीराम से बोले, "प्रिय राम! तुम महारानी से उत्पन्न मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो। गुणों में तुम मुझसे भी श्रेष्ठ हो। तुमने अपने गुणों से प्रजा का मन मोह लिया है। इसलिये मैं पुष्य नक्षत्र में तुम्हारा युवराज-पद पर अभिषेक कर रहा हूँ। यद्यपि तुम इस पद के लिए सर्वथा योग्य हो तो भी पुत्र-स्नेहवश मैं तुम्हें कहूंगा कि तुम और भी विनयी और जितेन्द्रिय बनो। गुप्तचरों द्वारा प्राप्त सूचनाओं और प्रजाजनों द्वारा प्रत्यक्ष कही हुई बातों द्वारा पक्ष-

विपक्ष का विचार करते हुए न्याय करने के कार्य में तत्पर रहो। मंत्रियों, सेना-नायकों और राजपुरुषों को सदा प्रसन्न रखो और राजकोष और शस्त्रागार में उत्तमोत्तम वस्तुओं और शस्त्रास्त्रों का संग्रह करो।"

राजा को यह शुभ सूचना देते सुनकर श्रीराम के मित्रों ने तुरन्त यह शुभ संवाद राज-माता कौशल्या से जा कहा।

श्रीराम भी राजा से आज्ञा मिलने पर रथ पर बैठकर राजप्रासाद को लौट आए। अन्य सभासद् प्रसन्न-मन अपने-अपने घरों को गए और मार्ग में यह शुभ समाचार अपने इष्ट-मित्रों को सुनाते गए। घर जाकर उन्होंने विशेष रूप से देव-पूजा की जैसे उनका कोई अभीष्ट सिद्ध हो गया हो।

जब सब सभासद् चले गए तो राजा ने फिर मंत्रि-परिषद् से विचार-विमर्श किया और तब अन्तःपुर को गए।

अन्तःपुर में पहुँचते ही उन्होंने फिर सूत को श्रीराम को बुला लाने के लिए भेजा। जब श्रीराम के द्वारपालों ने सूत के आने की सूचना दी तो श्रीराम शंकित हो उठे कि मैं अभी आया हूँ और अभी दोबारा बुलावा आ गया तो क्या बात है! उन्होंने सुमंत्र को भीतर बुला लिया और उतावली से पूछा कि इतनी जल्दी दोबारा मुझे क्यों बुलाया है, स्पष्ट करके बताइए।

सूत ने कहा, "महाराज आपसे मिलना चाहते हैं। इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानता। अब वहाँ जाने या न जाने का निश्चय आप स्वयं करें।"

सूत के वचन को सुनकर श्रीराम शीघ्रता से पिता से मिलने जा पहुँचे। राजा उन्हें आसन पर बिठाकर कहने लगे, "चिरंजीव राम! मुझे अब बुढ़ापे ने घेर लिया है। मैंने सब सांसारिक सुखों का उपभोग कर लिया है। मैंने सैकड़ों यज्ञों में पर्याप्त अन्न और धन का दान दिया है। मैंने विविध शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन किया है और देवऋण, ऋषिऋण, पितृ-ऋण और ब्राह्मणऋण से उऋण हो गया हूँ। मैं अपने कर्त्तव्यों का उचित रूप से निर्वाह करता हुआ कृतकार्य हुआ हूँ। प्रिय राम! सारी प्रजा तुम्हें युवराज-पद पर अभिषिक्त देखना चाहती है, इसलिए वह पद तुम्हें दे रहा हूँ। पता नहीं क्यों, इन दिनों मुझे भयंकर दुःस्वप्न दिखाई दे रहे हैं। उल्कापात की घटनाएँ भी हो रही हैं। ज्योतिषियों ने मेरी जन्म-कुण्डली देखकर बताया है कि मेरे नक्षत्र को सूर्य, मंगल और राहु इन तीन क्रूरग्रहों ने आक्रान्त कर रखा है। इस ग्रहयोग का फल घोर विपत्ति और मृत्यु होता है। इसलिए जब तक इस ग्रहयोग के प्रभाव से मेरी बुद्धि में विभ्रम उत्पन्न हो, उससे पूर्व ही तुम्हारा अभिषेक हो जाना चाहिए। कल चन्द्रमा पुष्य नक्षत्र में आ जाएगा और अभिषेक के लिए यह शुभ मुहूर्त है। मैं इस कार्य में एक दिन का भी विलम्ब नहीं करना चाहता। इसलिए तुम जितेन्द्रिय होकर अब से सीता-सहित उपवास करो और रात को भूमि पर कुशा के बिछावन पर सोओ। भले कार्यों में बहुत विघ्न पड़ते देखे गए हैं, इसलिए तुम्हारे मित्रगण सावधान होकर तुम्हारी सुरक्षा में तत्पर रहें।

मेरे विचार में भरत के अयोध्या लौटने से पूर्व तुम्हारा अभिषेक अवश्य हो जाना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि भरत का आचार-व्यवहार सब तरह से सज्जनोचित है! फिर भी मन बड़ा चंचल होता है और बुद्धि को फिरते देर नहीं लगती।"

पिता की सारी बातें सुनकर, प्रणाम करके श्रीराम लौट आए। सीता जी को भी व्रत-उपवास की बात बताने के लिए जब वे अपने महल में गए तो सीता जी वहाँ नहीं थीं। उन्होंने सोचा कि माता के महल में गई होंगी, इसलिए वे भी माता के पास चले गए। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि माता कौशल्या पुत्र की मंगल-कामना के लिए देवार्चन में लगी हुई हैं। श्री राम के राज्याभिषेक का शुभ समाचार सुनकर रानी सुमित्रा और श्री लक्ष्मण भी वहाँ आ गये थे। सीता जी भी वहीं थीं। श्रीराम ने पिता की आज्ञा सबसे कह सुनाई और माता कौशल्या से कहा कि अभिषेक की पूर्व-रात्रि में जो-जो मंगल-कार्य सम्पन्न होने हैं, उन्हें सम्पन्न करवाइए।

महारानी कौशल्या अपनी मनोभिलषित बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुई।

श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा, "प्रिय लक्ष्मण, तुम्हें मेरे साथ शासन का कार्य संभालना होगा। मैं तुम्हें अपने से भिन्न नहीं मानता हूँ। मुझे जो कुछ प्राप्त हो रहा है, वह तो तुम्हारा ही है।"

यह कहकर और माताओं को प्रणाम करके श्रीराम सीता-सहित अपने महल को लौट आए।

उधर नृपश्रेष्ठ दशरथ ने कुलगुरु वसिष्ठ जी को कहा कि आप श्रीराम को व्रत-उपवास की दीक्षा दीजिए और पालने योग्य नियमों के बारे में बताइए। वे महर्षि 'तथास्तु' कहकर रथारूढ़ होकर श्रीराम के महल की ओर चल दिये। तीन ड्योढ़ियाँ रथ पर बैठे ही पार करके जब वे रथ से उतरे तो श्रीराम उनके स्वागत-सत्कार के लिए दौड़े-दौड़े आए। महर्षि बोले, "राम, तुम्हारे पिता तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हैं। आज की रात तुम्हें सीता-सहित उपवास करना है। कल प्रातः तुम्हारा अभिषेक होगा।" इसके पश्चात् मन्त्रोच्चारणपूर्वक उन्होंने व्रत की दीक्षा दी। श्रीराम ने महात्मा वसिष्ठ का यथाविधि पूजन किया और वे लौट गये। लौटते समय उन्होंने देखा कि सारी नगरी को झाड़-बुहारकर स्वच्छ किया जा रहा है। ध्वजाओं और तोरणों से सजाया जा रहा है। प्रजाजन प्रसन्न-मन एक दूसरे को बधाइयाँ दे रहे हैं और चाह रहे हैं कि आज की रात्रि पहरों के बजाय पलों में बीत जाये।

राजा दशरथ मन्त्रियों सहित सभागार से बाहर निकले और अन्तःपुर को चले गए।

एक पहर रात्रि शेष रहने पर श्रीराम उठ खड़े हुए। दैनिक कृत्यों के पश्चात् श्रीराम ने सन्ध्योपासना की और भगवान् नारायण को नमस्कार किया। प्रभातकालीन मंगलवाद्यों की ध्वनि के बीच ब्राह्मणों का सस्वर वेद-मन्त्रोच्चारण बड़ा भला लग रहा था। सारी नगरी सजायी गई थी। चौराहों, मंदिरों, बाजारों और राजभवन में विशेष सजावट की गई थी।

रात्रि को देर तक नृत्य-गान के आयोजन चलेंगे, यह सोचकर मार्गों के दोनों ओर कई-कई शाखाओं वाले दीप-स्तम्भ लगा दिए गये थे जिससे यथासमय प्रकाश किया जा सके। सुन्दर पुष्पों, चन्दन और धूप की सुगन्ध से सारे मार्ग सुवासित थे।

चौराहों और फाटकों में खड़े प्रजाजन वृद्ध राजा दशरथ के इस समयोचित कार्य की प्रशंसा कर रहे थे। अयोध्या से बाहर के ग्रामों से आने वाले लोगों से नगर के चौड़े मार्ग में भी भीड़-भाड़ होने लगी थी। सभी सुन्दर वस्त्राभूषण पहने हुए थे। लोगों के आपस में बात-चीत करने से कोलाहल हो रहा था। आज अयोध्या सागर की तरह चलती जन-भीड़ से तरंगाकुल जान पड़ती थी।

रानी कैकेयी की एक दासी थी मन्थरा! वह उनके मायके से ही साथ आई थी। वह कैकेयी की मुँहलगी थी। वह अभिषेक से एक दिन पहले पर्वत के समान ऊँचे कैकेयी के महल की छत पर जा चढ़ी। उसने सजी-संवरी अयोध्या को देखा। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। पास की छत पर श्रीराम की धाय पीली रेशमी साड़ी पहने बड़ी प्रसन्न खड़ी थी। मन्थरा ने उससे कहा, "अरी धाय! कुछ मुझे भी तो बताओ कि आज अयोध्या को क्यों सजाया गया है! राम की माता आज लोगों को धन क्यों बांट रही हैं? आज महाराज कौन-सा कार्य सम्पन्न करने वाले हैं?"

धाय तो हर्ष से फूली नहीं समाती थी; बोली, "अरी कुब्जा! क्या तुझे कुछ पता ही नहीं! रघुनन्दन राम का राज्याभिषेक जो होने वाला है। उसीके लिए ये सब तैयारियां हैं।" धाय की बात सुनते ही मन्थरा जल-भुन गई। वह झटपट सीढ़ियां उतरती हुई नीचे पहुँची। उसे लगा जैसे उसकी सेव्या रानी कैकेयी का कुछ बुरा हो रहा है। वह ईर्ष्या की आग से जलती कैकेयी के पास जाकर बोली, "ऐ मूढ़ रानी! उठ खड़ी हो। क्यों सोई है! तेरे सिर पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा है, पर तू फिर भी नहीं चेतती। तुझे अपने सौभाग्य पर बड़ा गर्व है। अब तेरा सौभाग्य समाप्त होने वाला है।"

क्रोध में भरी मन्थरा के कठोर वचन सुनकर कैकेयी के मन में बड़ा दुःख हुआ। उसने मन्थरा से पूछा, "अरी मन्थरे! क्या कोई बुरी बात हो गयी जो तू दुखी और उदास दिखायी देती है?"

कैकेयी की आत्मीयतापूर्ण बात सुनकर, बात समझाने और बात करने में चतुर मन्थरा क्रोध के साथ बोली, "देवि! तुम्हारे बुरे दिन आ गए। कल महाराज राम का युवराज पद पर अभिषेक कर रहे हैं, यह समाचार सुनकर मैं दुःख और शोक से जली जा रही हूँ। तुम्हारे भले के लिए, समय रहते तुम्हें चेताने के लिए मैं इस समय आयी हूँ। दुःख-सुख से जुड़

गया है। मैं ठहरी दासी ! पर तुम तो राजकुल में जन्मी और राजकुल में ब्याही हो ! फिर भी राजमहलों के कुचक्र को क्यों नहीं समझ रही हो, क्यों नहीं समझ पाती हो। तुम्हारे पति महाराज धर्म की बातें तो बहुत करते हैं, पर हैं बड़े कपटी। बातें तो चिकनी-चुपड़ी करते हैं पर मन में खोट है। तुम उन्हें सीधा-सादा समझती हो, इसीलिए ठगी गई हो। दुष्टात्मा महाराज ने भरत को दूर नाना के पास भेज दिया और अब अवध के निष्कंटक राज्य पर कल ही राम का अभिषेक हो जाएगा। 'पति' कहलाने वाले जिस व्यक्ति की तू हितचिन्ता करती रही, वह दूध पिलाए साँप की तरह तुझे ही डस रहा है। यह दुःखदायक बात सुनकर भी मेरी ओर टुकर-टुकर क्या देख रही हो ? अब वह समय आ गया है, जब तुम्हें कुछ करना चाहिए और अपनी तथा अपने पुत्र की रक्षा करनी चाहिए।"

मन्थरा की बात सुनकर आश्चर्य-चकित हो कैकेयी बिछौने से उठ बैठी और अपने कण्ठ का बहुमूल्य हार मन्थरा को देते हुए बोली, "मन्थरे ! तुमने मुझे अत्यन्त प्रिय समाचार सुनाया है। उसी का यह पुरस्कार है। मैं राम और भरत में कोई भेद नहीं मानती। इसलिए राम को युवराज पद मिलने पर मैं अति प्रसन्न हैं।"

यह सुनकर मन्थरा सिटपिटा गई। क्रोध और दुःख से भरी उसने वह कण्ठहार फेंक दिया। बोली,"अरी भोली रानी ! यह तुम्हारी असमय की प्रसन्नता मेरी समझ में नहीं आती। तुम विपत्ति के भंवर में फंसी, डूबी जा रही हो और फिर भी तुम्हें अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान नहीं है। तुम्हारी इस अदूरदर्शिता पर मैं चिन्तित हूँ। सौत के पुत्र की उन्नति देखकर क्या कोई बुद्धिमती स्त्री प्रसन्न हो सकती है ! राम और भरत का इस राज्य पर समान अधिकार है। इसलिए राम को भय है भरत से। और जो आज भयभीत है, वह कल भय का कारण बन जायगा। शक्ति पाकर राम भरत रूपी कण्टक को दूर कर देगा। कौशल्या कल राजमाता बन जाएँगी और तुम्हें दासी की भाँति हाथ जोड़े उनकी चाकरी में रहना पड़ेगा। यही नहीं, तुम्हारे पुत्र को भी राजा राम की चाकरी में रहना पड़ेगा। तुम्हारी बहू, भरत की पत्नी को रानी सीता की चाकरी बजानी पड़ेगी।"

अप्रसन्न मन्थरा को उल्टी-सीधी बातें करते देखकर, कैकेयी ने उपेक्षा करते हुए फिर राम के गुणों की प्रशंसा की। वह बोली, "राम महाराज का ज्येष्ठ पुत्र है और युवराज पद संभालने के योग्य सारे गुण उसमें हैं। वह भाइयों और प्रजा का पुत्रवत् पालन करेगा। उसके अभिषेक की बात सुनकर तू जली क्यों जा रही है ! मैं तो राम को भरत से भी अधिक चाहती हूँ क्योंकि वह मुझे कौशल्या की अपेक्षा अधिक मानता है। राम को जो कुछ मिल रहा है, वह भरत का भी उतना ही है, क्योंकि राम अपने में और भाइयों में कोई अन्तर नहीं मानते। यह बात तेरी समझ में क्यों नहीं आती ? और फिर राम के बाद भरत ही राज्य संभालेगा।"

कैकेयी की यह बात सुनकर मन्थरा लम्बा श्वास लेकर बोली,"तुम्हारी तो बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। तुम्हें अपने हित-अहित का ज्ञान नहीं रहा। राम के बाद भरत नहीं, राम का पुत्र

उत्तराधिकारी होगा। राज्य का उत्तराधिकार सारे पुत्रों में बाँटा नहीं जाता और बाँटा जा सकता भी नहीं। तुम्हें हो क्या गया है? अपनी सौत और उसके पुत्र की उन्नति से प्रसन्न होकर तुम मुझे पुरस्कृत कर रही हो। पति का अनन्य प्रेम पाकर तुमने कौशल्या का खूब तिरस्कार किया है। अब वह तुमसे उसका बदला लेकर रहेगी। राम और लक्ष्मण में बड़ी प्रीति है। उसी प्रकार भरत और शत्रुघ्न में है। उन दोनों को दूर भेजकर और इस अवसर पर उन्हें बिना बुलाये यह सब क्यों किया जा रहा है, यह तेरी समझ में क्यों नहीं आता। चुपचाप, तुम्हें सूचना तक दिए बिना, शीघ्रातिशीघ्र इस कार्य को महाराज क्यों कर डालना चाहते हैं! इसका तुम्हारे पास क्या उत्तर है? सारी अयोध्यापुरी इस उत्सव की बात जानती है किन्तु महाराज की छोटी और अत्यन्त प्रिया रानी कैकेयी से यह बात छिपाकर रखी गयी। यों तो महाराज पहर-पहर-भर तुम्हारे पास बैठे चिकनी-चुपड़ी बातें करते रहते हैं किन्तु यह महत्त्वपूर्ण संवाद तुम तक भिजवाने के लिए उन्हें कोई दास-दासी भी नहीं मिली। मेरी बात मानो तो कोई ऐसा उपाय सोचो जिससे भरत को अयोध्या का राज्य मिले और राम को वनवास। तभी भरत निष्कंटक राज्य का उपभोग कर सकेगा।"

मन्थरा के बार-बार समझाने पर कैकेयी की बुद्धि भ्रमित हो गई और वह क्रोध से तमतमाती बोली, "मैं आज राम को यहां से वन भेजती हूँ और भरत को शीघ्र ही युवराज-पद पर अभिषिक्त कराऊंगी। अब तुम यह सोचो कि किस उपाय से यह योजना सफल हो।"

पापिनी मन्थरा बोली, "तुम देखती जाओ कि मैं क्या करती हूँ। तुम मेरी बात मानोगी तो राज्य केवल भरत को ही मिलेगा। क्या तुम्हें स्मरण नहीं है! या स्मरण होने पर भी आज उसे छिपा रही हो। मुझे लगता है कि तुम अपने मन की बात मुझसे कहलाना चाहती हो। है न यही बात! यदि मेरे मुँह से ही सुनना चाहती हो तो सुनो और झटपट कर डालो।"

मन्थरा की बात सुनकर कैकेयी पलंग पर कुछ उठकर बैठ गई और ध्यानपूर्वक सुनने लगी।

"देवि! बात उन दिनों की है, जब से कुछ वर्ष पूर्व तुम ब्याही गई थीं। देवासुर-संग्राम में तुम्हारे पति देवराज की सहायता करने दक्षिणापथ के दण्डकारण्य में स्थित वैजयन्त नामक नगर में गये थे। वहां शम्बर नामक प्रसिद्ध असुर रहता था। उससे युद्ध करते समय वे क्षत-विक्षत हो गये थे। वे अचेत होने वाले ही थे कि उस समय सारथि का काम करती हुई तुमने महाराज को रणक्षेत्र से दूर हटाकर उनकी रक्षा की थी। जब वहां भी राक्षसों ने उनका पीछा किया और शस्त्र-अस्त्रों से पीड़ित किया तो तुमने उनकी रक्षा की थी। उस समय तुम्हारे कारण ही महाराज की जीवनरक्षा हुई थी। तुम्हारे इस कार्य से प्रसन्न होकर महाराज ने तुम्हें दो वरदान देने का निश्चय किया था। तुमने उस समय कहा था कि जब कभी मेरी इच्छा होगी, मैं इन वरों को मांग लूंगी। स्मरण करो। तुमने ही यह बात मुझे बतायी थी। बतायी थी न! तब से वरदानों की यह बात मुझे स्मरण है। चिरकाल पश्चात्

पर पड़ी हुई है। बूढ़े राजा ने प्राणों से प्रिय अपनी तरुणी रानी को धरती पर इस प्रकार पड़े देखा जैसे कोई स्वर्ग की अप्सरा धरती पर आ गिरी हो। उसे हाथ से सहलाते हुए राजा ने डरते-डरते कहा, "तुम मुझपर कुपित हो, ऐसा मुझे नहीं लगता। फिर शीघ्र बताओ कि किसने तुम्हारा अपमान किया है। किसने तुम्हारी निन्दा की है? मुझे दुःखी करने के लिए तुम इस तरह धरती पर क्यों लेटी हो? मेरे जीते जी तुम्हें ऐसा करने की क्यों आवश्यकता पड़ी? यदि तुम्हें कोई रोग है तो मेरे पास एक से एक योग्य चिकित्सक विद्यमान हैं। वे तुम्हारे रोग को दूर कर सकते हैं। यदि तुम किसीका कोई काम कराना चाहती हो तो बताओ, या किसीने तुम्हें अप्रसन्न किया है तो उसका नाम बताओ। किसको तुम पुरस्कृत कराना चाहती हो या किसको दण्डित, यह बताओ। यों रो-रोकर अपना जी न दुखाओ। तुम्हारी प्रसन्नता के लिए, मैं न मारने योग्य को मार सकता हूँ। और प्राणदण्ड पाए अपराधी को भी छोड़ सकता हूँ। तुम्हारे कहने पर भिखारी को धनवान् और धनवान् को भिखारी बना सकता हूँ। मैं और मेरे अधीन समस्त जन तुम्हारी आज्ञा के अधीन हैं। तुम्हारी प्रत्येक मनोकामना की पूर्ति मैं कर सकता हूँ चाहे उसके लिए मुझे अपने प्राण ही क्यों न देने पड़ें। बस, एक बार तुम अपने मन की बात तो मुझे बताओ। मैं सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि जो तू कहेगी, वही करूँगा। जहाँ तक सूर्य का रथ घूमता है, वहाँ तक सारी पृथ्वी पर मेरा अधिकार है। द्रविड़, सिन्धु, सौराष्ट्र, दक्षिणपथ,बंग, अंग, मगध, मत्स्य, काशी और कौशल इन सभी पर मेरा अधिकार है। फिर तुम्हें चिन्ता किस बात की है? तुम क्यों अपने शरीर को इतना कष्ट दे रही हो? उठो और मुझे बताओ कि तुम्हारा मनोरथ क्या है। यह जो तुम नागिन की तरह लम्बे और गर्म साँस ले रही हो, तुम्हारे इस दुःख से मैं बहुत व्यथित हूँ।"

राजा के ऐसा कहने पर कैकेयी मन ही मन आश्वस्त हुई। अब विष-बुझे बाण की तरह अमंगल और अप्रिय वचन कहने के लिए वह तैयार होने लगी। उसने पति को और भी दुःख देने का विचार किया। वह बोली, "देव! न तो किसीने मेरा अपकार किया और न निन्दा। मैं अपने मनोरथ की पूर्ति चाहती हूँ। यदि उसे पूरा करना चाहते हो तो वचन दो। वचन मिलने के पश्चात् ही मैं बताऊँगी।"

कैकेयी की बात सुनकर वे कुछ मुस्कराकर उसके बिखरे बालों को समेटते हुए और उसका सिर अपनी गोद में रखते हुए बोले, "क्या तुम जानती नहीं हो कि राम के अतिरिक्त दूसरा कोई ऐसा नहीं है जो मुझे तुम से भी अधिक प्रिय हो? मैं उस राम की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी। अब बताओ कि तुम्हारा मनोरथ क्या है?"

कैकेयी बोली, "महाराज! स्मरण कीजिये, देवासुर-संग्राम में जब मैंने आपकी प्राण-रक्षा की थी तो आपने दो वरदान माँगने के लिए मुझे कहा था। मेरे वे दो वर धरोहर के रूप में आपके पास सुरक्षित हैं। आज मैं उन दो वरदानों से अपना मनोरथ पूरा करना चाहती हूँ। प्रतिज्ञा करके भी यदि आप उन वरदानों को नहीं देंगे तो इस अपमान से मैं आज ही

अपने प्राण दे दूंगी।"

जैसे हरिण व्याध की संगीतमयी वाणी से उसके जाल में फंस जाता है, वैसे ही कैकेयी ने राजा को वश में करके प्रतिज्ञा करा ली। प्रतिज्ञा करा लेने के पश्चात् वह बोली, "यह जो आपने राम का युवराज-पद पर अभिषेक करने के लिए आयोजन किया है, इसी आयोजन के द्वारा मेरे पुत्र भरत का अभिषेक हो, यह मेरा पहला वर है। दूसरे वरदान में तपस्वी वेश में राम चौदह वर्ष दण्डकारण्य में रहें। यही मेरी मनोकामना है। आपके दिये वरदानों को ही मैंने मांगा है। मैं आज ही राम को वनवास के लिए जाता देखना चाहती हूँ। आप राजाओं के भी राजा होने से महाराज हैं। अपने वचनों को सत्य कीजिये और अपने कुल, शील और जन्म की रक्षा कीजिए। सत्पुरुष सत्यवादी होने को सबसे बड़ा धर्म बताते हैं।"

कैकेयी के ये कठोर वचन सुनकर महाराज दशरथ चिन्ता से व्याकुल हो उठे। उन्होंने मन में सोचा, 'मैं दिवास्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ? मेरे मस्तिष्क में विकार तो उत्पन्न नहीं हो गया है', पर वे किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सके। संताप की अधिकता के कारण उन्हें मूर्छा आ गयी। जब कुछ क्षण बाद चेतना लौटी तो सामने कैकेयी को देखकर ऐसे डर गये जैसे किसी भूखी सिहनी को देखकर हिरन डर जाता है। पर कुछ देर के पश्चात् उनका क्रोध जाग्रत हुआ और वे गरज कर बोले, "निष्ठुर और कपटचारिणी कैकेयी! तू इस कुल का विनाश करने पर तुली हुई है। मुझे यह तो बता कि मैंने या राम ने तेरा क्या बिगाड़ा है! राम तेरे साथ सगी माता जैसा बर्ताव करता है, फिर तू उसका अमंगल क्यों करना चाहती है? मैं तो तुझे राजकन्या समझकर ब्याह लाया था। मुझे क्या पता था कि तुम नागिन हो। सारी प्रजा राम की प्रशंसक है। फिर मैं उसे किस अपराध के लिए वनवास दूं। मैं कौशल्या, सुमित्रा और राजलक्ष्मी को तो छोड़ सकता हूँ, पर राम को नहीं। मैं राम को देखे बिना जीवित नहीं रह सकता। इसलिए तू अपने इस निश्चय को छोड़ दे। मैं तेरे पैरों पर अपना सिर रखकर प्रार्थना करता हूँ। यदि तू समझती है कि मुझे भरत प्यारा नहीं है तो मैं वचन देता हूँ कि भरत का युवराज-पद पर अभिषेक होगा। वज्र-कठोर हृदय वाली कैकेयी! तू तो कहा करती थी कि राम मेरा बड़ा बेटा है। फिर उस राम का चौदह वर्ष वन में रहना तुझे कैसे रुचिकर लग रहा है? तू राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास चाहती है, यह सुनकर कानों पर विश्वास नहीं होता है क्योंकि राम ने तेरा कुछ भी तो नहीं बिगाड़ा है। मैं बूढ़ा अब यम-राज के पास जाने के लिए तैयार बैठा हूँ। तुम्हें मेरी इस दशा पर भी दया नहीं आती! मैं हाथ जोड़ता हूँ और तेरे पाँव पड़ता हूँ। तू राम को अपने हृदय में स्थान दे, जिससे प्रतिज्ञा-भंग के कारण मैं झूठा न कहलाऊँ।"

कैकेयी आँखें तरेरती हुई बोली, "राजन्! यदि वरदान देकर पछताते हो तो फिर अपने को बड़ा धर्मात्मा क्यों कहते हो! क्या आप यह कह सकेंगे कि जिस कैकेयी ने प्राण-रक्षा की, उसी कैकेयी को वरदान देने की अपनी प्रतिज्ञा मैंने झूठी कर दी! अपनी प्रतिज्ञा से फिर-

कर कुल को कलंक तो आप लगा रहे हैं और दोषी मुझे बताते हैं। शिवि ने कबूतर के मांस के बदले अपना मांस बाज को दिया था और राजा अलर्क ने एक अन्धे ब्राह्मण को अपने नेत्र दान दे दिये थे। वचन-पालन श्रेष्ठ धर्म है। इसलिए अपनी प्रतिज्ञा को तोड़कर अपयश का पात्र मत बनिये। आप मुझे भला-बुरा चाहे जो कहें, किन्तु मैंने जो कुछ मांगा, उसके अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिये। यदि राम का अभिषेक होता है तो मैं विष पीकर आत्म-हत्या कर लूँगी। मैं एक दिन के लिए भी यह नहीं देख सकती कि राजमाता होने के कारण कौशल्या का गौरव बढ़े। मैं अपनी और भरत की शपथ खाकर कहती हूँ कि राम को बन-वास दिये बिना मुझे सन्तोष नहीं होगा।"

इतना कहकर कैकेयी चुप हो गई। राजा दशरथ बहुत रोये-गिड़गिड़ाये, पर उसने किसी बात का उत्तर नहीं दिया। रानी के स्त्री-हठ और शपथ खाने की बात को सोचकर वे मूल से कटे वृक्ष की तरह गिर पड़े। फिर बोले, "तू सदा से ऐसी थी नहीं, फिर किसके सिखाने-पढ़ाने से आज तू इतनी बदल गयी है। तेरी नीचतापूर्ण बातें सुनकर मैं स्तंभित रह गया हूँ। कोई भूत-पिशाच तो तेरे सिर पर सवार नहीं है। मैं तो समझता हूँ कि राम के बिना भरत राज्य को स्वीकार ही नहीं करेगा। यह भी सोच कि लोगों में मेरी कैसी खिल्ली उड़ेगी। जब समा-गत गण्य-मान्य जन मुझसे पूछेंगे कि श्रीराम कहाँ है तो मैं उनसे कैसे कहूँगा कि कैकेयी के कहने से मैंने उसे बनवास दे दिया है। राम के अभिषेक की घोषणा करके अब यदि मैं उसका अभिषेक नहीं करता हूँ तब भी तो लोग मुझे असत्यवादी कहेंगे। तेरे ही कारण मैंने कौशल्या का कभी उचित आदर-सम्मान नहीं किया। और आज तू ही मुझे संसार के सामने अपमानित करना चाहती है। राम के बिना सीता की क्या दशा होगी, तुमने यह भी सोचा है? मैं राम को वन जाते और सीता को रोते देखकर जीवित नहीं रह सकूंगा। तब तू विधवा होकर अपने पुत्र के साथ अयोध्या का राज्य करेगी। सत्पुरुष मुझे एक नारी के मोह में पड़कर पुत्र को देश निकाला देने वाला कहेंगे। मैंने तुझे गले का हार समझा था, किन्तु तू तो मेरे गले की फांसी बन गयी। मैं जानता हूँ कि यदि राम को वन जाने के लिए कहूँगा तो वह तुरन्त 'बहुत अच्छा' कहकर चल देगा। मेरी बात टालना तो वह जानता ही नहीं। कितना अच्छा होता यदि मैं उसे वन जाने को कहता और वह अस्वीकार कर देता। किन्तु मैं जानता हूँ कि ऐसा नहीं होगा। यदि राम वन को चला गया और मैं मर गया तो तू राज्य-सत्ता पाकर कौशल्या आदि पर क्या-क्या अत्याचार करेगी, इसका क्या ठिकाना है। यदि भरत को श्रीराम का वन जाना अच्छा लगता है तो मेरी मृत्यु के पश्चात् न वह मेरा दाह-संस्कार करे और न मुझे पिण्ड दे। मेरा राम, जिसने कभी पैदल यात्रा नहीं की, कण्टाकीर्ण वनों में पैदल कैसे घूमेगा! कैसे वह वन के कसैले, खट्टे और कटु फलों को खायेगा! भरत की माँ कैकेयी, तुमने न केवल पितृ-कुल और पति-कुल को ही कलंकित किया है अपितु समस्त स्त्री-जाति के लिये भी तुम कलंकरूपिणी हो। शांत-हृदया स्त्री-जाति तो ऐसी नहीं है, फिर तुझे ही क्या हो गया है।

राम को विपत्ति में देखकर पुत्र अपने पिताओं को त्याग देंगे और पति अपनी पत्नियों को। इस प्रकार यह संसार मर्यादारहित विपरीत व्यवहार वाला हो जाएगा। वनवास उसे दिया जाता है जिसने कोई घोर अपराध किया हो। फिर राम के बारे में ऐसे दुर्वचन कहते तेरी जीभ क्यों नहीं गिर पड़ी! तू विष पीने का भय दिखाती है। पी ले विष, मैं तेरा हाथ नहीं रोकूँगा। जल मरना चाहती है तो भी मैं पानी लेकर आग बुझाने नहीं आऊंगा। जो तेरे मन में आए वह कर, पर मैं तेरी निष्ठुर बातों को नहीं मानूँगा। मैं अब तुझे जीवित नहीं देखना चाहता।"

यह कहते-कहते वे अचेत हो गये। सचेत होने पर उन्होंने एक बार फिर कैकेयी को मनाने का प्रयत्न किया, पर वह पाषाणहृदया टस से मस नहीं हुई, अपनी बात पर अड़ी ही रही। उसके दुराग्रह से महाराज निराश होकर फिर अचेत हो गए और सारी रात लम्बे-लम्बे श्वास लेते पड़े रहे। प्रातःकाल जब मंगल-वाद्य बजने लगे तो राजा ने आज्ञा देकर उन्हें बन्द करवा दिया। कैकेयी ने सत्य की महिमा बखानते हुए राजा से वरदानों को पूरा करने के लिए फिर कहा और पूरा न होने पर आत्महत्या करने की धमकी दी।

राजा को फिर क्रोध आ गया। बोले, "मैंने अग्नि को साक्षी करके जो तेरा पाणि-ग्रहण किया था, उसे आज मुक्त करता हूँ और आज से भरत मेरा पुत्र नहीं। राम के अभिषेक के लिए जो पवित्र जल लाये गये हैं, उनसे मेरे मरने पर राम से मुझे जलांजलि दिला देना। तू और भरत मुझे जलांजलि न दें।"

पर कैकेयी कहाँ मानने वाली थी। उसने कहा, "राजन्! ये जली-कटी बातें कहने से क्या लाभ! आप राम को यहाँ बुलाइये। उसे कहिये कि वह वन को जाये, और भरत को युवराजपद दीजिये।"

राजा ने राम को देखने की इच्छा व्यक्त की। उधर महर्षि वसिष्ठ राजा दशरथ से मिलने अन्तःपुर में आ पहुँचे। वहाँ उन्हें महाराज के सचिव सुमंत मिल गये, जो उसी समय भीतर से निकले थे। उन्होंने सुमंत से कहा कि मेरे आगमन की सूचना महाराज को दो और उन्हें बताओ कि सारी तैयारी पूरी हो गई है। वे जल्दी करें जिससे पुष्य नक्षत्र में अभिषेक-विधि सम्पन्न हो सके।

सुमंत ने कक्ष में प्रवेश किया तो स्तब्ध रह गया। सुमंत बिना रोक-टोक के महाराज से मिलते थे। इसलिए आज भी उन्हें भीतर जाने से किसीने नहीं रोका। सुमंत महाराज को जगाने के लिये स्तुति-वचन बोलने लगे। महाराज ने एक बार दृष्टि उठाकर सुमंत की ओर देखा और बोले, "तुम्हारे ये स्तुति-वचन मेरे हृदय पर और भी गहरे आघात कर रहे हैं।"

सुमंत कुछ समझ नहीं पा रहा था कि बात क्या है। इस स्थिति को संभालते हुए कैकेयी बोली, "सुमंत! राम राज्याभिषेकजन्य प्रसन्नता-उत्साह से महाराज रात-भर जागते रहे हैं। इसलिए उन्हें इस समय नींद आ रही है। आप तुरंत जाइये और राम को यहाँ बुला लाइये।"

पर सुमंत ने आपत्ति की। बोला, "मैं महाराज की आज्ञा के बिना उन्हें कैसे बुला सकता हूँ!" यह सुनकर महाराज बोले, "सुमंत! मैं श्रीराम को देखना चाहता हूँ।" सुमंत श्रीराम को बुलाने जाते समय मार्ग में सोचने लगे कि यह रानी राम को बुलाने की ऐसी जल्दी क्यों मचा रही है। वे ज्यों ही अन्तःपुर से बाहर निकले, बाहर लोगों की भारी भीड़ एकत्र देखी। उनमें विद्वान ब्राह्मण, मंत्री, सेना के अधिकारी तथा प्रमुख नागरिक सम्मिलित थे। पुष्य नक्षत्र के दिन श्रीराम के जन्मलग्न कर्क में अभिषेक सम्पन्न होने वाला था। पवित्र तीर्थों, नदियों और सागरों का जल सुवर्ण-कलशों में भरकर रखा गया था। इसके अतिरिक्त चंवर, छत्र, श्वेत अश्व और अनेक प्रकार के वाद्य भी विद्यमान थे। एकत्र सत्पुरुष राजा तक अपने आगमन की सूचना भिजवाना चाह रहे थे। सुमंत्र ने उनसे कहा, "मैं महाराज की आज्ञा से श्रीराम को बुलाने जा रहा हूँ।" उन्होंने महाराज के प्रतिनिधि के रूप में सब का कुशल-मंगल पूछा और फिर अन्तःपुर को चले गये। महाराज दशरथ को उन्होंने सबके आगमन की सूचना दी। पर दशरथ बोले, "मैंने तो तुम्हें श्रीराम को बुलाने भेजा था। तुमने अभी तक क्यों नहीं बुलाया। जाओ, तुरन्त मेरी आज्ञा का पालन करो।" सुमंत्र श्रीराम के अन्तःपुर में गए और अपने आगमन की सूचना भिजवायी।

श्रीराम ने उन्हें तुरन्त भीतर बुला लिया। इस समय श्रीराम और सीता जी वस्त्राभूषण पहने अभिषेक-समारोह के लिये तैयार बैठे थे। सुमंत्र ने उन्हें बताया कि रानी कैकेयी के अन्तःपुर में बैठे महाराज आपको देखना चाहते हैं। श्रीराम पिता के पास चल पड़े। द्वार पर खड़े लक्ष्मण भी उनके साथ हो लिये। वे रथारूढ़ होकर चले।

श्रीराम ने पिता और माता के चरणों में प्रणाम किया। उन्होंने पिता को विवर्ण और विषाद में डूबे हुए देखा। महाराज दशरथ 'राम!' कहकर चुप हो गये। उनका गला रुंध गया और आंखें भर आईं। इसके आगे वे कुछ भी नहीं कह सके। वे राहु से ग्रस्त चन्द्रमा की तरह निस्तेज हो रहे थे। पिता के दुःख का कोई कारण श्रीराम की समझ में नहीं आ रहा था। वे समझ रहे थे कि सम्भवतः अनजाने मुझसे कोई अपराध हो गया है, जिसके कारण पिता जी अप्रसन्न हैं। उन्होंने माता कैकेयी से प्रार्थना की कि वे पिता जी की अप्रसन्नता का कारण बताएं और उनसे कहकर मुझे क्षमा दिला दें।

श्रीराम के पूछने पर कैकेयी बड़ी ढिठाई के साथ बोली, "न तो ये तुमपर अप्रसन्न हैं और न ही इन्हें कोई कष्ट है। इनके मन में कोई बात है, जिसे तुमसे कहने में संकोच कर रहे हैं। इन्होंने मुझे जो वचन दिया है, तुम्हें उसका अवश्य पालन करना चाहिए। मुझे वरदान देकर अब ये उसके लिए पछता रहे हैं। यह जो बात कहना चाहते हैं, यदि तुम उसे मानने की प्रतिज्ञा करो तो मैं तुम्हें बता सकती हूँ।"

श्रीराम ने प्रतिज्ञा की कि महाराज जो भी चाहते हैं, मैं उसे पूरा करूंगा। मेरे न मानने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

श्रीराम को भी वचनबद्ध कराकर कैकेयी निर्लज्जतापूर्वक बोली, "इन्होंने मुझे दो वरदान दे रखे थे। आज मैंने उनमें से एक के द्वारा भरत के लिये युवराज पद और दूसरे के द्वारा तुम्हारे लिए चौदह वर्ष का वनवास मांगा है। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे पिता सत्यप्रतिज्ञ रहें और तुम भी सत्यवादी कहलाओ तो मेरी कही बात के अनुसार आचरण करके दिखाओ।"

कैकेयी के ये कठोर वचन सुनकर भी राम विचलित नहीं हुए। वे बोले, "मां, जैसा आपने कहा, वैसा ही करूंगा। मैं आज ही वनवास को चला जाऊंगा। भरत को बुलाने के लिए तुरन्त दूत को भेज दिया जाये।"

कैकेयी फिर बोली, "राम! जब तक तुम वन को नहीं चले जाओगे, महाराज न तो स्नान करेंगे और न भोजन।"

श्रीराम ने कहा, "यद्यपि पिता जी ने मुझसे नहीं कहा तथापि मैं आपके कहने से भी वन जाने के लिये तैयार हूँ। आपका मुझपर पूरा-पूरा अधिकार है। मैं वन जाने की बात माता कौशल्या को बता दूं और सीता को भी समझा-बुझा दूं। आप ऐसी व्यवस्था कर दें कि भरत प्रजा का पालन और पिताजी की सेवा करते रहें। मैं आज ही दण्डकारण्य को चला जाऊंगा।"

श्रीराम के धर्मयुक्त वचन सुनकर उनके पिता बड़े दुःखी हुए। वे कुछ भी बोल न सके और फूट-फूटकर रोने लगे। श्रीराम माता-पिता को प्रणाम करके बाहर निकले। लक्ष्मण को पता लगा तो वे क्रुद्ध हो उठे और श्रीराम के पीछे-पीछे चलने लगे। राज्यलक्ष्मी का परित्याग करके वन जाने को उद्यत श्रीराम के मुखमण्डल पर दुःख का कोई चिह्न नहीं था। युवराज पद पर अपने अभिषेक की बात सुनकर न तो वे खिल उठे थे और न वनवास की बात सुन मुर्झाए। वे यह कष्टदायक समाचार सुनाने माता कौशल्या के पास पहुंचे। मार्ग में सभी लोग उन्हें अभिषेक की बधाइयां दे रहे थे। इस समय माता कौशल्या देव-पूजन कर रही थीं। जब वे उठकर आईं तो श्रीराम ने उन्हें प्रणाम किया। कौशल्या बोलीं, "बेटा, तुम्हारे अभिषेक का समय होने वाला है। अपने धर्मात्मा पिता के पास जाओ और उनके दर्शन करो।"

श्रीराम विनयपूर्वक बोले, "माता! जो नई घटना घटी है, उसे आप नहीं जानतीं। आपको, सीता को तथा लक्ष्मण को वह सब सुनकर दुःख तो होगा, पर क्या किया जाये। मैं आज ही चौदह वर्ष के लिए दण्डकारण्य को जाऊंगा। अब महाराज भरत को युवराज पद पर अभिषिक्त करेंगे।"

यह दारुण कथन सुनकर कुल्हाड़े से कटी वृक्ष की शाखा की तरह कौशल्या धरती पर गिर पड़ीं। श्रीराम ने उन्हें सहारा देकर उठाया। तब वे संताप से रोती हुई बोलीं, "बेटा, पटरानी होते हुए भी मैंने कभी सुख के दिन नहीं देखे। तुम्हारे राजा होने पर मैं राजमाता बनकर सुख के दिन देखूंगी, इस आशा में मैं जी रही थी। मुझे अपनी सौतों से सदा दुर्वचन

सुनने पड़ेंगे। अब भी सुनने पड़ते हैं। फिर जब तुम चले जाओगे तो मुझपर कैसे बीतेगी, इस की कल्पना की जा सकती है। पति की ओर से मुझे सदा कठोर व्यवहार मिला। पटरानी होकर मैं कैकेयी की दासियों जैसी ही समझी जाती रही। अब इस बुढ़ापे में मैं कैकेयी के क्रोध को सहन नहीं कर सकती। हाय ! मेरा हृदय फट क्यों नहीं जाता। इससे तो यही अच्छा था कि मैं मर जाती। यहां रहने से तो अच्छा है, मैं भी तेरे साथ जंगल में जाकर रहूँ।" माता कौशल्या के विलाप-वचनों को सुनकर श्रीराम का मन कातर हो उठा।

माता कौशल्या का विलाप सुनकर पास खड़े लक्ष्मण का क्रोध भड़क उठा। वे बोले, "माँ ! मुझे तो श्रीराम का इस तरह राज्य छोड़कर वन चले जाना ठीक नहीं लग रहा। पिता तो बुढ़ापे में सठिया गए हैं। उनका क्या, वे तो कुछ भी कह सकते हैं। फिर श्रीराम ने ऐसा कौन-सा अपराध किया है जिसके लिए उन्हें देश-निकाला दिया जा रहा है ! मैं इसका बलपूर्वक विरोध करूंगा और देखूंगा कि कौन मेरे सामने ठहरता है ! यदि हमारे विरोध में प्रजा आ खड़ी हुई तो मैं अपने बाणों से इस अयोध्यापुरी को ही मनुष्य-रहित कर दूंगा। मैं तो कहता हूँ कि यदि आवश्यक हुआ तो मैं पिताजी को भी कारावास में बंद कर दूंगा। क्योंकि कोई बड़ा भी कुमार्ग पर चलने लगे तो उसे भी दण्ड देना आवश्यक हो जाता है।"

लक्ष्मण की इन रोष भरी बातों को सुनकर माता कौशल्या बोलीं, "राम ! तुमने लक्ष्मण की बातें सुन लीं। अब यदि तुम्हें जँचती हों तो वैसा करो। और देख, तेरे लिए जैसे पिता पूज्य हैं, वैसे ही माता भी पूज्य है। मैं तुम्हें वन जाने की आज्ञा नहीं देती। फिर यदि तुम वन को चले गए तो मैं प्राण दे दूँगी और तुम्हें मातृवध का दोष लगेगा।"

तब शोकातुर माँ को समझाते हुए श्रीराम बोले, "मैं पिता की बात नहीं टाल सकता। मैं आपके पैरों पड़ता हूँ, मुझे वन को जाने दीजिये।" फिर वे लक्ष्मण को समझाते हुए बोले, "लक्ष्मण ! मेरे प्रति तुम्हारा जो स्नेह है, उसे मैं जानता हूँ और तुम्हारे बल-पराक्रम को भी जानता हूँ। तुम जो ये लड़ने-भिड़ने की बातें कर रहे हो, इन्हें छोड़ो। धर्म का अनुसरण करो और जैसा मैं कहता हूँ वैसा करो। मैं माता कैकेयी को इस घटना-चक्र में दोषी नहीं मानता। आज तक वे मुझे भरत के समान ही प्रिय समझती रहीं। आज अकस्मात् उनके बदल जाने को विधाता का ही विधान मानता हूँ।"

पर लक्ष्मण को यह धर्म की दुहाई और विधाता के विधान की बातें नहीं रुचीं। वे तो सब को तलवार से चीर डालना और बाण से बींध डालना चाहते थे। वे वरदान की बात को मनघड़न्त समझ रहे थे और पिता के अन्यायपूर्ण आज्ञा-पालन को अधर्म। किंतु श्रीराम ने उन्हें स्पष्ट बता दिया कि मैं तुम्हारी किसी बात का समर्थक नहीं हूँ और प्रसन्नता-पूर्वक पिता की आज्ञा का पालन करूँगा।

कौशल्या ने जब देखा कि राम पिता के आज्ञा-पालन में तत्पर है तो वे फिर बोलीं, "मेरा राम वन में कन्द-मूल खाकर कैसे रहेगा ! जैसे गाय अपने बछड़े के पीछे-पीछे चली

जाती है, वैसे ही मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे जाऊँगी।"

श्रीराम बोले, "मां, मेरे वन चले जाने पर आप पिताजी को छोड़कर कैसे जा सकती हैं! पति की सेवा करना पत्नी का सर्वोच्च धर्म है, और आपको पूरे मन से उसका पालन करना चाहिए।"

श्रीराम की बात सुनकर कौशल्या बोलीं, "बेटा! मैं तुम्हें वन जाने से रोकने में असमर्थ हूँ। अब तो मैं उस दिन की प्रतीक्षा में जीवित रहूँगी जब तुम जटा-वल्कल धारण किये वन से लौट आओगे। बेटा जाओ। जिस धर्म का तुम श्रद्धापूर्वक पालन कर रहे हो, वह धर्म ही तुम्हारी रक्षा करेगा।" फिर उन्होंने श्रीराम की मंगल-कामना में स्वस्ति-वाचन का पाठ किया और हृदय से लगाकर आशीर्वाद देकर विदा किया। श्रीराम ने माता के चरण छुए और विदा लेकर सीता जी के पास गए।

सीता जी को त्वरित गति में घूमते घटनाचक्र का कुछ भी पता नहीं था। वे तो यही समझ रही थीं कि इस समय मेरे पति का युवराज पद पर अभिषेक हो रहा होगा। श्रीराम जब सीता जी के पास पहुंचे तो लज्जा से उनका मुँह कुछ झुका हुआ था। सीता जी उन्हें देखते ही उठ खड़ी हुईं और पति के चिंताकुल मुख को देखकर कांप उठीं। श्रीराम ने उन्हें सारी बात कह सुनाई। फिर बोले, "मैं आज ही वन को चला जाऊँगा। मेरे चले जाने पर तुम नियमों-व्रतों का पालन करती हुई यहीं रहोगी। मेरे पीछे माता और पिता का तुम्हें ध्यान रखना होगा। और हां, भरत की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य न करना। और जो मेरी दूसरी माताएं हैं, उनका भी पूरा सम्मान करना। भरत और शत्रुघ्न को अपने भाइयों जैसा समझना। तुम सबके साथ ऐसा व्यवहार करना जिससे किसी को कष्ट न हो।"

श्रीराम की बात सुनकर प्रीतियुक्त क्रोध दिखाते हुए सीता जी श्रीराम से बोलीं, "यदि आप आज ही वन को जा रहे हैं तो मैं आपके आगे-आगे चलूंगी। मैं जैसे अपने पिता के घर में रहती थी, उसी प्रकार वन में भी आपके साथ सुखी रहूँगी। मुझे कोई जाने से रोक नहीं सकता! आपके बिना मैं स्वर्ग में भी नहीं रहना चाहूँगी। जहां आप रहेंगे, मेरे लिए वही स्थान स्वर्गोपम है। मेरे कारण आपको कोई कष्ट नहीं होगा।"

श्रीराम ने सीता जी की बात का विरोध किया। वे वनवास के कष्टों को समझाते हुए, उन्हें घर पर रहने के लिए कहते रहे, पर सीता जी ने उनकी बात नहीं मानी। वे बोलीं, "मैं तो आपकी छाया हूँ। जहां आप रहेंगे, मैं वहीं रहूँगी।"

पर श्रीराम फिर भी नहीं माने तो सीता बोलीं, "मेरे पूज्य पिता ने मुझे आपको सौंपते हुए यह नहीं समझा था कि आप नाम भर के लिए ही पुरुष हैं और आपके कार्य स्त्रियों जैसे हैं। जो पति अपनी पत्नी को वन में साथ रखने में तरह-तरह के भयों की बात सोच रहा हो, कल को लोग उसे क्या कहेंगे! जिस भरत के लिए आपका राज्याभिषेक रोक दिया गया, आप मुझे उसीके अधीन रहने का उपदेश दे रहे हैं, मुझसे यह नहीं होगा! आप चाहे

उसके अधीन रहूँ । निर्दोष होने पर भी जो आपको वन में भेजा जा रहा है, आप मुझे साथ न ले जाकर उसका बदला मुझसे चुकाना चाहते हैं ? मैं आपके साथ जाऊँगी, अन्यथा आज ही विषपान कर प्राण त्याग दूँगी ।"

भगवती सीता के दृढ़ निश्चय को देखकर श्रीराम ने उन्हें साथ चलने की अनुमति दे दी । फिर श्रीराम की आज्ञा से सीताजी ने ब्राह्मणों को रत्न, भिक्षुओं को भोजन और अपने उपयोग की वस्तुएं दास-दासियों को बांट दीं ।

श्रीराम और सीता जी में जो संवाद हो रहा था, कुछ समय पूर्व आ पहुँचे लक्ष्मण ने उसे सुन लिया था । इससे उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली थी । लक्ष्मण ने श्रीराम के पांव पकड़कर कहा, "यदि आपने वन जाने का निश्चय कर ही लिया है तो मैं भी आपका अनुसरण करूँगा और धनुष-बाण लेकर आपके आगे-आगे चलूंगा ।"

श्रीराम ने लक्ष्मण को रोका । पर वे नहीं माने । कहने लगे, "आपने पहले से ही मुझे अपने साथ रखने के लिए कहा हुआ है । फिर इस समय क्यों रोक रहे हैं ! जरा बताइये तो सही कि मुझे आप क्यों रोक रहे हैं ! "

श्रीराम बोले, "यदि तुम भी मेरे साथ चल पड़े तो पीछे माता कौशल्या और सुमित्रा की सेवा कौन करेगा ? महाराज तो छोटी माता के जाल में फँसे हुए हैं । माता कैकेयी भरत के युवराज बन जाने पर अपनी सौतों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करेंगी । माता कैकेयी के अधीन होने के कारण भरत भी माता कौशल्या और सुमित्रा का उचित सत्कार नहीं करेगा । इसलिए तुम यहीं रहो ! तुम्हारे यहां रहने से मेरा ही कार्य सिद्ध होगा । मेरे लिए ही तुम यहां रहो । यदि तुम भी चले गए तो हमारी माताएं दिन रात हमारी चिन्ता में डूबी, दुःखी रहेंगी ।"

लक्ष्मण ने कहा, "आपके तेज को जानते हुए भरत माताओं का पूरा सत्कार करेगा । और यदि राज्य पाकर वह घमण्ड के कारण ऐसा नहीं करेगा तो मैं उसे अपने बाणों से बींध दूंगा । और जो कोई भी उसका पक्ष लेगा, उसे भी जीता नहीं छोड़ूंगा । माताओं का भरण-पोषण कैसे होगा, इस बारे में तो चिन्ता करने की ही आवश्यकता नहीं । माता कौशल्या को एक हजार ग्रामों का स्वामित्व मिला हुआ है । वे अपने सभी आश्रितों का भी भरण-पोषण कर सकती हैं । मैं आपके साथ रहूँगा तो आपके लिए फल-कन्द-मूल और हवन-सामग्री आदि जुटा दिया करूँगा ।"

श्रीराम ने लक्ष्मण के आग्रह और प्रीति को देखते हुए उसे साथ चलने की अनुमति देते हुए कहा, "पहले जाकर माता सुमित्रा से आज्ञा ले लो । साथ ही महाराज जनक द्वारा दहेज में दिए हुए दो दिव्य धनुष, दो अमोघ कवच तथा अक्षय बाणों से भरे दो तूणीर और सोने की मूठों वाली दो तलवारें — ये सब वस्तुएं आचार्य के घर में रख दी थीं; इन सबको लेकर तुरंत लौट आओ ।"

लक्ष्मण ने तुरंत आज्ञा पालन किया। माता से अनुमति लेकर और महर्षि वसिष्ठ से उन शस्त्रास्त्रों को लेकर लौट आया। श्रीराम ने उसे कहा, "अब जाकर आचार्य वसिष्ठ के सुपुत्र विप्रवर सुयज्ञ तथा अन्य ब्राह्मणों को बुला लाओ, जिससे मैं अपना धन उन्हें बांट दूं।" लक्ष्मण ब्राह्मणों को बुला लाए और श्रीराम ने अपना सारा धन, आभूषण, पलंग, हाथी और गाएं उन्हें दान दे दीं। सीता जी के सारे आभूषण भी ब्राह्मण-पत्नियों को दे दिये। वेदपाठी ब्रह्मचारियों के लिए धन, चावल और दालों से लदे, ऊँट और बैल भेजे। एक हजार गौएं और एक एक हजार स्वर्णमुद्रा उन्हें दान दी। नौकर-चाकरों को इतना धन दिया कि चौदह वर्ष तक निर्वाह हो सके। उनको श्रीराम ने कहा, "जब तक मैं लौट न आऊँ, तुम यहीं रहना।"

इतना कर चुकने के बाद श्रीराम, सीता और लक्ष्मण पिता के दर्शन करने के लिए गए। उन्हें जाता देख नगर-निवासी रो पड़े। उनके मन में आया कि वे यहां का सब कुछ छोड़-छाड़कर श्रीराम के पीछे चल दें और अयोध्या को उजाड़कर जंगल बना डालें तथा श्रीराम के साथ जंगल में मंगल कर दें, वहीं दूसरी अयोध्या बसा लें। फिर कैकेयी इस उजड़ी अयोध्या का शासन करे।

श्रीराम माता कैकेयी के अन्तःपुर में प्रविष्ट हुए तो वहां खड़े शोकाकुल सुमंत्र को उन्होंने देखा। सुमंत्र ने महाराज को उनके आगमन की सूचना दी। महाराज ने सुमंत्र को अन्तःपुर की समस्त स्त्रियों को बुला लाने की आज्ञा दी और जब वे आ गईं तब श्रीराम, सीता और लक्ष्मण को बुलाने के लिये कहा। श्रीराम को हाथ जोड़ आते देख दशरथ अपने आसन से उठ खड़े हुए और उनकी ओर दौड़े, पर बीच में ही गिर पड़े। श्रीराम ने दौड़कर उन्हें उठाया और पलंग पर बिठा दिया। जब उनकी चेतना लौटी तो श्रीराम ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "महाराज! आप हम सबके स्वामी हैं। मैं दण्डकारण्य को जा रहा हूँ। कृपया अपनी मंगलमयी दृष्टि से मेरी ओर देखिये। लक्ष्मण तथा सीता को भी मेरे साथ वन जाने की अनुमति दीजिये। मैंने इन्हें बहुत रोका, पर ये माने ही नहीं।"

महाराज बोले, "राम! मैं कैकेयी को दिए वर के कारण मोह में पड़ गया हूँ। तुम मुझे कारागार में डाल दो और बलपूर्वक अयोध्या के राजा बन जाओ।"

यह सुनकर श्रीराम बोले, "महाराज! आप ही अयोध्या के राजा हैं। मैं तो वन में रह-कर तपस्या करूंगा। राज्य लेने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। चौदह वर्ष पश्चात् मैं आपके चरणों के दर्शन करूंगा।"

महाराज बोले, "अच्छा, मेरी बात मानकर एक रात और ठहर जाओ। यह जो कुछ हुआ है, मेरी इच्छा के विरुद्ध है। कैकेयी ने मुझे अपने जाल में फंसाकर छला है।"

श्रीराम बोले, "नहीं महाराज, मैं आज ही जाऊँगा। आप अयोध्या का राज्य भरत को देकर सत्यप्रतिज्ञ होइए। मेरे बारे में चिन्ता मत कीजिए। आप अपना मन मत दुखाइए।

आप धैर्य धारण करें और समस्त परिवार को धैर्य बंधाएं।"

महाराज ने श्रीराम को छाती से लगाया। वे रो रहे थे और उनका गला रुंधा हुआ था। वे राम को छोड़ नहीं रहे थे, किन्तु इस दारुण दुःख को न सह सकने के कारण वे फिर अचेत हो गये। अन्तःपुर में हाहाकार मच गया। सभी रो रहे थे। केवल कैकेयी चुप थी।

महाराज के सचिव सुमंत्र से यह सन्ताप सहा न गया। वे कैकेयी को समझाने और फटकारने लगे, पर उस निष्ठुरा पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। तब महाराज ने सुमंत्र को कहा, "श्रीराम के साथ सेना, कोष, अन्न और वस्त्रों का भण्डार भेजा जाए, जिससे यहां इन्हें जो-जो सुख-सुविधाएं प्राप्त थीं, वे वन में भी उपलब्ध हों।" इसपर कैकेयी को शंका हुई कि राजा तो सबकुछ लुटाकर अयोध्या के राज्य को कंगाल बना देंगे। उसने यहां से अन्न-धन भेजने का डटकर विरोध किया। श्रीराम ने भी कुछ साथ ले जाना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा,"मैं तपस्वी का-सा जीवन व्यतीत करूंगा। इसलिए राजोचित भोगों की मुझे आवश्यकता नहीं है। हां, मेरे लिए वल्कल तथा एक कुदाली और फावड़ा ला दें। वन में ये वस्तुएं मेरे काम आएंगी।"

इतना सुनते ही कैकेयी उठ खड़ी हुई और वल्कल वस्त्र लाकर श्रीराम से बोली, "लो, इन्हें पहनो और वन को जाओ।"

श्रीराम ने दो वल्कल वस्त्र लेकर, रेशमी वस्त्र उतार डाले और उन्हें पहन लिया। लक्ष्मण ने भी ऐसा ही किया। सीता जी ने भी अपने लिए दो वस्त्र ले लिए, पर वे नहीं जानती थीं कि इन्हें कैसे पहना जाता है। उन्होंने एक वस्त्र तो किसी तरह गले में बांध लिया, पर दूसरा मोटा वस्त्र वे नहीं पहन पायीं। उसे कैसे पहना जाये, यह उनकी समझ में नहीं आ रहा था, इसलिए उसे हाथ में पकड़े वे खड़ी रहीं। तब श्रीराम ने रेशमी वस्त्रों के ऊपर ही सीता को वह दूसरा वस्त्र पहना दिया। यह हृदय-विदारक दृश्य देखकर वहां खड़ी स्त्रियां फूट-फूटकर रोने लगीं। वे बोलीं, "श्रीराम! सीता को वल्कल वस्त्र क्यों पहनाए जा रहे हैं। इन्हें तो इस तरह वन जाने की आज्ञा किसीने नहीं दी है।"

इस करुण दृश्य को देखकर तपस्वियों में श्रेष्ठ महर्षि वसिष्ठ के धैर्य का बांध भी टूट गया और आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। उन्होंने कैकेयी को खूब फटकारा। उन्होंने कहा, "जिस भरत के लिए तू यह सब घृणित कार्य कर रही है वह भी श्रीराम के बिना अयोध्या में नहीं रहेगा। वह तेरे साथ भी पुत्र जैसा व्यवहार नहीं करेगा। तू जो कुछ कर रही है, इससे न तेरा भला होगा और न तेरे पुत्र का। तू राजा और प्रजा सब का अहित करने पर तुली हुई है। जब सारी प्रजा राम के साथ वन को चल देगी तब तुझे पता लगेगा कि राम के बिना यह सूनी अयोध्या तेरे किसी काम की नहीं है।"

लज्जा और पश्चाताप के मारे राजा दशरथ सिर नीचा किये बैठे थे। वन के लिए प्रस्थान को उद्यत श्रीराम ने उनसे कहा, "पिता जी, मेरी यशस्विनी माता कौशल्या अब वृद्ध

हो चली हैं। ये उदार स्वभाव वाली और पति-परायण हैं। अब से पूर्व उनपर कभी इतना बड़ा संकट नहीं आया। मेरे वियोग में वे शोक-सागर में डूब जाएंगी, अतः आप इनका पहले से भी अधिक सम्मान करें। ऐसा प्रयत्न करें कि ये मेरे वियोग के दुःख को भूली रहें। कहीं ऐसा न हो कि पुत्र के विछोह से दुःखी होकर ये परलोक सिधार जाएं।"

श्रीराम को सीता-सहित तपस्वी वेष में देखकर दुःख से संतप्त राजा दशरथ अचेत हो गए। वे न तो उनकी ओर देख सके और न कुछ बोल ही सके। फिर चेतना लौटने पर विलाप करते हुए बोले, "संभवतः मैंने पूर्वजन्म में अनेक गौओं से उनके बछड़ों को छीना है या अनेक प्राणियों की हिंसा की है जिस पाप के बदले आज मुझे यह दुःख देखना पड़ रहा है। मुझ पापी के प्राण भी तो नहीं निकलते।" फिर वे सुमंत्र से बोले, "सुमंत्र! जाकर एक रथ ले आओ और उसपर इन्हें बिठाकर नगर से बाहर तक छोड़ आओ।"

राजा की आज्ञा से सुमंत्र रथ ले आए। कोषाध्यक्ष को कह महाराज ने देवी सीता के लिए, चौदह वर्षों तक के लिए पर्याप्त उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण भी मंगवा दिए। सीता जी ने उनमें से कुछ वस्त्र और आभूषण पहन लिए। सीता जी की सास कौशल्या ने उन्हें छाती से लगा लिया और पतिव्रता के योग्य धर्म का उपदेश देने लगीं। सीता जी ने उन्हें आश्वासन दिया कि आप जैसा कह रही हैं, मैं वैसा ही करूंगी। सीता जी की बात सुनकर कौशल्या को प्रसन्नता भी हुई और उनके वन जाने के कारण दुःख भी। वे आंसू बहाती हुई बिलखती रहीं। श्रीराम ने उन्हें धैर्य बंधाते हुए कहा, "माता, मेरे वनवास के लिए पिता जी को दोषी मत समझना। ये चौदह वर्ष शीघ्र ही समाप्त हो जायेंगे।" फिर वे वहां उपस्थित सारी माताओं को सम्बोधित करते हुए हाथ जोड़कर बोले, "माताओ! कभी भूल से भी मैंने आपको कोई कठोर वचन कह दिया हो या अनजान में मुझसे कोई अपराध हो गया हो तो उसके लिए मुझे क्षमा कर दें और अब मुझे वन के लिए विदा करें।"

श्रीराम के वचन सुनकर सभी माताएं बिलखकर रो पड़ीं और सारे अन्तःपुर में हाहाकार मच गया। तदनन्तर श्रीराम, सीता और लक्ष्मण ने राजा दशरथ के चरण छूकर प्रदक्षिणा की। फिर माता कौशल्या के चरणों में प्रणाम किया। जब लक्ष्मण माता सुमित्रा के चरण छूने लगे तो रोती हुई सुमित्रा ने कहा, "बेटा! मैं तुम्हें विदा करती हूं। तुम सावधान होकर श्रीराम व सीता की सेवा करना और इन्हें माता-पिता की तरह समझना।"

सुमंत्र रथ लिए प्रतीक्षा में खड़े थे। देवी सीता सबसे पहले रथ पर चढ़ीं। जो अस्त्रास्त्र तथा कुदाली-फावड़ा वे साथ ले जाना चाहते थे, उन्हें भी रथ पर रख दिया गया। फिर श्रीराम-लक्ष्मण भी रथ पर चढ़ गए। सुमंत्र ने रथ हांका। इस समय वहां उपस्थित सब लोग मूर्छित होकर गिर पड़े। सारी नगरी में हाहाकार मच गया। रोते-बिलखते पुरवासी रथ के पीछे-पीछे दौड़ने लगे। पुरवासियों ने सुमंत्र को रथ धीरे-धीरे हांकने को कहा। वे श्रीराम, सीता और लक्ष्मण के चरित्र की प्रशंसा कर रहे थे।

उधर चेतना लौटने पर जब दशरथ ने देखा कि राम चले गए तो, 'मैं राम को देखूंगा' यह कहते हुए महल से बाहर निकल आए। श्रीराम ने सारी परिस्थिति को देखते हुए सुमंत्र को कहा कि रथ को तेज कीजिये। पुरवासी सुमंत्र को रथ धीरे हांकने के लिए कहते और श्रीराम तेजी से। राजा दशरथ श्रीराम के रथ के पीछे दौड़ने का प्रयत्न करते हुए फिर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। छिने हुए बछड़े वाली रंभाती गाय की तरह कौशल्या भी रथ के पीछे दौड़ने लगीं। सुमंत्र को 'ठहरो-ठहरो' की पुकार सुनाई दी। वे जैसे कुछ रुकने को हुए, श्रीराम ने रथ तेजी से हांकने को कहा। बेचारे सुमंत्र की स्थिति बड़ी उलझनपूर्ण थी। श्रीराम ने सुमंत्र से कहा, "आप लौटकर पिता जी से कह दीजिएगा कि श्रीराम ने घोड़ों को तेज दौड़ाने के लिए कहा था।" उधर मन्त्रियों ने महाराज दशरथ और महारानी कौशल्या को लौटा लिया।

राजमहलों समेत सारी अयोध्या नगरी में हाहाकार मच गया। ब्राह्मणों ने पूजा-पाठ नहीं किया। किसीके घर में चूल्हा नहीं जला। किसीने कोई काम नहीं किया। गौओं ने बछड़ों को दूध नहीं पिलाया और पशुओं ने अपना चारा छुआ तक नहीं। सभी नागरिक रानी कैकेयी और महाराज दशरथ को कोसते रहे।

महाराज दशरथ आंखों से ओझल होते रथ को उचक-उचक कर देखते रहे और अन्त में गिरते-पड़ते लौट पड़े। उन्होंने कैकेयी के अन्तःपुर में जाना अस्वीकार कर दिया और कौशल्या का सहारा लेकर उनके अन्तःपुर में चले गये। उन्हें वहां भी चैन नहीं पड़ी। महाराज को आंखों से दिखना बन्द हो गया। वे पास की वस्तु को भी देख नहीं पा रहे थे। उन्होंने कौशल्या से कहा, "मैं तुम्हें देख नहीं पा रहा हूँ। एक बार अपने हाथ से मेरा स्पर्श तो करो।" देवी कौशल्या का दुःख दुगुना हो गया। पुत्र-विछोह से पहले ही वे अत्यन्त दुःखी थीं, अब पति के जीवन-संकट से और भी चिन्तित हो उठीं।

घर की नागिन कैकेयी को कोसती और वन में श्रीराम, सीता और लक्ष्मण के कष्टों को सोचती कौशल्या सुबक-सुबक कर रोने लगीं। पास बैठी देवी सुमित्रा ने श्रीराम-लक्ष्मण के पराक्रम का बखान करते हुए उन्हें धैर्य बंधाया और विश्वास दिलाया कि वे यशस्वी होकर लौटेंगे और आप उन्हें फिर अयोध्या का राजा बनते देखेंगी। इससे कौशल्या कुछ-कुछ आश्वस्त हुईं।

उधर बहुत से प्रजाजन रथारूढ़ राम के पीछे चले जा रहे थे। वे लौटने का नाम ही नहीं लेते थे। श्रीराम ने उन्हें समझाते हुए कहा, "जैसा स्नेह आप मेरे प्रति दिखा रहे हैं, वैसा ही भरत के प्रति भी दिखाइए। वे प्रजा के हितचिन्तक और धर्मात्मा हैं। उनके राज्य में

आपको कोई कष्ट नहीं होगा। यदि आप लोग मेरा हित चाहते हैं तो मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लौट जाएं और भरत को भी मेरी ही तरह जानें-मानें। ऐसा करें जिससे महाराज दशरथ को कोई कष्ट न पहुंचे।"

कई वृद्ध ब्राह्मण राम के रथ के पीछे-पीछे दौड़ने का प्रयत्न कर रहे थे, पर दौड़ नहीं पा रहे थे। यह देख श्रीराम रथ से उतरकर धीरे-धीरे उनके साथ चलने लगे। ब्राह्मण श्रीराम को लौट चलने के लिए कह रहे थे और श्रीराम उन्हें लौट जाने के लिए। यों चलते-चलते वे तमसा नदी के तट पर जा पहुँचे। सुमंत्र ने रथ रोक दिया। घोड़ों को खोलकर पानी पिलाया और चरने के लिए छोड़ दिया। आज की रात श्रीराम ने वहीं विश्राम करने का निश्चय किया। वे माता-पिता के लिए चिन्तित थे, किन्तु धर्मात्मा भरत के सच्चरित्र की बात सोचकर निश्चिन्तता अनुभव कर रहे थे। सुमंत्र ने घोड़ों को बांध दिया और ढेर भर घास उनके आगे डाल दी। सबने सन्ध्योपासना की। श्रीराम ने आज भोजन नहीं किया। केवल जल पीकर रह गए। लक्ष्मण और सुमंत्र ने वृक्षों के पत्ते बीनकर सोने के लिए जगह बना दी। श्रीराम और सीता तो सो गए, किन्तु लक्ष्मण रात-भर जागते रहे और सुमंत्र से श्रीराम के गुणों की चर्चा करते रहे।

प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में उठकर प्रजाजनों को वृक्षों के नीचे सोते देख श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण! प्रजाजन हमें लौटा ले जाने या हमारे साथ वन में जाने के लिए कृतनिश्चय हैं, इसलिए हमें इन्हें सोते छोड़कर रथ पर चढ़कर चल देना चाहिए। आज्ञा पाकर सुमंत्र रथ को ले आए और श्रीराम, सीता और लक्ष्मण के बैठते ही सुमंत्र ने घोड़े दौड़ा दिए। रथ पर बैठे-बैठे ही उन्होंने तमसा नदी पार की। कहीं प्रजाजन फिर उनका पीछा न करें, इस आशंका से श्रीराम ने सुमंत्र से कहा, "हम यहां उतरकर एक ओर खड़े हो जाते हैं और आप खाली रथ को उत्तर की ओर ले जाकर चक्कर लगाकर फिर यहां लौट आइए, जिससे वे समझेंगे कि हम उत्तर की ओर गये हैं।"

सुमंत्र ने वैसा ही किया और घुमाकर रथ को फिर वहीं ले आए। सीता-सहित राम और लक्ष्मण फिर रथ पर चढ़े और तपोवन के मार्ग की ओर चल दिए।

उधर तमसा के तीर पर सोये पुरवासियों की जब आंखें खुलीं तो श्रीराम को वहां न देखकर वे ठगे-से रह गये। उन्होंने यह जानने का यत्न किया कि वे किस ओर गये हैं, पर कुछ भी निश्चित नहीं कर पाये। वे अपनी निगोड़ी नींद को कोसने लगे, जिसके कारण वे श्रीराम का अनुसरण नहीं कर सके। निराश पुरवासी, श्रीराम किस ओर गये हैं, इसका कोई निश्चित प्रमाण न पाकर बिलखते-रोते अयोध्या को लौट आये।

उधर सीता सहित श्रीराम-लक्ष्मण रथ पर बैठे कोसल जनपद की सीमा को पारकर मार्ग में पड़ने वाली वेदश्रुति नामक नदी को भी पार करके दक्षिण दिशा की ओर बढ़ चले। आगे गोमती और स्यन्दिका नदी को पारकर त्रिपथगा गंगा के तट पर जा पहुँचे। उस रात उन्होंने वहीं ठहरने का निश्चय किया।

गंगातट के इस शृंगवेरपुर क्षेत्र का राजा गुह श्रीराम का घनिष्ठ मित्र था। वह निषाद जाति का था। उसके पास अपनी सेना थी और सारे क्षेत्र में उसका बड़ा प्रभाव था। उसे जब श्रीराम के आगमन का पता लगा तो वह अपने मंत्रियों और बन्धुओं सहित उनके स्वागत-सत्कार के लिए पहुंचा। उसे आता देख लक्ष्मण-सहित श्रीराम आगे बढ़कर उससे मिले। उन्हें तापस वेष में देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने उनके लिए भोजन और शयन की उत्तम व्यवस्था की। घोड़ों के लिए चारा दिया। पर श्रीराम ने घोड़ों के चारे के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु स्वीकार नहीं की, क्योंकि वे तपस्वियों के नियमों-व्रतों का पालन कर रहे थे। इसलिए वे जल मात्र पीकर, पत्तों के बिछौने पर सोये। श्रीलक्ष्मण, गुह और सुमंत्र आपस में बातें करते हुए सारी रात जागते रहे।

प्रातः उठकर श्रीराम ने लक्ष्मण से गंगा पार करने के लिए कहा। उन्होंने गुह और सुमंत्र से कहकर उचित व्यवस्था कर दी। घाट पर एक सुन्दर नाव आ गई और गुह ने सबसे नाव पर बैठने के लिए कहा। श्रीराम ने सुमंत्र को अयोध्या लौट जाने के लिए कहा। श्रीराम ने उन्हें कहा, "आप महाराज की इच्छा केअनुकूल आचरण करते हुए उन्हें सुखी रखने का प्रयत्न करें और भरत आ जाएं तो उसे भी कहें कि वह सब माताओं के साथ समान व्यवहार करे।" पर सुमंत्र ने खाली रथ लेकर अयोध्या लौटना अस्वीकार कर दिया और श्रीराम के साथ चौदह वर्ष वन में रहने की इच्छा व्यक्त की। श्रीराम ने उन्हें समझा-बुझाकर अयोध्या लौट जाने के लिए मना लिया।

इसके पश्चात् वे निषादराज गुह से बोले, "प्रिय मित्र! इस समय ऐसे वन में रहना उचित नहीं जहां जनपद के लोग आ-जा सकें, इसलिए मैं गहन वन के निर्जन प्रदेश में आश्रम बनाकर रहूँगा। अब मुझे जटाएं धारण करनी होंगी। केशों को जटाओं का रूप देने के लिए आप वटवृक्ष का दूध ले आइये।" गुह दूध ले आया और लक्ष्मण-सहित श्रीराम ने इस चिपकने दूध से केशों को जटाओं में परिवर्तित कर दिया। फिर गुह से विदा होकर वे नौका पर जा बैठे। नौका जब गंगा के मध्य में पहुंची तो सीता जी ने वनवास के पश्चात् सब-के सकुशल अयोध्या लौट आने के लिए हाथ जोड़कर गंगा से मनौती मानी।

गंगा पार करके उन्होंने गहन वन के लिए प्रस्थान किया। सुरक्षा की दृष्टि से सबसे आगे लक्ष्मण, बीच में सीता और सबसे पीछे श्रीराम चले। चलते-चलते वे वत्स प्रदेश में जा पहुंचे और रात को एक वृक्ष के नीचे सो रहे। श्रीराम को बार-बार माता-पिता के दुःख का स्मरण हो आता। कैकेयी के कहने में आकर दशरथ के आचरण को देखते हुए उन्होंने सोचा, 'सम्भवतः धर्म और अर्थ से बढ़कर काम है, नहीं तो स्त्री के कहने से महाराज मुझे देश-निकाला न देते।' फिर उन्हें ध्यान आया कि क्रूरकर्मा कैकेयी माता कौशल्या और सुमित्रा को तरह-तरह के कष्ट दे सकती है और यह भी सम्भव है कि विष देकर मार डाले। इसलिए उन्होंने लक्ष्मण को अयोध्या लौट जाने के लिए कहा, जिससे दोनों माताओं को कष्ट से बचाया

जा सके और उनके जीवन की सुरक्षा हो सके। वे अपने को भी धिक्कारने लगे कि मुझे जन्म देकर माता कौशल्या ने दुःख ही दुःख झेला। मैं उन्हें सुखी नहीं कर सका। वे विलाप करते हुए आंसू बहाने लगे और रो पड़े।

लक्ष्मण ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा, "यदि आप ही इस तरह शोकग्रस्त हो जाएंगे तो मेरी और सीता जी की क्या दशा होगी।" उन्होंने श्रीराम को छोड़कर अयोध्या लौटना अस्वीकार कर दिया।

प्रातः उठकर उन्होंने आगे के लिए प्रस्थान किया। सांझ तक वे गंगा-यमुना के संगम के समीप भरद्वाज मुनि के आश्रम में जा पहुंचे। महर्षि भरद्वाज अग्निहोत्र के पश्चात् शिष्यों से घिरे बैठे थे। लक्ष्मण-सहित श्रीराम और सीता ने उन्हें प्रणाम किया। फिर उन्होंने अपना परिचय देते हुए अपने वनवास का कारण बताया।

महर्षि ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और कहा कि आप यहीं रहकर वनवास के दिन बिताइए। पर श्रीराम ने कहा कि अयोध्या से समीप होने के कारण, वहां से लोग हमें मिलने यहां आ जाया करेंगे, इसलिए यह स्थान हमारे वास के लिए उपयुक्त नहीं है। फिर उन्होंने महर्षि से कोई सुन्दर किन्तु निर्जन स्थान बताने की प्रार्थना की। महर्षि ने उन्हें चित्र-कूट जाकर रहने के लिए कहा। इधर-उधर की बातें करते सोने का समय हो गया। वह रात उन्होंने वहीं बिताई। दूसरे दिन प्रातः पवित्र यज्ञाग्नि के समान तेजस्वी धर्मात्मा भरद्वाज से आगे जाने की अनुमति मांगी।

महर्षि भरद्वाज ने मंगलकारक स्वस्तिवाचन का पाठ करके उन तीनों को चित्रकूट का मार्ग बताते हुए विदा किया। बांसों का बेड़ा बनाकर उन्होंने पवित्र यमुना नदी को पार किया। सीता जी ने सकुशल लौटने के लिए यमुना से भी मनौती मानी। यमुना पारकर उन्होंने चित्रकूट के मार्ग पर प्रस्थान किया। लक्ष्मण सीता जी के लिए कभी फूल के गुच्छे लाकर देते और कभी फल। वनश्री को देखकर सीता जी बहुत प्रसन्न थीं। वे बीच-बीच में विश्राम के लिए शीतल छाया वाले वृक्षों के नीचे बैठते और फिर चल पड़ते। रात को वृक्ष के नीचे काटकर प्रातः फिर चित्रकूट की ओर बढ़ चले। रास्ते में पुष्पित वृक्षों, वन्य फलों और निर्झरों की शोभा देखते-दिखाते, उठते-बैठते वे मार्ग पर बढ़ते रहे। मधुमक्खियों के छत्तों, हरिणों, हाथियों और वानरों को देखते; मोर, कोकिला और चातक के मधुर कूजन को सुनते वे चित्रकूट जा पहुंचे।

चित्रकूट की प्राकृतिक छटा बड़ी मनोरम थी। वहां पर्याप्त फल और कन्द-मूल थे। ऋषियों-मुनियों के आश्रम ने उसे पुण्यारण्य का रूप दे दिया था। लक्ष्मण-सहित श्रीराम-सीता ने चित्रकूट में महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में प्रवेश किया। उन पुण्य श्लोक महर्षि के चरणों में प्रणाम करके अपना परिचय दिया। कुछ देर विश्राम करने के पश्चात् श्रीराम ने लक्ष्मण को कहा, "मेरा यहां पर्णकुटी बनाकर रहने का विचार है, इसलिए तुम कुटिया बनाने के लिए

सामान जुटाओ।"

लक्ष्मण ने वन से लकड़ियां काटकर कुटिया तैयार कर दी और उसे घास से आच्छादित कर दिया। श्रीराम ने विधिवत् देव-पूजन करके उस कुटिया में प्रवेश किया।

चित्रकूट के पास ही मालावती नदी बहती थी। यह स्थान तपस्वियों के निवास के लिए सर्वथा उपयुक्त था। कन्द-फल-मूल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थे। वन्य पशु-पक्षी भी वहां खूब थे। वातावरण शान्त और मनोहारी था। तप और स्वाध्याय में लीन ऋषि-मुनियों के आश्रम इधर-उधर छितरे हुए थे। बाहरी लोगों की भीड़-भाड़ नहीं थी।

उधर जब श्रीराम गंगा के दक्षिण तट पर नौका से उतरकर ओझल हो गये तो गुह सुमंत्र के साथ घर लौट आये। सुमंत्र भी गुह से विदा लेकर भारी मन से अयोध्या की ओर लौट चले। दूसरे दिन वे अयोध्या पहुंचे तो देखा कि अयोध्या में श्मशान जैसी चुप्पी छायी हुई है। उनके पुरी में प्रवेश करते ही सैकड़ों नगर-निवासी दौड़े आये और पूछने लगे कि 'श्रीराम कहां हैं ?' वे रथ के साथ-साथ दौड़ रहे थे और 'राम कहां हैं ? राम कहां हैं ?' की पुकार लगा रहे थे। सुमंत्र ने उन्हें बताया कि गंगातट से उन्होंने मुझे लौटा दिया और स्वयं गंगा पारकर तपोवन की ओर चल दिये। यह सुनकर सारी भीड़ रो पड़ी और 'हा राम, हा लक्ष्मण, हा सीते' कहकर विलाप करने लगी।

राजमार्ग पर रथ हांकते सुमंत्र ने अपना मुंह ढक लिया, जिससे पुरवासी उन्हें पहचान न सकें। वे सीधे राजभवन की ओर चले। सात ड्योढ़ियां पार करने के पश्चात् उन्होंने महाराज दशरथ को दीन हीन दशा में शोक-संतप्त बैठे देखा। सुमंत्र ने प्रणाम करके श्रीरामचन्द्र जी का समाचार सुनाया। राजा सब सुनकर भी कुछ नहीं बोले और घनीभूत शोक के वेग से मूच्छित होकर गिर पड़े। महारानी कौशल्या ने सुमित्रा की सहायता से उन्हें उठाया और पलंग पर लिटा दिया। कौशल्या ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए सुमंत्र से बात करने को कहा। वे बोलीं, "देव ! इस समय कैकेयी यहां नहीं है, इसलिये आप निर्भय होकर राम का कुशल-समाचार पूछ सकते हैं। आपने सत्यधर्म का आचरण करते हुए जो कठिन कर्तव्य का पालन किया है, उसके लिये पश्चात्ताप करने की आवश्यकता नहीं है।" यों महाराज को सांत्वना देते-देते वे स्वयं अधीर होकर मूच्छित हो गई। सारे अन्तःपुर में हाहाकार मच गया और सब रोने-चिल्लाने लगे। कुछ क्षण बाद सचेत होने पर महाराज ने सुमंत्र को श्रीराम से सम्बन्धित एक-एक बात बताने तथा उनका सन्देश सुनाने को कहा। रुंधे गले से सुमंत्र ने गंगा-तट तक की यात्रा का विवरण और श्रीराम का सन्देश कह सुनाया। दशरथ फिर अधीर हो उठे और बोले, "तो राम को लौटा लाओ या मुझे उनके पास ले चलो।" उन्हें अपने किये पर पछतावा

हो रहा था और ये कैकेयी को बुरा-भला कह रहे थे। राम का सन्देश सुनकर कौशल्या का दुःख भी दुगुना हो गया। वे श्रीराम के पास पहुँचाने के लिये सुमंत्र से आग्रह करने लगीं। चतुर सुमंत्र ने उन्हें बताया कि श्रीराम के साथ सीता वन में भी अत्यन्त प्रसन्न हैं और श्रीराम भी निश्चिन्त होकर धर्म-पालन में तत्पर हैं। लक्ष्मण तो बड़े भाई को पिता से भी बढ़कर मानते हैं और उनकी सेवा में तत्पर रहकर बड़े प्रसन्न हैं। पर बछड़े से बिछुड़ी गाय की तरह कौशल्या रोती रहीं। फिर वे महाराज दशरथ को उपालम्भ देने लगीं कि उन्होंने कैकेयी को प्रसन्न करने के लिये इतना बड़ा अन्याय कर डाला। सुकुमारी पुत्रवधू सीता के लिये उनकी चिन्ता सर्वाधिक थी। चौदह वर्ष के बाद लौटे लक्ष्मण-सहित श्रीराम-सीता को देखने के लिये वे जीवित रहेंगी, इसमें उन्हें सन्देह था। वे इसलिए विधाता को कोसती थीं कि इस वज्रपात जैसे दारुण दुःख से उनका हृदय फट क्यों नहीं जाता। वे इसलिये भी दुःखी थीं कि पति को छोड़कर पुत्र के पास वन में चली जाती हैं तो अधर्म होगा।

कौशल्या के उपालम्भों को सुनकर महाराज दशरथ को अपने किये पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे हाथ जोड़कर कौशल्या से बारम्बार क्षमा माँगने लगे। अब तो कौशल्या का हृदय भी पसीज उठा और उन्होंने अपने कटु वचनों के लिए क्षमा-याचना की। महाराज का सन्ताप कुछ कम हुआ। रात हो चली थी। उन्हें नींद ने आ घेरा और वे सो गए। पर थोड़ी ही देर बाद उनकी नींद खुल गई। उस निस्तब्ध रात्रि में अपने पूर्वकर्मों को स्मरण करते-करते उन्हें अज्ञानवश किया अपना एक पापकर्म स्मरण हो आया। वे कौशल्या से उस पापकर्म की कथा सुनाते हुए बोले, "कौशल्ये ! जब मैं अभी राजकुमार ही था, उस समय धनुर्विद्या में मैंने सर्वत्र प्रसिद्धि पा ली थी। उन दिनों 'शब्दवेधी बाण-विद्या' की प्रशंसा सुनकर मैंने उसे सीखने का निश्चय किया। मुझे क्या पता था कि 'शब्दवेधी बाण-विद्या' ही मेरे पापकर्म का कारण बनेगी। देवि ! मेरा तुम्हारे साथ विवाह नहीं हुआ था। वर्षा ऋतु थी। सूर्यदेव अस्त हो चले थे। मेघघटा से आकाश ढका हुआ था। मेंढकों की टर्र-टर्र का शोर था। ऐसे ही समय मैं धनुष-बाण लेकर सरयू के तट पर मृगया के लिए निकल पड़ा था। मैंने निश्चय किया कि जहां वन्य जीव पानी पीने आते हैं, वहां छिपकर बैठूंगा और उनपर बाण चलाऊंगा। चारों ओर घना अन्धकार छाया हुआ था। मुझे पानी में घड़ा भरने का शब्द सुनाई दिया। मुझे दिख तो कुछ रहा नहीं था। मैंने समझा कि हाथी पानी पी रहा है और यह उसी का शब्द है। मैंने तूणीर से एक बाण निकाला और उस शब्द को लक्ष्य बनाकर छोड़ दिया। बाण के छूटते ही किसी वनवासी के गिरने और हा-हाकार की ध्वनि मुझे सुनाई दी। बाण से बिंधे उस व्यक्ति को बड़ी पीड़ा हो रही थी। कोई कह रहा था, 'पानी भरते मुझ तपस्वी को किसने बाण मारा ! मैंने तो उसका या किसीका कुछ बिगाड़ा नहीं था। फिर मुझ जैसे निरपराध तपस्वी का अस्त्र द्वारा वध क्यों किया जा रहा है ! मुझे अपने जीवन की नहीं, अपने माता-पिता की चिन्ता है। अब उनका क्या होगा। हत्यारे ने एक हो

बाण से मुझे और मेरे माता-पिता को मृत्यु के मुख में डाल दिया।'

"ये करुणापूर्ण वचन सुनकर मुझे अपने किए पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। मेरे हाथ से छूट कर धनुष पृथ्वी पर गिर पड़ा। मैं सरयू के तट पर उस स्थान पर पहुँचा जहां वह तपस्वी बाण-विधे पड़े थे। बिखरी हुई जटाएं, धूल और रक्त से सना हुआ शरीर, एक ओर पड़ा घड़ा—यह सब देखकर मैं भयभीत हो गया। उनकी दृष्टि मेरे लिए असह्य हो रही थी। मुझे लगा कि वे अपने तेज से मुझे भस्मसात् कर डालेंगे। पीड़ा से व्याकुल वह तपस्वी अपने प्राण-घातकमुझे देखकर बोले,'मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो तुमने मुझे पशु की तरह बाण से बींध डाला ? मैं तो अपने अन्धे और वृद्ध माता-पिता के लिए पानी लेने आया था। प्यास से व्याकुल वे मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। उन्हें क्या पता कि उनका पुत्र मर रहा है ! पर वे जानकर भी क्या कर सकते हैं ! वे तो स्वयं ही परवश और निरुपाय हैं। अब तुम जाकर उन्हें मेरे मरने का समाचार सुनाओ। मुझे लगता है कि वे क्रोध में तुम्हें शाप दे डालेंगे। यह पगडंडी मेरे पिता के आश्रम की ओर जाती है। तुम उन्हें जाकर प्रसन्न करने का प्रयत्न करो। और जाने से पूर्व मुझे लगे इस बाण को निकालते जाओ। यह मुझे बहुत कष्ट दे रहा है।'

"मैं द्विविधा में पड़ गया। सोचने लगा कि यदि बाण निकालता हूँ तो यह अभी मर जाएंगे और यदि नहीं निकालता हूँ तो पीड़ा से दुःख पाएंगे। वह मेरी इस स्थिति को देखकर कठिनाई से बोले, 'मैं ब्राह्मण नहीं हूँ इसलिए तुम ब्रह्महत्या की चिन्ता तो करो मत।' वह इतना ही कह पाये थे कि उनकी आंखों की पुतलियां घूम गईं। मैंने धीरे से बाण निकाल लिया। वह पीड़ा से छटपटा रहे थे। उन्होंने पथराई आंखों से मेरी ओर देखने का प्रयत्न किया। इतने में उनके प्राण निकल गये। मैंने घड़ा उठाकर जल से भरा और उन मुनि के बताये मार्ग पर आश्रम में जा पहुंचा। पक्ष-कटे पक्षियों की तरह विवश, अन्धे वृद्ध और दुर्बल उनके माता-पिता को देखकर मैंने अपने पाप की भयंकरता का अनुमान लगाया। वे जल की प्रतीक्षा में बैठे थे। मेरे पैरों की आहट सुनकर वे बोले,'बेटा, बड़ी देर लगा दी। हमें शीघ्र पानी पिलाओ। अरे ! बोलते क्यों नहीं ? हमारी किसी बात पर अप्रसन्न हो गये हो ? बेटा ! बड़ों की बात का बुरा नहीं माना करते। फिर तुम तो तपस्वी हो। हमारी आँखें तुम्हीं हो। बताओ, बोलते क्यों नहीं हो ? पहले तो तुमने कभी ऐसा आचरण नहीं किया। फिर आज ही ऐसी क्या बात हो गई है ?'

"मुझसे कुछ कहते नहीं बन रहा था। मेरी वाणी लड़खड़ा गई थी। बड़ी कठिनाई से साहस बटोरकर मैंने कहा, 'महात्मन् ! मैं आपका पुत्र नहीं हूँ। मैं दशरथ नामक क्षत्रिय हूँ। फिर मैंने सारी दुर्घटना उनसे कह सुनाई। मैंने उन्हें बताया कि अज्ञानवश मैंने आपके पुत्र की हत्या की है। अब आप चाहें तो मुझे क्षमा करें या दण्ड दें।'

"क्योंकि मैंने स्वयं अपना अपराध स्वीकार कर लिया था और यह अपराध मैंने जान-बूझकर नहीं किया था,इ सलिए उन्होंने मुझे कोई घोर शाप नहीं दिया। उन्होंने मुझे कहा

कि हम दोनों को वहां ले चलो जहां हमारा पुत्र मरा पड़ा है।' मैं उन्हें वहां ले गया। उन्होंने हाथों से पुत्र के मृत शरीर का स्पर्श किया और करुण विलाप करने लगे। फिर उन्होंने पुत्र को जलांजली अर्पण की। अन्त में मुझे शाप देते हुए वे प्रज्ञा-चक्षु बोले, 'जैसे पुत्रशोक से हम इस प्रकार दुःखी हो रहे हैं, उसी प्रकार तुम भी पुत्रशोक से काल के ग्रास बनोगे।' फिर वे बड़ी देर तक हृदय-विदारक विलाप करते रहे और मैं मूढ़-सा खड़ा रहा। फिर पुत्र की चिता में प्रवेश करके उन दोनों ने अपने को स्वाहा कर डाला। आज उन धर्मात्मा का वह शाप सच हो रहा है। अच्छा है, उन महात्मा का शाप सच हो। मेरा शरीर छूट जाये तो मैं कष्ट से मुक्ति पाऊं। अब और कौन-सा अनर्थ देखने को जीता रहूं? मुझे कुछ दिखाई नहीं दे रहा है। सिर चकरा रहा है। यमराज के दूत सिराहने खड़े हैं। वे मुझे ले जाने के लिए उतावले हो रहे हैं। हाय! मैं अभागा अन्त समय में अपने राम को देख भी नहीं सका। कौशल्ये! मेरी ज्ञानेन्द्रियां शिथिल पड़ गई हैं। जीवन-दीप अब बुझना ही चाहता है। हाय राम! तुम कहां चले गये? हा कौशल्ये! हा सुमित्रे! मुझे क्षमा करो। मैं जा रहा हूं। कैकेयी का मनचीता हो गया। हा राम! हा राम!!"

महाराज दशरथ के प्राण आधी रात के समय, श्रीराम के लिए रोते-बिलखते और पश्चात्ताप करते हुए निकल गये। पास बैठी कौशल्या और सुमित्रा पछाड़ खाकर गिर पड़ीं और अचेत हो गईं। वन की आग की तरह महाराज के प्राणान्त का समाचार सारी अयोध्या में फैल गया। राजभवन में हाहाकार मच गया। कौशल्या कुल-कलंकिनी कैकेयी को इस सब के लिए दोषी ठहराने लगीं। रानियों की भीड़ एकत्र हो गई और सब छाती पीट-पीटकर रोने लगीं। उनके आर्तनाद से राजभवन में कुछ भी सुनाई नहीं देता था।

मंत्रियों ने आकर रोती-कलपती रानियों को दूसरी स्त्रियों द्वारा वहां से हटवाकर महाराज के शव को तेल के बड़े भारी कड़ाहे में रखवा दिया जिससे भरत के आने तक वह सुरक्षित रह सके। श्रीराम-लक्ष्मण के चले जाने और महाराज के स्वर्ग सिधारने से कैकेयी को निरंकुश हुई जानकर सारी रानियां उससे भयभीत हो उठीं। उन्हें लगा कि अब हमें इस राजभवन में रहने नहीं दिया जाएगा। अयोध्या नगरी विधवा नारी की तरह श्री-शोभा से हीन हो गई। सब कोई कैकेयी की निंदा कर रहे थे, और प्रजावत्सल महाराज के लिए रो रहे थे।

वह दिन और रात्रि सबने रो-रोकर बिताई। दूसरे दिन महाराज के मंत्री और राजधर्म के उपदेशक मार्कण्डेय, वामदेव, गौतम आदि द्विज-श्रेष्ठ कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ के पास जाकर इस बात पर बल देने लगे कि तुरन्त किसी न किसी को राजपद पर बिठा देना चाहिए क्योंकि बिना राजा के राष्ट्र असुरक्षित, मर्यादारहित और उच्छृंखल हो जाता है। महाराज के जीवन-काल में भी आपकी सम्मति सर्वमान्य होती थी, इस समय भी जैसा आप कहेंगे, हम वैसा ही करेंगे।

महर्षि वसिष्ठ बोले, "स्वर्गीय महाराज ने यह राज्य कैकेयी-पुत्र भरत को दिया है। भरत इस समय केकय देश में अपने मामा के पास हैं। मेरे विचार में शीघ्रगामी घोड़ों पर दूतों को भेजकर उन्हें बुला लेना चाहिए। हम और कर भी क्या सकते हैं!" महर्षि ने पांच दूतों को भेजने का निश्चय किया और अच्छी तरह समझा दिया कि वे भरत से न तो लक्ष्मण-सहित श्रीराम-सीता के वनगमन की बात कहें और न महाराज के स्वर्ग सिधारने की। अपने चेहरों से भी शोक प्रकट न होने दें। अत्यन्त आवश्यक कार्य के लिए अयोध्या बुलाया है, बस, इतना ही कहें।

यात्रा के लिए आवश्यक सामग्री लेकर पांच दूत उत्तम जाति के घोड़ों पर चढ़कर भरत को बुलाने केकय देश जा पहुँचे।

जिस रात वे वहां पहुंचे, उससे पहली रात को भरत ने एक दुःस्वप्न देखा था और उसके प्रभाव से उनका चित्त अशान्त था। उनके मित्र उनका मनोरंजन करने के लिए तरह-तरह के उपाय कर रहे थे पर भरत के मन पर पड़ा दुःस्वप्न का प्रभाव ज्यों-का-त्यों बना हुआ था।

दूतों ने महर्षि वसिष्ठ द्वारा दिया हुआ सन्देश भरत से कह सुनाया। भरत ने पिता, तीनों माताओं और राम-लक्ष्मण का कुशल-मंगल पूछा। दूतों ने कह दिया कि जिनका कुशल-मंगल आप जानना चाहते हैं, वे सब कुशलपूर्वक हैं। आप रथ जुतवाइये और अयोध्या के लिए प्रस्थान कीजिए। भरत अयोध्या लौटने की आज्ञा लेने अपने नाना के पास पहुंचे। उन्होंने भरत को अयोध्या लौटने की आज्ञा दे दी और हाथी, कालीन, कम्बल, बाघों की तरह बड़े-बड़े जबड़ों वाले कुत्ते, दो हजार स्वर्णमुद्राएं, सोलह सौ घोड़े और बहुत-सी अन्य वस्तुएं भी दीं। कुछ बढ़िया खच्चर भी दिये और अपने मन्त्रियों को साथ भेजा। पर भरत का ध्यान वस्तुओं की ओर नहीं था। दूत शीघ्र चलने के लिए कह रहे थे और दुःस्वप्न का प्रभाव उनके मन पर बना हुआ था। वे सब से विदा लेकर और शत्रुघ्न-सहित रथ पर चढ़कर अयोध्या के लिए चल पड़े। सात रातें मार्ग में बिताकर वे आठवें दिन अयोध्या पहुंचे। अयोध्या में पहले जैसी चहल-पहल न देखकर किसी अनिष्ट की आशंका से महात्मा भरत का मुख म्लान हो गया। उन्हें सब कुछ बदला-बदला, श्रीहीन और रहस्यमय लग रहा था। वे सीधे राजभवन में महाराज के निवास में प्रविष्ट हुए, पर उन्हें वहां न देखकर माता कैकेयी के पास गये। पुत्र को आया देख कैकेयी अपने आसन से उठकर मिलने के लिए आगे बढ़ीं। महात्मा भरत ने माता के चरण छुए। माता कैकेयी ने मायके का कुशल-समाचार, कब चले थे, मार्ग में कोई कष्ट तो नहीं हुआ इत्यादि बातें पूछीं। भरत ने सब प्रश्नों का यथोचित उत्तर देने के बाद, माता से पूछा, "पिता जी कहां हैं? मुझे अकस्मात् बुलाने का क्या कारण है? क्या पिताजी माता कौशल्या के अन्तःपुर में हैं?"

रानी कैकेयी ने कहा, "पुत्र! तुम्हारे स्नेहशील पिता का देहान्त हो गया। वे स्वर्ग-

वासी हुए।"

पिता के मरण का दुःखद समाचार सुनकर भरत पछाड़ खाकर गिर पड़े। कैकेयी ने उन्हें सान्त्वना देने का प्रयत्न किया। वे रोते-रोते पूछने लगे,"माँ! पिता जी को ऐसा कौन सा रोग हो गया था? क्या उन्होंने अन्त समय मेरे लिए कुछ सन्देश दिया था? क्या कहते हुए उन्होंने प्राण छोड़े थे? श्रीराम और लक्ष्मण धन्य हैं जो अन्त समय पिता का दर्शन कर सके। माँ, किसीको भेज महात्मा राम को तो मेरे आने की सूचना दो। अब तो हमारे लिए वे ही पितृ-तुल्य हैं। हाय! मैं तो सोच रहा था कि पुरुष-व्याघ्र श्रीराम के राज्याभिषेक में सम्मिलित होने के लिए मुझे बुलाया होगा।"

कैकेयी बोली, "बेटा! तुम्हारे स्वर्गीय पिता ने 'हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण!' इस प्रकार विलाप करते हुए प्राण त्याग दिये। वे कह रहे थे कि जो लोग लक्ष्मण-सहित श्रीराम सीता को लौटा हुआ देखेंगे, वे भाग्यवान् हैं।"

भरत और भी आश्चर्य-चकित होकर बोले, "माँ, उस समय श्रीराम भाई लक्ष्मण और सीता जी के साथ कहाँ चले गये थे?"

तब कैकेयी ने बताया कि राम वल्कल-वस्त्र धारण कर सीता के साथ दण्डकारण्य चले गये थे और लक्ष्मण ने भी उनका अनुसरण किया था।

भरत ने फिर प्रश्न किया, "क्या राम ने किसी ब्राह्मण का धन छीन लिया था या किसी निरपराध व्यक्ति की हत्या कर दी थी। या किसी परायी स्त्री को उन्होंने कुदृष्टि से देखा था? किस अपराध के कारण उन्हें देश-निर्वासन का दण्ड दिया गया?"

उत्तर में कैकेयी ने कहा,"राम ने ऐसा कोई अपराध नहीं किया था। जब राम के राज्याभिषेक की बात मैंने सुनी तो मैंने महाराज से कहकर तुम्हारे लिए युवराज-पद और राम के लिए चौदह वर्ष के वनवास की माँग की। मेरी बात मानकर उन्होंने राम को वनवास की आज्ञा दी। साध्वी सीता और लक्ष्मण भी उनके साथ चले गये। बस, उन्हीं के बिछोह-दुःख से दुखी होकर महाराज ने प्राण त्याग दिये। बेटा! अब तुम राजपद को ग्रहण करो। तुम्हारे लिए ही मैंने यह सब कुछ किया है। अब तुम शोक को छोड़ो। अब अयोध्या का निष्कंटक राज्य तुम्हारे ही अधीन है। कुलगुरु वसिष्ठ द्वारा बताई विधि के अनुसार महाराज का अन्त्येष्टि संस्कार करके, राजपद पर अपना अभिषेक कराओ।"

पिता के देहान्त और लक्ष्मण-सहित श्रीराम-सीता के निर्वासन का समाचार सुनकर भरत संतप्त हो उठे और बोले,"पिता के स्वर्गवास के बाद राम के वनवास का वृत्तान्त सुनाकर तुमने मेरे घाव पर नमक छिड़क दिया। पतिघातिनी! क्यों तूने महाराज को मृत्यु के मुख में धकेल दिया और क्यों राम को वनवास दिया! राज्यलोभ के कारण तुमने यह भी नहीं सोचा कि श्रीराम के प्रति मेरा भाव कैसा है। मैं तुम्हारी दुर्भावनापूर्ण इच्छा को कभी पूरा नहीं होने दूँगा। मैं तुम्हें माता कहने को भी तैयार नहीं हूँ, पर क्या करूँ! भाई राम जो

माता के समान मानते हैं। तुमने हमारे पवित्र कुल को कलंकित कर दिया। मैं तुम्हारा मन-चाहा कभी नहीं होने दूंगा। मैं वन में जाकर राम भैया को लौटा लाऊंगा और उन्हें ही राजपद पर प्रतिष्ठित करूंगा। तुमने मेरे माथे पर जो कलंक का टीका लगाया है, मैं प्रयत्नपूर्वक उसे पोंछ डालूंगा।" इस तरह माँ कैकेयी को उसके दुष्टतापूर्ण कार्यों के लिए जली-कटी बातें सुना-कर भरत बड़ी मां कौशल्या के पास गये। कौशल्या भरत के पास आ रही थीं। मार्ग में वे उन्हें मिलीं। भरत रोते हुए उनसे गले मिले और दोनों रोने लगे। कौशल्या बोलीं, "बेटा! तुम राज्य चाहते थे न, वह तुम्हें मिल गया! अब तुम उसे सुखपूर्वक भोगो। पर राम को वनवास देने में तुम्हारी माता ने क्या लाभ देखा? अब तुम ऐसी व्यवस्था कर दो कि मैं और सुमित्रा भी राम के पास वन में पहुँच जायें।" निरपराध भरत बड़ी मां से इस तरह भर्त्सना सुनकर बड़े दुःखी हुए। वे माता कौशल्या के चरणों में गिरकर हाथ जोड़कर बोले, "मां, यहां जो कुछ हुआ है, मेरा उसमें कोई हाथ नहीं है। फिर आप मुझ निरपराध को क्यों कोस रही हैं?" भरत ने बार-बार शपथ खाकर माता कौशल्या को विश्वास दिलाया कि इस कुकृत्य का न तो मुझे पता था और न मेरी सम्मति थी।"

भरत के अपने को निर्दोष सिद्ध करने पर कौशल्या ने उन्हें गले लगाया और फिर कोई कटु बात नहीं कही।

इतने में महर्षि वसिष्ठ आ पहुंचे। उन्होंने भरत को सान्त्वना देते हुए महाराज का दाह-संस्कार करने की तैयारी करने को कहा।

भरत ने महर्षि के चरण छूकर प्रणाम किया और दाह-संस्कार की व्यवस्था करने के लिए मंत्रियों को कहा। राजा दशरथ का शव तेल के कड़ाहे से निकालकर पालकी पर रखा और विधि-विधान पूर्वक शव यात्रा प्रारम्भ हुई। श्मशान में चिता बनाकर शव को उसपर रखा गया। रोती-बिलखती रानियों ने चिता की परिक्रमा की। वेद मंत्रों के गान के साथ भरत ने दाह-संस्कार सम्पन्न किया। सरयू के पवित्र जल से सबने मृतक को जलांजलि अर्पण की और घर लौट आये। भरत दस दिन तक प्रेत-कृत्य करते हुए भूमि पर सोते रहे। ग्यारहवें दिन आत्मशुद्धि करने के पश्चात् बारहवें दिन महाराज का सपिण्डीकरण श्राद्ध किया। भरत ने ब्राह्मणों को भोजन कराया और दान-दक्षिणा में अन्न-धन, वस्त्र, गौएँ और घर दिये।

अब भरत श्रीराम के पास जाकर उन्हें लौटा लाने की बात करने लगे। शत्रुघ्न पिता की मृत्यु और बड़े भाइयों के वनवास का कारण माता कैकेयी को बताते हुए कोसने लगे। उन्हें अपने बड़े भाई लक्ष्मण पर भी क्रोध आया कि उन्होंने चुपचाप इस अन्याय को क्यों स्वीकार कर लिया। इसका विरोध क्यों नहीं किया। इतने में खूब सजी-संवरी कुब्जा मन्थरा वहां आ निकली। पास खड़ा द्वारपाल उस पापिनी को पकड़कर शत्रुघ्न के पास ले आया और बोला कि यही सारे अनर्थ की जड़ है। इसे उचित दण्ड मिलना चाहिए।

शत्रुघ्न ने दासियों से घिरी मन्थरा को पकड़ लिया और फटकारने लगे। कुब्जा जब

रोने-चिल्लाने लगी तो दासियाँ डर के मारे भाग खड़ी हुईं। उन्होंने आपस में सोचा कि शत्रुघ्न हमें जीता नहीं छोड़ेगा। उन्होंने अपने प्राण बचाने के लिए महारानी कौशल्या की सेवा में जाने का निश्चय किया। उधर शत्रुघ्न क्रोध में भरे कुब्जा मन्थरा को धरती पर घसीटने लगे। उसके गहने टूटकर बिखर गये और वह जोर-जोर से रोने-चिल्लाने लगी। मन्थरा को छुड़ाने के लिए रानी कैकेयी आई तो शत्रुघ्न ने उन्हें खूब जली-कटी बातें कहीं। भय से काँपती कैकेयी भरत के पास गई तब भरत ने शत्रुघ्न को समझा-बुझाकर शान्त किया।

चौदहवें दिन सारे मंत्री एकत्र होकर भरत के पास आये और बोले कि महाराज की इच्छानुसार आप हमें राज्याभिषेक करने की अनुमति दीजिए और राज्य का भार संभालकर प्रजा की रक्षा कीजिए।

यह सुनकर महात्मा भरत ने अभिषेक के लिए एकत्र सामग्री की प्रदक्षिणा की और मंत्रियों से बोले, "आप सब विद्या और बुद्धि से सम्पन्न हैं। आप मुझे जो बात कह रहे हैं, वह आपको नहीं कहनी चाहिए। आप जानते हैं, राजकुमारों में जो सबसे बड़ा होता है वही राज्य का उत्तराधिकारी होता है। धर्मात्मा श्रीराम ही इस राज्य का भार ग्रहण करेंगे। उन्हींका अभिषेक हम लोग करेंगे। इसलिए आप लोग यात्रा की उचित व्यवस्था कीजिए। मैं श्रीराम को बन से लौटा लाऊंगा। अभिषेक के लिए सज्जित सारी सामग्री को आगे करके मैं श्रीराम को मिलने बन में जाऊंगा।"

भरत की धर्मयुक्त बात सुनकर सभी मंत्री हर्ष से खिल उठे। विभिन्न कामों को जानने वाले कारीगरों की एक टुकड़ी भेजकर उन्हें मार्ग ठीक करने, नदियों पर पुल बनाने, पड़ाव डालने के लिए शिविर बनाने और अन्न-जल की समुचित व्यवस्था करने की आज्ञा दी।

कुलगुरु वसिष्ठ जी ने फिर एक बार भरत को राजपद संभालने के लिए कहा, पर वे नहीं माने। दूसरे दिन प्रातः मंत्रियों और पुरोहितों को आगे करके हाथियों, रथों, घोड़ों और पैदल सेना के साथ भरत ने यात्रा प्रारम्भ कर दी। बैलगाड़ियों और पालकियों की पंक्तियाँ उनके पीछे पीछे चलीं। गंगातट पर अवस्थित शृंगवेरपुर में पहुँचकर सेना-सहित भरत ने रात वहीं ठहरने का निश्चय किया। इतनी बड़ी सेना-सहित आये भरत को देखकर निषादराज गुह का मन सन्देह से भर उठा। उसने सोचा कि संभवतः भरत श्रीराम-लक्ष्मण से युद्ध करने जा रहा है। उसने अपने मल्लाहों और सेना को आज्ञा दी कि तुम तैयार होकर नौकाओं में बैठो। हम भरत को तब तक गंगा पार नहीं करने देंगे जब तक यह निश्चय न हो जाये कि वे श्रीराम-लक्ष्मण का अहित करने नहीं जा रहे हैं।

फिर गुह भेंट लेकर भरत से मिलने चले, जिससे उसके मन की थाह ली जा सके कि वह सेना लेकर क्या करने जा रहा है। सुमंत्र ने निषादराज गुह को आते देखकर भरत को बताया कि निषादराज श्रीराम का मित्र है। दण्डकारण्य को जाते समय उन्होंने भी यहीं रात काटी थी। निषादराज गुह यह भी बता सकेंगे कि श्रीराम इस समय कहां होंगे। इसलिए

आप उनसे अवश्य मिलें।

सुमंत्र की सम्मति मानकर धर्मात्मा भरत ने निषादराज गुह को अपने पास बुला लिया।

गुह बोले, "आप हमें अपने आने की सूचना दिए बिना चुपचाप चले आये, इसलिए हम आपके स्वागत-सत्कार की कोई समुचित व्यवस्था नहीं कर सके। फिर भी हमारे पास जो कुछ है, उसे आप अपना ही समझें और स्वीकार करें।"

भरत बोले, "आप हमारे बड़े भाई के मित्र हैं, इसलिए हमारे भी आदरणीय हैं।" फिर भरत पूछने लगे, "ये जो दो मार्ग दिखाई दे रहे हैं, इनमें कौन-सा भरद्वाज-आश्रम की ओर जाता है, यह तो बताइये ?"

गुह बोले, "राजपुत्र ! आप चिन्ता न कीजिए। मैं बहुत-से मल्लाह आपके साथ भेज दूंगा और स्वयं भी साथ चलूंगा। पर यह तो बताइये कि श्रीराम के प्रति आपके मन में कोई दुर्भाव तो नहीं है ? इस इतनी बड़ी सेना को देखकर मेरे मन में सन्देह हो रहा है।"

भरत बोले, "आपकी बात सुनकर मेरा मन बहुत खिन्न हो रहा है। आपको मन में ऐसा नहीं सोचना चाहिए। श्रीराम मेरे बड़े भाई हैं और मेरे लिए पितृतुल्य हैं। मैं उन्हें लौटा लाने के लिए जा रहा हूँ।"

यह सुनकर गुह को बड़ी प्रसन्नता हुई। रात हो चली थी। सेना को सोने की आज्ञा देकर भरत गुह से बातें करते रहे। गुह ने श्रीराम के प्रति लक्ष्मण के सेवाभाव का वर्णन करते हुए यह भी बताया कि उन दोनों भाइयों ने यहाँ जटाएं धारण कर ली थीं। यह सुनकर भरत को लगा कि अब संभवतः मैं उन्हें नहीं लौटा पाऊंगा। वे शोक से संतप्त होकर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उन्हें मूर्च्छित देखकर पास बैठे शत्रुघ्न भी रोने-बिलखने लगे। यह रोना-बिलखना सुनकर सभी माताएं वहां आ गईं। कौशल्या ने भरत को गोद में लेकर सचेत किया और पूछने लगीं, "तुम्हें कोई रोग तो नहीं हो गया, या तुमने श्रीराम-लक्ष्मण और सीता के सम्बन्ध में तो अप्रिय बात नहीं सुनी है ?"

भरत ने माता कौशल्या को आश्वस्त करके फिर गुह से पूछा, "श्रीराम ने यहाँ क्या खाया था तथा कहां सोये थे।" गुह ने सब कुछ बताते हुए कहा, कि वे उस वृक्ष के नीचे कुशा की शय्या पर सोये थे और केवल जल पीकर रह गये थे। लक्ष्मण सारी रात धनुष लिए पहरा देते रहे थे।"

लक्ष्मण-सहित श्रीराम सीता के वनवासजन्य कष्टों को सोचते हुए भरत फिर अपने को धिक्कारने लगे कि मेरे ही कारण यह सब अनर्थ हुआ।

प्रातःकाल जब गुह आ उपस्थित हुए तो भरत ने उन्हें कहा कि हमारे गंगा पार करने की व्यवस्था कर दें। गुह द्वारा लाई गयी पांच सौ नौकाएं तट पर आ लगीं और सभी गंगा-पार जा पहुंचे। गंगा पार करके भरद्वाज आश्रम से एक कोस पहले सेना को ठहराकर, पुरोहितों, मंत्रियों और माताओं सहित भरत महर्षि भरद्वाज के आश्रम को पैदल ही गये। भरत-

शत्रुघ्न ने महर्षि के चरणों में प्रणाम किया। महर्षि ने कुलगुरु वसिष्ठ और भरत आदि का यथोचित सत्कार कर उनका कुशल-मंगल पूछा।

महर्षि भरद्वाज को भी भरत के प्रति आशंका हुई। बोले, "भरत ! तुम तो राज्य कर रहे हो न ? तुम्हें आने की क्या आवश्यकता पड़ गई ! तुम श्रीराम-लक्ष्मण का अनिष्ठ करने तो उनके पास नहीं जा रहे हो न ? मुझे ठीक-ठीक बताओ।"

महर्षि के मन में अपने प्रति इस तरह का विचार जानकर भरत दुःखी हुए। उनकी आंखें छलछला पड़ीं और आत्मग्लानि से सिर नीचा हो गया। वे बोले, "महर्षि ! भाई श्रीराम को वनवास देने में मेरा कतई हाथ नहीं है। मैं तो उन्हें लौटा लाने के लिए जा रहा हूँ। आप कृपा करके बताइये कि इन दिनों श्रीराम कहां है ?"

महर्षि भरद्वाज ने भरत पर प्रसन्न होकर उन्हें बताया कि श्रीराम चित्रकूट पर्वत पर निवास कर रहे हैं। वह रात उन्होंने वहीं काटी और प्रातः चित्रकूट के लिए प्रस्थान किया। चित्रकूट के समीप पहुँचकर भरत ने आश्रम का पता लगाने के लिए अपने दूत भेजे। वे वन में जाकर एक स्थान पर धुआं देखकर लौट आये कि यहीं-कहीं दशरथनन्दन श्रीराम होंगे। दूतों से समाचार पाकर भरत ने सेना को वहीं पड़ाव डालने का आदेश दिया और स्वयं सुमंत्र और धृति नामक मंत्रियों के साथ आगे जाने का निश्चय किया।

उधर श्रीराम सीता को चित्रकूट की वनश्री और निकट प्रवाहित होने वाली मन्दाकिनी नदी की शोभा दिखा रहे थे। इतने में उन्हें सेना के चलने से उड़ने वाली धूल दिखाई दी और कोलाहल सुनाई दिया। वन के पशु-पक्षी इधर-उधर भागने-उड़ने लगे। हाथियों, मृगों और अन्य पशुओं के झुण्ड भयभीत होकर भागने लगे। श्रीराम ने लक्ष्मण को बुलाकर कहा, "लक्ष्मण ! किसी ऊंचे वृक्ष पर चढ़कर देखो तो कि पशुओं में यह भगदड़ क्यों मची है ?"

लक्ष्मण एक शाल वृक्ष पर चढ़कर देखने लगे तो उन्हें पूर्व दिशा में पड़ाव डाले बड़ी भारी सेना दिखाई दी। वृक्ष से उतरकर उन्होंने श्रीराम को सारी बात बताते हुए कहा, "कुटी की आग बुझ जाए, नहीं तो धुआं देखकर सैनिक इधर आ सकते हैं। देवी सीता को गुफा में छिपा दिया जाए और आप धनुष-बाण लेकर तैयार हो जाइए। मुझे लगता है कि यह सेना भरत की है। वे राजपद पर अभिषिक्त होकर अब हम दोनों को सदा के लिए समाप्त कर देना चाहते हैं, जिससे वे निष्कंटक राज्य का उपभोग कर सकें।"

यह कहते-कहते लक्ष्मण का चेहरा तमतमा उठा और आंखें लाल-लाल हो गईं। वे बोले, "आज युद्ध में मैं निस्संकोच भरत का बध करूंगा, जिसके कारण आपको कष्ट भोगना पड़ रहा है। कैकेयी का मनोरथ आज धूल में मिल जाएगा। मैं उसके सभी हित-चिन्तकों को यमराज के पास भेजकर शान्ति पाऊंगा।"

श्रीराम ने लक्ष्मण के क्रोध को शान्त करने का प्रयत्न किया। उन्होंने समझाते हुए कहा कि भरत हमसे युद्ध करने नहीं, मिलने आया होगा। जब भरत ने पहले कभी अनुचित कार्य नहीं किया तो अब क्यों करेगा। मैं तुम्हें स्पष्ट बता देना चाहता हूँ कि भाइयों से लकड़र प्राप्त किया हुआ राज्य मेरे लिये विष के समान है। मैं तुम्हें चेतावनी देता हूँ कि भरत आये तो उसे कोई कठोर वचन न बोलना। यदि तुम्हें राज्य की बहुत चिन्ता है तो मैं भरत से कहूँगा कि वह अयोध्या का राज्य लक्ष्मण को दे दे।"

श्रीराम के इस तरह कहने पर मारे लज्जा के लक्ष्मण ने सिर नीचा कर लिया। फिर बोले,"मेरे विचार में पिताजी हमसे मिलने आये हैं और वनवास के कष्ट का विचार कर हमें लौटा ले जाना चाहते हैं।"

उस ओर भरत ने शत्रुघ्न और निषादराज गुह से श्रीराम का पता लगाने के लिये कहा और स्वयं भी खोजने लगे। एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़कर उन्होंने एक कुटिया से उठते धुएं को देखकर अनुमान लगाया कि श्रीराम यहीं होंगे। उन्होंने कुलगुरु वसिष्ठ से माताओं के साथ आने की प्रार्थना की और स्वयं कुटिया की ओर बढ़े। कुटिया के पास कटी पड़ी समिधाओं, पैरों के चिह्नों और धुएं को देखकर उन्हें निश्चय हो चला था कि श्रीराम कहीं पास ही रहते हैं।

कुछ दूर चलने पर उन्हें श्रीराम की पर्णकुटी और यज्ञशाला दिखाई दी। पर्णकुटी में सिर पर जटा-जूट बाँधे श्रीराम विराजमान थे। पास ही भगवती सीता और लक्ष्मण भी बैठे हुए थे। उन्हें देखते ही भरत दौड़ पड़े। उन्हें रुलाई आ गयी और वे विलाप करते हुए अपने-आपको धिक्कारने लगे। वे श्रीराम के पास पहुँचने से पूर्व ही गिर पड़े। उनके मुंह से बात नहीं निकल रही थी। फिर शत्रुघ्न ने भी रोते-रोते श्रीराम के चरणों में प्रणाम किया। श्रीराम ने भरत और शत्रुघ्न को उठाकर छाती से लगा लिया और उनकी आँखें भी छलछला पड़ीं। फिर सुमंत्र और निषादराज गुह श्रीराम और लक्ष्मण से मिले। श्रीराम ने भरत को अपने पास बिठाकर पूछा, "तुम वन को क्यों चले आये। पिता जी तो जीवित हैं न ? माताएं तो सकुशल हैं ? महर्षि वसिष्ठ का तुम उचित आदर करते हो न!" इस तरह श्रीराम ने भरत से राजनीति, धर्म-नीति और अर्थ-नीति से सम्बन्धित अनेक प्रश्न पूछे। फिर उन्होंने भरत से तपस्वी वेष में आने का कारण पूछा।

श्रीरामचन्द्र जी के पूछने पर आन्तरिक शोक को दबाकर, हाथ जोड़कर भरत बोले, "आर्य ! हमारे पिता आपके वनवास-दुःख से दुःखी होकर स्वर्ग सिधार गये। मेरी माँ ने जिस अनुचित कार्य के लिये उन्हें विवश किया, उसका कुफल उन्हें मिल गया। वैधव्य और अपयश ही उनके पल्ले पड़ा। अब आप मुझपर कृपा करें और आज ही अपना अभिषेक करवाकर

राज्य-ग्रहण करें।" यह कहते हुए भरत ने फिर श्रीराम के चरण पकड़ लिये।

श्रीराम ने भरत को उठाकर कहा, "भरत ! क्या तुम मुझे पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने को कह रहे हो ? तुम्हें माता कैकेयी की निन्दा नहीं करनी चाहिये। तुम्हें भी पिता की आज्ञा को मानकर अयोध्या का राज्य सँभालना चाहिये।"

भरत बोले, "यह नहीं होगा ! पिता जी ने स्वेच्छा से तो आपको वनवास दिया नहीं था। वे तो आपके अयोध्या छोड़ते ही, वियोग-दुःख को न सह सकने के कारण स्वर्ग सिधार गये। अन्त समय तक वे आपको पुकारते रहे। उनका मन आपमें ही अटका रहा। आप जब तक वन में रहेंगे, पिता जी की आत्मा को शांति नहीं मिलेगी।"

पिता की मृत्यु के समाचार से श्रीराम मूर्च्छित होकर गिर पड़े। लक्ष्मण, सीता, भरत और शत्रुघ्न रोने लगे। सचेत होने पर पिता को स्मरण करके बड़ी देर तक विलाप करते रहे। फिर स्वर्गीय पिता का जलांजलि से तर्पण करने के लिये वे मन्दाकिनी के तट पर गये और जलांजलि अर्पण करके लौट आये।

उधर वसिष्ठ जी के साथ महारानी कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी भी धीरे-धीरे आश्रम की ओर चली आ रही थीं। माताओं को देखते ही श्रीराम उठ खड़े हुए और सबके चरण छूने लगे। सभी माताओं को दीन दशा में देखकर उन्हें रुलाई आ गई और सब माताएं भी रोने लगीं। लक्ष्मण ने भी सभी माताओं के चरण छुए। सीता जी सभी सासों के चरण छूकर, आँसू बहाती हुई उनके पास खड़ी हो गई। महारानी कौशल्या ने सीता जी को छाती से लगाया और उनके कठिन वनवास-जीवन का स्मरण करके रो पड़ीं। श्रीराम ने कुलगुरु वसिष्ठ के चरणों में भी प्रणाम किया। उधर सेना के पड़ाव से बहुत-से लोग श्रीराम का दर्शन करने आ पहुंचे। श्रीराम सुमंत्र आदि मंत्रियों तथा राजपुरुषों से मिले और सब लोग यज्ञशाला में बैठ गये। उस रात सभी शोकमग्न रहे। प्रातःकाल नित्यकर्मों से निवृत्त होकर फिर सभी यज्ञशाला में जा बैठे। सभी मौन सिर झुकाए बैठे थे। कोई कुछ बोल नहीं रहा था।

भरत इस मौन को तोड़ते हुए बोले, "भैया ! सत्यप्रतिज्ञ पिता जी ने मेरी माता को सन्तुष्ट करने के लिए यह राज्य मुझे दिया था। अब मैं उसे आपको सौंप रहा हूँ। मुझपर कृपा करके आप इसे स्वीकार करें।"

उपस्थित जनों ने भरत की बात का अनुमोदन किया और श्रीराम से अयोध्या लौट चलने का आग्रह किया। पर श्रीराम नहीं माने। उन्होंने भरत को शोक-मोह छोड़कर पिता जी की आज्ञा शिरोधार्य करके अयोध्या का राज संभालने का उपदेश दिया और स्वयं पिताजी की आज्ञानुसार चौदह वर्ष तक वन में रहने का दृढ़ निश्चय प्रकट किया।

पर भरत भी श्रीराम को लौटा ले चलने के लिए कटिबद्ध थे। वे बोले, "पिता जी की भूल को सुधारकर आप उन्हें और माता कैकेयी को लोक-निन्दा से ही बचायेंगे। मेरे विचार से पिता जी सठिया गये थे, नहीं तो वे ऐसा धर्मविरुद्ध कार्य नहीं करते। उन्होंने स्त्री-मोह में

पड़कर जो कुछ किया है, आप उसे पलट दें।"

पर श्रीराम फिर भी नहीं माने। उन्होंने कहा, "स्वर्गीय पिताजी ने तुम्हारे नाना को यह वचन दिया हुआ था कि उनकी बेटी का पुत्र ही उनका उत्तराधिकारी होगा। इसके अतिरिक्त माता कैकेयी को दो वरदान देकर उन्होंने मुझे और तुम्हें जो आज्ञा दी है, उसका पालन करके हम स्वर्गीय पिता जी को माता कैकेयी के ऋण से मुक्त कर स्वर्गलोकवासी ही बनायेंगे यही हमारा पवित्र कर्म है। तुम हठ छोड़कर सत्य और धर्म से युक्त मेरी बात को मानो और प्रजारक्षा का कार्य करो।"

श्रीराम को लौटने के लिए न मानते देखकर पुरोहित जाबालि तथा कुलगुरु वसिष्ठ ने भी उन्हें समझाने का प्रयत्न किया, पर श्रीराम नहीं माने।

जब भरत ने देखा कि ये तो किसी प्रकार भी नहीं मानते हैं तो उन्होंने श्रीराम की कुटिया के आगे धरना देने का निश्चय किया। वे कुशा बिछाकर वहीं बैठ गये और बोले, "जब तक श्रीराम अयोध्या का राज्य सँभालना स्वीकार नहीं करेंगे, मैं इसी प्रकार अन्न-जल ग्रहण किये बिना बैठा रहूँगा।"

बड़ी विकट समस्या खड़ी हो गई। अब ऋषि-मुनियों ने बीच-बचाव करके भरत को बड़े भाई श्रीराम की बात मानने के लिये बाध्य किया। भरत धरने से उठ खड़े हुए और फिर श्रीराम के चरणों में गिरकर उन्हें मनाने लगे। पर श्रीराम ने स्पष्ट कह दिया कि मैं किसी भी तरह पिता के वचनों को असत्य नहीं करूंगा।

जब भरत ने किसी भी तरह बात बनते नहीं देखी तो अभिषेक के लिए लायी हुई सामग्री में से स्वर्ण-पादुकाएं उठाकर वे श्रीराम के चरणों की ओर बढ़ाते हुए बोले,"कृपा करके इन पादुकाओं पर अपने पवित्र चरण रख दें। इन पादुकाओं का सेवक और प्रतिनिधि बनकर मैं राज्य का भार सँभालूँगा।"

महात्मा राम ने उन पादुकाओं को पहनकर उतार दिया और भरत ने उन्हें शिरोधार्य कर लिया। भरत बोले, "मैं भी चौदह वर्ष तक जटा और चीर धारण करके तथा फल-मूल खाकर तपस्वियों की तरह नगर से बाहर रहूँगा। राज्य का सारा शासन इन पादुकाओं को अग्रसर करके होगा और मैं आपके लौटने की प्रतीक्षा करूंगा। चौदह वर्ष पूरे होने पर भी यदि आप नहीं लौटे तो मैं अग्नि में प्रवेश करके आत्मदाह कर लूँगा।"

श्रीराम ने इसके लिये अपनी स्वीकृति दे दी और भरत को छाती से लगा लिया। फिर शत्रुघ्न से गले मिलकर उन्होंने भरत से कहा, 'भरत ! मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि माता कैकेयी का समुचित आदर करना। उनके प्रति कभी भी क्रोध न करना।"

भरत ने पादुकाओं को शिरोधार्य करके श्रीराम की परिक्रमा की। श्रीराम ने सब को यथोचित सत्कार के साथ विदा किया। उस विदा की बेला में सभी माताओं का गला रुँध गया। सबको प्रणाम करके आँसू बहाते श्रीराम कुटिया में लौट आये।

भरत चरण-पादुकाओं को लेकर शत्रुघ्न-सहित रथ पर चढ़कर अयोध्या को लौट चले। मन्दाकिनी नदी को पार करके वे भरद्वाजाश्रम में गये। भरत ने महर्षि भरद्वाज के पूछने पर बताया कि धर्मात्मा श्रीराम ने पिता के वचन को दृढ़तापूर्वक पालन करने का संकल्प किया है। अब मैं उनकी पादुकाओं का प्रतिनिधि बनकर राज्य का भार सँभालूंगा। सारी बात सुनकर भरद्वाज बहुत प्रसन्न हुए। भरत को उन्होंने आशीर्वाद देकर विदा किया। फिर भरत श्रृंगवेरपुर होते हुए अयोध्या में आ पहुँचे। सारी अयोध्या विधवा नारी की तरह श्रीशोभाविहीन हो रही थी।

अयोध्या में पहुँचकर गुरुजनों और मंत्रियों से

भरत ने कहा, "मैं राजप्रासादों में न रहकर नन्दिग्राम में जाकर रहूँगा।" उन्होंने श्रीराम की पादुकाओं को शिरोधार्य कर पुरोहितों और मंत्रियों के साथ नन्दिग्राम को प्रस्थान किया।

नन्दिग्राम में चरण-पादुकाओं की प्रतिष्ठा करके, उनके ऊपर राजछत्र लगाया गया। भरत ने चौदह वर्ष पर्यन्त श्रीराम के प्रतिनिधि के रूप में राज्य-शासन सँभालने और उनके लौट आने पर उनका सेवक बनकर रहने की घोषणा की। उन्होंने जटा-वल्कल धारण कर तपस्वी-जीवन का व्रत लिया।

भरत के लौट आने पर श्रीराम चित्रकूट में रहते रहे। उन्होंने देखा, चित्रकूट में निवास करने वाले ऋषिगण कुछ उद्विग्न हैं और चित्रकूट छोड़ने की तैयारी कर रहे हैं।

श्रीराम का मन शंकाशील हो उठा। वे आश्रम के कुलपति के पास जाकर बोले, "भगवन् ! मुझे कृपा करके बताइए कि मुझसे, साध्वी सीता से या लक्ष्मण से अनजाने कोई अपराध हो गया है जो आप चित्रकूट को छोड़कर किसी दूसरे तपोवन में आश्रय लेने के लिए जा रहे हैं ?"

श्रीराम के पूछने पर वृद्ध कुलपति बोले, "आप तीनों में से किसीसे कोई भी अपराध नहीं हुआ है। किन्तु आपके यहां रहने के कारण, राक्षस तपस्वियों पर अत्याचार करने लगे हैं। यहां वन-प्रान्तर में रावण का छोटा भाई खर नामक राक्षस रहता है। उस नरभक्षी ने तपस्वियों को बहुत दुःख देना प्रारम्भ कर दिया है। उसे आपका यहां रहना बहुत अखर रहा है। इसलिए जब से आप यहाँ आये हैं, उसके अत्याचारों में वृद्धि ही हुई है। इसलिए ये ऋषि मुझे भी अपने साथ दूसरे तपोवन में चलने को कह रहे हैं। वे मांसभोजी हमें मार डालें, इससे पूर्व ही हम इस आश्रम को छोड़ देना चाहते हैं। यदि आपका विचार हो तो आप भी हमारे साथ चलिये। यद्यपि आप वीर क्षत्रिय, धनुर्धर और सावधान हैं, फिर भी आपके साथ सीता हैं, इसलिए यह स्थान निरापद नहीं है।" यह कहकर वे वृद्ध कुलपति अपने दल के ऋषियों-सहित अन्यत्र चले गए।

उन ऋषियों के चले जाने पर श्रीराम ने सारी स्थिति पर विचार किया तो वे इस निश्चय पर पहुंचे कि उनका वहाँ रहना उचित नहीं है। यह सोचकर वे सीता और लक्ष्मण-सहित वहां से चल दिए। चलते-चलते वे महर्षि अत्रि के आश्रम में पहुंचे। उन पूज्यपाद महर्षि को उन तीनों ने प्रणाम किया और ब्रह्मवेत्ता अत्रि जी ने भी उन्हें सन्तान की तरह स्नेहपूर्वक अपनाया। फिर उन्होंने अपनी पत्नी महाभागा अनसूया को सीता का सत्कार करने के लिए कहा। श्रीराम को भगवती अनसूया का परिचय देते हुए महर्षि ने उनके अनुपम त्याग की कथा सुनाई। सीता जी को लेकर तपस्विनी अनसूया भीतर चली गई। देवी अनसूया बहुत बूढ़ी हो गई थीं। उनके सिर के बाल सफेद हो चुके थे और चेहरा झुर्रियों से भर गया था। उन्होंने श्रीराम के साथ वन आने के लिए सीता का अभिनन्दन किया। भगवती

अनसूया ने सीता जी को पतिभक्ति का उपदेश दिया। सीता जी ने उन तपस्विनी के उपदेश को शिरोधार्य करके बताया, "वन-गमन से पूर्व मेरी सास जी ने और विवाहोपरान्त पितृगृह से विदा होते समय माता-पिता ने मुझे जो शिक्षाएँ दी थीं, वे सब मेरे हृदय में अंकित हो गई हैं और मैं निष्ठापूर्वक उनका पालन करती हूँ।"

सीता जी की बात सुनकर भगवती अनसूया उनपर और भी प्रसन्न हुईं। वे बोलीं, "सीते! कोई अपना मनचाहा कार्य मुझे बताओ।"

प्रसन्नवदना सीता जी ने कहा, "आपने मुझे जो सारगर्भित उपदेश दिया है, इससे बढ़कर और प्रिय कार्य क्या हो सकता है! मैं आपके मंगल आशीष और उपदेश से कृतार्थ हो गई हूँ।"

पर अनसूया नहीं मानीं। वे दिव्य-हार, आभूषण, वस्त्र और अंगराग सीता जी को देते हुए बोलीं, "इन्हें धारण कर लेना।"

सीताजी ने उन तपस्विनी द्वारा प्रीतिपूर्वक दी हुई वे वस्तुएँ ले लीं। अब अनसूया जी ने बात छेड़ी, "सीते! मैंने सुना था कि राम ने तुम्हें स्वयंवर में प्राप्त किया था। अपने स्वयंवर की सारी बात मुझे बताओ तो भला।"

सीता जी ने अपने जन्म और स्वयंवर की सारी कथा सुनाई।

सन्ध्या हो चली थी अनसूया ने सीता जी को वे सब वस्त्र और आभूषण पहनकर ही श्रीराम के पास जाने को कहा। सीता जी ने उनके दिए वस्त्र-आभूषणों को पहनकर उनके चरणों में प्रणाम किया और आज्ञा लेकर श्रीराम के पास चली गईं। वह रात उन्होंने वहीं काटी।

प्रातः जब सभी नित्यकर्मों से निवृत्त हो चुके तो श्रीराम ने अन्यत्र जाने की आज्ञा माँगी। ऋषियों ने उन्हें बताया कि इस वन में सदा ही राक्षसों का भय बना रहता है। उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मण से राक्षसों को भगाने का आग्रह किया। फिर स्वस्तिवाचनपूर्वक तपस्वियों ने उन्हें वहाँ से विदा किया।

अरण्यकाण्ड

सीता-सहित श्रीराम-लक्ष्मण महर्षि अत्रि के आश्रम से चलकर घोर दण्डकारण्य में प्रविष्ट हुए। यहाँ ऋषियों के अनेक आश्रम थे। आश्रमवासियों ने इनका खब आदर-सत्कार किया। उस रात वहीं रहकर प्रातः वे आगे की यात्रा पर चले। चलते-चलते वे एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ जंगली पशुओं की भरमार थी। वहाँ उन्हें एक नरभक्षी राक्षस दिखायी दिया। वह बड़ा भयंकर और बलशाली था। विराध नामक वह राक्षस इनकी ओर लपका और देवी सीता को उठाकर ले गया। वह कुछ दूर जाकर खड़ा हो गया और दोनों भाइयों को ललकारता हुआ बोला, "तुम तपस्वी होकर भी युवती स्त्री को साथ लेकर क्यों घूम रहे हो! कुशल चाहते हो तो चुपचाप चले जाओ। इस स्त्री को मैं अपने पास रखूँगा।"

सीता जी मारे भय के थरथर काँप रही थीं। अकस्मात् आई इस विपत्ति से श्रीराम किंकर्तव्य-विमूढ़-से हो गये। लक्ष्मण ने उस राक्षस को तीरों से बींधना प्रारम्भ किया। श्रीराम ने भी उसपर बाण-वर्षा की। उस राक्षस ने सीता जी को तो एक ओर रख दिया और जंभाई और अंगड़ाई लेने लगा। ऐसा करते ही उसके शरीर में चुभे सारे बाण निकलकर गिर पड़े। फिर वह श्रीराम-लक्ष्मण पर झपटा। उसने उन दोनों को पकड़कर कन्धों पर बिठाया और घोर वन में चल पड़ा।

श्रीराम-लक्ष्मण को यों ले जाए जाते देखकर देवी सीता रोने लगीं। श्रीराम-लक्ष्मण ने उसकी दोनों भुजाएं मरोड़कर तोड़ डालीं। फिर जब वह गिर पड़ा तो उसे तलवारों के वारों से क्षत-विक्षत कर दिया, पर वह फिर भी मरा नहीं, तब श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि वर-प्राप्ति के कारण यह मरेगा नहीं। तुम एक बड़ा-सा गड्ढा खोदो। हम इसे जीवित ही उस गड्ढे में दबा देंगे।"

विराध ने श्रीराम को पहचानते हुए, कुबेर द्वारा शापित होने और श्रीराम द्वारा मारे जाने पर शापमुक्त होने की कथा कह सुनाई। विराध ने ही उन्हें बताया कि डेढ़ योजन की दूरी पर महामुनि शरभंग रहते हैं। उनके पास जाइये। वे आपके कल्याण की बात बतायेंगे।

उसे गड्ढे में दबाकर और सीता को साथ लेकर श्रीराम-लक्ष्मण महातपा शरभंग के आश्रम की ओर चल पड़े। शरभंग मुनि के आश्रम में पहुंचकर और महातपा उन ऋषि को

प्रणाम करके वे वहाँ बैठ गये। शरभंग मुनि ने उनसे कहा कि मैं इस शरीर को छोड़ने वाला हूँ। केवल आपके दर्शनों के लिए रुका हुआ था। अब आप यहाँ से मन्दाकिनी के प्रवाह की विरुद्ध दिशा में किनारे-किनारे चलते जाइए और सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में पहुंच जाइए।

लक्ष्मण-सहित श्रीराम-सीता जब तपोधन सुतीक्ष्ण के शान्तरूप आश्रम में पहुँचे तो वे पद्मासन लगाये ध्यान-मग्न बैठे हुए थे। उनका ध्यान टूटने पर तीनों ने मुनि-चरणों में प्रणाम किया। महर्षि सुतीक्ष्ण उन्हें अपने आश्रम में पाकर बड़े प्रसन्न हुए और आतिथ्य-सत्कार करने लगे। तपोधन सुतीक्ष्ण ने उन्हें वहीं ठहरने के लिए कहा, पर वे एक रात वहाँ रहकर दूसरे दिन अन्य आश्रमों को देखने की इच्छा से चल पड़े। वे अनेक आश्रम-मण्डलों में घूम-घूमकर महात्माओं के दर्शन और सत्संग से लाभान्वित हुए।

इसी प्रकार कहीं वर्ष भर, कहीं छह मास तो कहीं कम-अधिक ठहरते हुए सीता-सहित श्रीराम-लक्ष्मण ने वनवास के दस वर्ष पूरे कर लिये। वे फिर तपोधन सुतीक्ष्ण के आश्रम में लौट आये। वहाँ से उन्होंने मुनिवर अगस्त्य के आश्रम का दर्शन-लाभ करने की इच्छा व्यक्त की। तपोधन सुतीक्ष्ण ने महर्षि अगस्त्य के आश्रम का मार्ग समझाते हुए उन्हें विदा किया।

अगस्त्याश्रम में महर्षि का दर्शन करके और उनका आतिथ्य ग्रहण करके श्रीराम कृतार्थ हुए। महर्षि ने उन्हें विश्वकर्मा द्वारा निर्मित दिव्य धनुष-बाण तथा दो अमोघ तूणीर और एक तलवार भेंट की। श्रीराम ने महर्षि से कोई ऐसा स्थान बताने के लिए कहा जहाँ पर वे आश्रम बनाकर रह सकें। महर्षि ने उन्हें पंचवटी में रहने की सलाह दी। गोदावरी-तट पर स्थित पंचवटी की उन्होंने बड़ी प्रशंसा की। महर्षि की चरण-वन्दना करके वे तीनों पंचवटी की ओर चल पड़े।

मार्ग में उन्हें एक विशालकाय गृध्र मिला। श्रीराम ने समझा कि यह कोई राक्षस है। पर पूछने पर पता लगा कि ये तो मेरे पिता के मित्र हैं। फिर उस गृध्र पक्षी ने अपने वंश का परिचय देते हुए उनकी सहायता करने का प्रस्ताव किया। वे भी उसके साथ हो लिये। पंचवटी में पहुँचकर जलाशय के निकट एक समतल और मनोहारी स्थान देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण को कुटिया बनाने के लिए कहा। लक्ष्मण ने कुटिया तैयार कर दी और वे तीनों उसमें रहने लगे।

एक दिन कोई पहर दिन चढ़े जब श्रीराम लक्ष्मण के साथ बातें कर रहे थे, रावण की बहन राक्षसी शूर्पणखा वहाँ आ पहुँची। श्रीराम को देखकर वह उनपर मुग्ध हो गई। वह श्रीराम से बोली, "तपस्वी का वेष, सिर पर जटाएं, और साथ में स्त्री को लिये राक्षसों के इस क्षेत्र में तुम कैसे चले आये? किस उद्देश्य से तुम यहाँ आये हो, मुझे बताओ।"

श्रीराम ने अपना परिचय देकर और वनवास का कारण बताकर शूर्पणखा से उसका परिचय पूछा। शूर्पणखा ने अपने वंश का परिचय देकर अपने भाइयों रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण और खर के नाम बताये। फिर बोली, "राम! मैं तुम्हें अपना पति बनाना चाहती

है। सीता का साथ छोड़ो। मैं सीता और तुम्हारे इस भाई को खा डालूंगी। और फिर तुम मेरे साथ वनों और पर्वतों में घूमना।"

श्रीराम ने कहा, "तुम देख रही हो कि मेरा विवाह हो चुका है। सौत के साथ तो तुम रह नहीं सकोगी। हाँ, मेरे छोटे भाई लक्ष्मण से पूछ लो, वे चाहें तो तुम्हें अपना सकते हैं।"

यह सुनकर वह राक्षसी लक्ष्मण के पास गई और उन्हें पति बनने को कहा। पर लक्ष्मण ने टाल दिया, बोले, "मैं तो इनका दास हूँ। एक दास के साथ विवाह करके तुम भी इनकी दासी बन जाओगी। इससे तुम्हें क्या सुख मिलेगा! तुम श्रीराम की ही छोटी पत्नी बन जाओ।" वह फिर श्रीराम के पास गई और बोली कि इस ओछी स्त्री के कारण ही तुम मुझे स्वीकार नहीं कर रहे हो। इसलिए अभी तुम्हारे सामने मैं इसे खा डालूंगी। फिर तुम्हारा एकान्त प्रेम मुझे मिलेगा। यह कहकर वह श्री सीता जी पर झपटी। श्रीराम ने उसे रोक-कर सीता जी की प्राण-रक्षा की और फिर लक्ष्मण को समझाते हुए बोले कि राक्षसों के साथ परिहास नहीं करना चाहिए। अभी सीता के प्राण संकट में पड़ गये थे। इस पगली राक्षसी को अंगहीन करके कुरूप बना दो।

श्रीराम से आदेश पाकर लक्ष्मण ने तलवार निकाली और शूर्पणखा के नाक-कान काट डाले। नाक-कान कटने पर वह राक्षसी रोती-चिल्लाती जिधर से आई थी उधर ही चली गई। वहाँ से भागकर वह अपने भाई खर के पास गई और उसके सामने पछाड़ खाकर गिर पड़ी। बहन को रक्त से लथपथ और रोती-चीखती देखकर खर क्रोध से जल उठा। उसने बहन से उसके नाक-कान काटने की सारी कहानी सुनी तो उसने चौदह बलवान् राक्षसों को राम, लक्ष्मण और सीता को मारने के लिए भेजा। शूर्पणखा भी उनके साथ-साथ आई। श्रीराम ने उन्हें आता देखकर समझ लिया कि ये बदला लेने आये हैं। सीता जी की सुरक्षा का भार लक्ष्मण पर छोड़कर श्रीराम धनुष-बाण लेकर उन क्रूरकर्मा राक्षसों से लड़ने लगे और सभी को मार डाला। शूर्पणखा फिर भागी-भागी भाई खर के पास पहुँची और राक्षसों के मारे जाने का समाचार सुनाया। इस बार श्रीराम के पराक्रम को प्रत्यक्ष देखकर वह पहले से अधिक भयभीत थी। उसने खर को भड़काते हुए कहा, "तुम्हारे रहते नाक-कान काटकर मुझे अपमानित किया गया, तुम्हारे भेजे राक्षसों को मार डाला गया। अब यदि तुम उन्हें आज ही नहीं मार डालते हो तो मैं तुम्हारे सामने अपने प्राण दे दूंगी। मुझे तो लगता है कि राम का इस दण्डक वन में रहना राक्षसों के लिए भयकारक है। तुम या तो उन्हें मार डालो या फिर यहाँ से भाग जाओ।"

शूर्पणखा द्वारा यों भड़काने पर खर ने अपने सेनापति दूषण को श्रीराम से युद्ध करने के लिए सेना सज्जित करने की आज्ञा दी। खर स्वयं भी रथारूढ़ होकर सेना के मध्य में चला। घोर गर्जन करती यह राक्षस-सेना पंचवटी में पहुँची।

श्रीराम ने जब राक्षस-सेना को आते देखा तो लक्ष्मण को आज्ञा दी कि तुम सीता की

थे ?'' तब अकम्पन ने अकेले श्रीराम द्वारा ही समस्त राक्षसों के संहार की बात कही। उसने बताया कि उसके साथ उसका छोटा भाई लक्ष्मण और अत्यन्त रूपवती पत्नी सीता भी है। रावण ने अकम्पन को बताया कि मैं शीघ्र ही लक्ष्मण-सहित राम का वध करूंगा। पर अकम्पन ने फिर राम के अमित बल का बखान करते हुए बताया कि उन्हें युद्ध में जीतना कठिन है। हां, एक उपाय है। श्रीराम को सीता परम प्रिय है। यदि किसी प्रकार सीता का हरण कर लिया जाये तो राम उसके वियोग-दुःख से ही मर जायेगा। रावण को यह युक्ति जँच गई। उसने निश्चय किया कि मैं सीता का अपहरण करूंगा।

दूसरे दिन प्रातः रावण रथारूढ़ होकर पंचवटी की ओर चला। मार्ग में उसने ताड़का के पुत्र मारीच से भेंट की। मारीच ने लंकापति का खूब आदर-सत्कार किया। रावण ने मारीच को बताया कि श्रीराम ने मेरे राज्य की सीमा-रक्षा करने वाले मेरे भाई खर और उसकी सेना का संहार कर डाला है। अतः उसका बदला लेने के लिए मैं उनकी पत्नी सीता का हरण करूंगा। इस कार्य में तुम मेरी सहायता करो।

मारीच बोला, ''मित्र के रूप में वह तुम्हारा कौन शत्रु है जिसने तुम्हें सीता के हरण की सलाह दी है। मुझे उसका नाम तो बताओ। जिस किसीने भी यह सलाह दी है, वह तुम्हारा और राक्षस-जाति का भी शत्रु है। मेरी बात मानो और उस सोये सिंह को मत जगाओ। पीछे मुड़ो और लंका को लौट जाओ। राम को सीता के साथ वन में रहने दो। सांप के मुंह में हाथ डालने जैसा यह काम मत करो। इसीमें तुम्हारा और राक्षसकुल का कल्याण है।''

मारीच की बात रावण ने मान ली और लंका को लौट गया।

उधर शूर्पणखा ने जब देखा कि समस्त राक्षस-सेना सहित खर को अकेले राम ने युद्ध में नष्ट कर दिया है तो वह लंकापुरी जा पहुँची और रावण से अपनी दुर्दशा की कहानी कह सुनाई। उसने रावण को खूब फटकारा और कहा, ''जिसने मेरे नाक-कान काट लिए उसी के एक भाई ने तेरे भाई खर को सेना-सहित मार डाला और तू यहां मौज मना रहा है। तुझे धिक्कार है! तू कैसा राजा है। तेरे गुप्तचर कहां हैं ? तेरे सब मंत्री अयोग्य हैं। तुम्हें कुछ पता नहीं है कि सीमाओं पर क्या हो रहा है ? तुम्हारे ऊपर जो संकट आ गया है, तुम उससे बेखबर हो।''

शूर्पणखा द्वारा कर्तव्य का उद्बोधन मिलने पर रावण बड़ी देर तक चिन्तामग्न हुआ सोचता रहा। फिर क्रोध से जलते हुए उस राक्षसराज ने शूर्पणखा के विरूप होने का कारण पूछा। शूर्पणखा ने सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए बताया, ''मैं उसे तुम्हारी भार्या बनाने की इच्छा से बलपूर्वक ले आना चाहती थी कि लक्ष्मण ने मेरे नाक-कान काटकर मुझे अपमानित किया। वह तो मुझे मार ही डालता पर संभवतः स्त्री समझकर छोड़ दिया। यदि तुम में शक्ति है तो राम पर विजय प्राप्त करो और सीता को अपनी पत्नी बनाओ। वह

अप्रतिम सुन्दरी तुम्हारे ही योग्य है। तुम उसे एक बार देख भर लोगे तो उसे प्राप्त किये बिना चैन नहीं पाओगे।"

रावण ने निश्चय किया कि सीता का अपहरण करके उसे अपने अन्तःपुर में लायेगा। उसने सारथि को रथ तैयार करने की आज्ञा दी और रथ पर चढ़कर आकाश-मार्ग से समुद्र पार पहुंचा। वह जटा-वल्कलधारी मारीच राक्षस के आश्रम में गया। मारीच ने रावण के कुछ ही दिनों के बाद यहां दोबारा आने का कारण पूछा तो रावण ने बताया, "राम ने अकारण ही मेरी बहन शूर्पणखा के नाक-कान अपने भाई लक्ष्मण को कहकर कटवा डाले हैं। इसलिए उस अधार्मिक कृत्य के लिए मैं राम को यथोचित दण्ड देना चाहता हूँ। इस कार्य में मुझे तुम्हारी सहायता चाहिए। तुम बड़े मायावी और अवसरोचित उपाय को जानने वाले हो, इसलिए मेरे साथ चलो। मैंने एक उपाय सोचा है। तुम सुनहरे चितकबरे मृग का रूप धारण करके राम के आश्रम में सीता के सामने विचरो। तुम्हारे सुरूप के कारण सीता श्रीराम को तुम्हें पकड़कर लाने के लिए कहेगी। जब वे दोनों भाई तुम्हारा पीछा करते दूर निकल जायेंगे तो मैं पीछे से बलपूर्वक सीता को उठा लाऊँगा। फिर सीता के वियोग से दुःखी राम पर मैं यथासमय प्रहार करूंगा और बदला लूंगा।"

रावण के मुख से राम के साथ वैर बढ़ाने की बात सुनकर मारीच का मुँह सूख गया और वह भय से थर-थर कांपने लगा। वह हाथ जोड़कर रावण से बोला, "राजन्! मीठी बातें बोलने वाले लोगों की कमी नहीं है। परन्तु कड़वी, पर हितकर बात कहने और सुनने वाले दोनों ही दुर्लभ हैं। तुम्हें राम के बल-पौरुष का ठीक-ठाक पता नहीं है। राक्षस वंश का कल्याण चाहते हो तो उसे मत छेड़ो। यह सीता-हरण काण्ड कहीं तुम्हारी दुर्दशा का कारण न बन जाये। लंकापुरी के दुर्दिन तो नहीं आये हैं, जो तुम इस तरह की बात सोच रहे हो। यदि तुम अपने जीवन और राज्य का चिरकाल तक उपभोग करना चाहते हो तो राम के प्रति अपराध करने से रुको। तुम नहीं जानते, मैं उनको जानता हूँ। तब तो वे अभी बालक ही थे। उनके एक ही बाण से मैं कोसों दूर समुद्र में जाकर गिरा था। बस, यह समझो कि मरा नहीं। मैं तुम्हारा हितैषी हूँ। मेरी बात मानो और सीता-हरण का पाप मत करो। तुम्हारे अन्तःपुर में कितनी ही रानियां हैं। हां, राम से आमने-सामने के युद्ध में लड़कर देखना चाहो तो देख लो। मैं इस कार्य में तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता। मुझे तो उनके नाम से भी डर लगता है। और तुम देख रहे हो, मैंने राक्षसी माया और हिंसा का परित्याग करके तपस्वी का जीवन अपना लिया है।"

भुक्तभोगी मारीच की हित-युक्त बातें रावण को अच्छी नहीं लगीं। उसका तो विनाशकाल ही आ रहा था। वह बोला, "तुम्हारी इन भययुक्त और दीनतापूर्ण बातों से मेरा दृढ़ निश्चय नहीं बदल सकता। मैंने तुमसे सलाह नहीं मांगी, सहायता मांगी थी। अच्छा, अब तुम समझ लो कि तुम्हें क्या करना है। तुम सुनहरे-चितकबरे हिरण का रूप

बनाकर पंचवटी में सीता के सामने घूमो। सीता को एक बार लुभाकर, जहाँ चाहो वहाँ चले जाना। सीता के कहने से राम तुम्हें पकड़ने के लिए आयेगा। उसे आश्रम से दूर ले जाना और राम के स्वर में 'हा सीते ! हा लक्ष्मण !' कहकर पुकारना। तुम्हारी पुकार सुनकर सीता की प्रेरणा से लक्ष्मण भी भाई की सहायता के लिए कुटिया से चला जायेगा। बस, मेरा काम बन जायेगा। पीछे अकेली सीता को मैं बलपूर्वक हर लाऊंगा। बस, यह छोटा-सा काम तुम्हें करना है और इसके बदले मैं तुम्हें आधा राज्य दूंगा। अभी चलो ! मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे आ रहा हूँ। यह काम तुम्हें अवश्य करना है। समझे ! नहीं करते हो तो मैं अभी तुम्हें मार डालूंगा। मृग बनने पर भी तुम्हारे प्राणों पर संकट आ सकता है। पर उसमें संशय है। परन्तु मुझे मना करने से तो तुम्हें निश्चित रूप से अभी अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे।"

मारीच ने फिर भी रावण को समझाने-बुझाने का प्रयत्न किया, पर व्यर्थ। फिर उसने निश्चय किया कि राक्षसराज रावण से मृत्यु-दण्ड पाकर मरने से पराक्रमी शत्रु राम के हाथों मरना अधिक अच्छा है। वह बोला, "मैं समझता हूँ तुम्हारे बुरे दिन आ गये हैं जो तुम मित्र द्वारा कही हुई हितकारी बात अनसुनी कर रहे हो।"

अपनी बात मनवाकर रावण बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने मारीच को अपने साथ रथ में बिठा लिया और दोनों पंचवटी की ओर चले। आश्रम से कुछ पहले रथ को रोककर रावण ने मारीच को अपना मायाजाल रचाने के लिए कहा।

मारीच सुनहरे-चितकबरे मृग का रूप बनाकर श्रीराम के आश्रम के द्वार पर विचरने लगा। सीता जी की दृष्टि उसपर पड़ी। उस चित्र-विचित्र माया-मृग को देखकर वे ठगी-सी रह गईं। उसकी चमक-दमक देख वे मोहित हो गईं। ऐसा मृग उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। सीता जी फूल चुनना छोड़कर एकटक उस मृग को देखने लगीं और उन्होंने राम-लक्ष्मण को पुकारकर कहा कि हथियार लेकर आइये।

श्रीराम और लक्ष्मण ने भी उस माया-मृग को देखा। लक्ष्मण के मन में उसे देखते ही सन्देह हुआ कि इसमें कुछ धोखा है। वे श्रीराम से बोले, "भैया ! मुझे तो लगता है कि यह वही पुराना पापी मारीच फिर तीसरी बार रूप बदलकर आया है। यह मृग निश्चित ही छलरूप-धारी मारीच ही है।"

सीता जी ने लक्ष्मण को अपनी इच्छापूर्ति में विघ्न डालते देखकर उसे रोककर श्री राम से कहा, "आर्यपुत्र ! देखिए न, यह मृग कितना सुन्दर है ! इसे पकड़ लाइये। मैं इसके साथ खेला करूंगी। इसे जीता ही पकड़ लाइये। जब हम अयोध्या लौटेंगे तो मैं इसे साथ ले चलूंगी और अन्तःपुर में रखूंगी। भरत और माताएँ इस चित्र-विचित्र मृग को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होंगी। यदि जीवित पकड़ में न आवे तो मारकर ही ले आइये। इसकी खाल हमारे काम आएगी।"

श्रीराम इस आश्चर्यकारी मृग के रूप पर मुग्ध हो गये। सीता का भी आग्रह

था। उन्होंने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण ! यह मृग सचमुच अद्भुत है। यदि यह माया-मृग ही है, तो भी इसे मारना उचित है और यदि सचमुच का मृग है तो सीता की इच्छा पूरी हो जाएगी। यह छद्मरूपधारी मारीच राक्षस हो या वास्तविक मृग, आज जीवित नहीं बचेगा। तुम यहां ठहरो और सावधानी से सीता की रक्षा करो। मैं इसे मारकर इसका चमड़ा लेकर आता हूँ।"

श्रीराम तलवार और धनुष-बाण लेकर मृग को मारने के लिए निकल पड़े। लुका-छिपी करता वह कांचन मृग श्रीराम को आश्रम से कुछ दूर ले गया। वह माया-मृग कभी तो इतना समीप होता कि हाथ से पकड़ा जा सके और कभी चौकड़ियां भरता, कातर, भयभीत दूर निकल जाता। वह बार-बार पीछे मुड़कर देखता और भाग जाता। श्रीराम दौड़ते-दौड़ते थक चले थे। उस मृग के जीवित पकड़े जाने की आशा छोड़कर, उन्होंने एक तीखे बाण से उसे बींध डाला। मरते समय वह माया-मृग अपने छद्मरूप को छोड़कर वास्तविक मारीच रूप में प्रकट हो गया और उस मायावी ने अपने जीवन के अन्तिम क्षण में श्रीराम के स्वर में 'हा लक्ष्मण ! हा सीते !' की गुहार लगाई। अपने वास्तविक रूप में प्रकट मारीच को देखकर श्रीराम को लक्ष्मण की बात याद आई। और जब उसने 'हा लक्ष्मण ! हा सीते !' की गुहार लगाई तो श्रीराम सीता की सुरक्षा के लिए चिन्तित हो उठे। वे समझ गये कि मुझे छला गया है और अब लक्ष्मण और सीता को छला जा रहा है। श्रीराम भावी अनिष्ट की आशंका से तुरन्त कुटिया की ओर लौट पड़े।

उधर रावण की योजना के अनुसार मारीच ने मरते समय श्रीराम के स्वर में 'हा लक्ष्मण ! हा सीते !' की जो गुहार लगाई, वह लक्ष्मण और सीता ने सुनी। सीता जी ने समझा कि श्रीराम किसी संकट में पड़ गये हैं और हमें पुकार रहे हैं। वे नारी-सुलभ स्वभाव के कारण व्याकुल-चिन्तित हो उठीं। उन्होंने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण ! तुम शीघ्र जाओ और अपने भैया को संकट से उबारो। वे सहायता के लिए पुकार रहे हैं। तुम शीघ्र जाकर उनके प्राण बचाओ।"

पर लक्ष्मण नहीं गये। श्रीराम उन्हें सीता की सुरक्षा का भार सौंप गए थे। वे आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहते थे।

उनके इस व्यवहार से सीता जी क्षुब्ध हो उठीं। बोलीं, "लक्ष्मण ! तुम अपने भाई के कैसे सेवक और मित्र हो जो संकट की अवस्था में भी अविचल बैठे हो ! तुम तो मित्र के रूप में प्रच्छन्न शत्रु हो। तुम चाहते हो कि श्रीराम को कुछ हो जाये तो सीता तुम्हारी हो जाए। मेरे लिए तुम्हारे मन में खोट है। तभी तो तुम भाई की सहायता के लिए नहीं जा रहे हो। मेरी सुरक्षा का तो बहाना भर है। यदि श्रीराम की रक्षा नहीं हुई तो मेरी रक्षा से क्या होगा ! क्या मैं उनके बिना जीवित रह सकूँगी !"

शोकाकुल सीता के इन कटु वचनों को सुनकर लक्ष्मण बोले, "आप विश्वास करें,

भैया को परास्त करने की किसीमें शक्ति नहीं है। आप निश्चिन्त होइये और न कहने योग्य बातें मत कहिए। मैं आपको अकेली छोड़कर नहीं जाऊंगा। 'हा लक्ष्मण ! हा सीते !' की गुहार राक्षसी माया-मात्र है। सेना-सहित खर-दूषण और त्रिशिरा को अकेले मार भगाने वाले राम के लिए किसी से कोई भय नहीं हो सकता। आप शान्त होइए। श्रीराम अभी आते ही होंगे।"

अब तो सीता जी का क्रोध भड़क उठा। लाल-लाल आंखों से आंसू बहाते उन्होंने फिर लक्ष्मण को खरी-खोटी बातें कहना प्रारम्भ कर दिया। वे बोलीं, "मैं सब समझती हूँ। तू तो यही चाहता है कि राम किसी तरह मर जाएं और फिर तू अपना मनचाहा कर सके। तभी तो तू ऐसी बातें कर रहा है। तू राम का प्रच्छन्न शत्रु है। शत्रु के लिए इस तरह सोचना और करना आश्चर्य की बात नहीं है। तू बड़ा दुष्ट है। इसी मनोकामना से तू राम के साथ वन को आया है। हो सकता है, तुम्हारी और भरत दोनों की मिली-भगत हो। पर नीच ! समझ ले कि तेरी यह कामना कभी पूरी नहीं होगी। मैं प्राण दे दूंगी। मैं श्रीराम के बिना क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकती।"

सीता की ये बातें सुनकर लक्ष्मण के रोंगटे खड़े हो गये। वे बोले, "मेरे लिए आप माता के समान हैं। मैं आपकी बातों का क्या उत्तर दूं। आपकी बातें पिघले लोहे की तरह मेरे कानों में पड़ी हैं। आपको क्या हो गया है जो इस तरह की ऊट-पटांग बातें आप सोच रही हैं ! आपकी बुद्धि को क्या हो गया है। आपके बुरे दिन आये हैं। विधि बलवान है। मैं आपकी ये असत्य बातें नहीं सुन सकता। भगवान् आपका भला करे। मैं भैया के पास जा रहा हूँ।"

सीता फिर छाती पीटकर रोने लगी और बोलीं, "मैं राम के बिना कदापि जीवित नहीं रहूँगी। मैं गोदावरी में डूब मरूंगी या गले में फांसी लगा लूंगी, विष पीकर मर जाऊंगी या आग में जल मरूंगी। पर्वत-शिखर से कूदकर आत्मघात कर लूंगी।"

अन्त में लक्ष्मण ने सीता को प्रणाम किया और श्रीराम को खोजने चल पड़े।

लक्ष्मण के जाते ही रावण को उपयुक्त अवसर मिल गया। वह संन्यासी का वेश बनाकर सीता के पास पहुंचा। वह वेदमंत्रों का उच्चारण करते हुए शोकमग्न सीता से कहने लगा, "ऐ सुन्दरी ! तुम्हारा रूप-यौवन मनोमुग्धकारी है। त्रिलोक में भी तुम्हारे जैसे रूपवती दूसरी स्त्री नहीं होगी। फिर तुम राक्षसों और हिंस्र जन्तुओं से भरे दण्डकारण्य में कैसे रह रही हो, तुम्हें डर नहीं लगता। यह स्थान तुम्हारे रहने योग्य नहीं है।"

सीता ने महात्मा वेषधारी रावण का अतिथि-सत्कार करने के लिए उसे आसन दिया। फिर भोजन करने के लिए कहा। रावण के प्रश्न का उत्तर देते हुए सीता जी ने अपने पितृ-कुल और पतिकुल का परिचय दिया और वनवास का कारण बताया। फिर सीताजी ने रावण से उसका परिचय और वन में घूमने का कारण पूछा।

रावण ने कहा, "सीते ! जिसके नाम से देव, असुर और मानव थर्रा उठते हैं, मैं वही

राक्षसों का राजा रावण हूँ। लंका मेरी राजधानी है। मेरे अन्तःपुर में अनेक स्त्रियाँ हैं, पर उनमें तुम जैसी एक भी नहीं। तुम मेरी पटरानी बनो। सैकड़ों दासियाँ तुम्हारी सेवा करेंगी। तीनों लोकों के सुख तुम्हें प्राप्त होंगे।"

रावण के इन पापयुक्त वचनों को सुनकर सीता बोलीं, "गीदड़ ! तू सिंहनी से सेवा कराना चाहता है ! तू अपने गले में पत्थर बांधकर समुद्र को लांघना चाहता है ! तू धधकती आग को कपड़े में बांधकर ले जाना चाहता है। तुझमें और श्रीराम में कोई समता नहीं है। तू उनके पाँव की धूल के बराबर भी नहीं है।"

रावण ने अपने बल-पौरुष का परिचय देते हुए कहा, "मैं रावण हूँ रावण ! देवता मेरी चाकरी करते हैं। तुम्हारे ये सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वरुण और इन्द्र भी मुझसे डरते हैं। स्वर्ग की अमरावती से भी मेरी लंका अधिक सुन्दर और समृद्ध है। मेरे पास पुष्पक विमान है। उस राम से तेरा क्या भला होगा, जिसे पिता ने राज्यच्युत कर दिया है और जंगल-जंगल भटकता फिर रहा है। तुम मुझे अपने मन से स्वीकार करो। इसी में तुम्हारा कल्याण है। मुझे ठुकराकर तुम्हें पछताना पड़ेगा।"

सीता जी की आंखें ये पापपूर्ण बातें सुनकर अंगारों की तरह लाल हो गईं। वे क्रोधातिरेक से थरथर कांप रही थीं। उन्होंने रावण को खूब धिक्कारा। फिर तो रावण तपस्वी का वेष त्यागकर अपने स्वाभाविक राक्षसवेश में प्रकट हो पड़ा। उसने सीता को पकड़ लिया। उसने बायें हाथ से सीता के सिर को पकड़ा और दायें हाथ से जाँघों को उठाकर रथ पर रख दिया।

दुःख से व्याकुल सीता ने 'हे राम !!' कहकर श्रीराम को पुकारना प्रारम्भ किया। वे अपने को छुड़ाने का प्रयत्न करती हुई छटपटा रही थीं। रावण का रथ आकाश-मार्ग से उड़ा चला जा रहा था और सीता जी विक्षिप्त-सी विलाप कर रही थीं। वे पुकार-पुकारकर कह रही थीं कि कोई श्रीराम को बताए कि यह दुष्ट रावण मुझे बलपूर्वक हरकर ले जा रहा है कि इतने में वृक्ष पर बैठे जटायु पर उनकी दृष्टि पड़ी। वे जटायु को सम्बोधन करके बोलीं, "आर्य जटायु ! यह राक्षसराज रावण मुझे हरकर लिए जा रहा है। आप श्रीराम और लक्ष्मण को सारी बात बता दीजिएगा।"

सीता की पुकार सुनते ही जटायु ने देखा कि रावण आकाशगामी रथ पर बिठाकर सीता को लिए जा रहा है। पहले तो जटायु ने रावण को समझाने का प्रयत्न किया। फिर बोले, 'यद्यपि मैं बूढ़ा हो गया हूँ और तुम अभी युवक हो, मैं निहत्था हूँ और तुम्हारे पास शस्त्रास्त्र हैं, फिर भी तुम यों सीता को नहीं ले जा सकते ! यदि तुम शूरवीर हो तो ठहर जाओ और मेरे साथ युद्ध करो।"

जटायु के यों ललकारने पर रावण क्रुद्ध होकर उसपर झपटा। आकाश में युद्ध करते वे दोनों ऐसे लग रहे थे जैसे दो बादल आपस में टकरा रहे हों। रावण अपने शस्त्रास्त्रों से

और जटायु अपने तीखे पंजों और चोंच से प्रहार कर रहा था। दोनों क्षत-विक्षत हो रहे थे। रावण के बाणों से घिरा पक्षीराज जटायु ऐसा लग रहा था जैसे वह अपने तिनकों के नीड़ में बैठा हो। जटायु ने रावण के धनुष, सारथि और रथ को भी नष्ट कर दिया तो रावण सीता को कुक्षि में दबाए धरती पर आकर युद्ध करने लगा। उसने तलवार के प्रहारों से जटायु के दोनों पक्ष काट डाले। तब जटायु पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसको पृथ्वी पर रक्त से लथपथ पड़ा देखकर सीता जी अधिक व्याकुलता से विलाप करने लगीं। अब रावण फिर सीता जी की ओर लपका और उन्हें बालों से पकड़कर खींचता हुआ आकाश में उड़ चला। वे जोर-जोर से विलाप कर रही थीं जिससे श्रीराम-लक्ष्मण सुन लें और उनकी सुरक्षा करें। यों रोती-बिलखती सीता को बलपूर्वक ले जाते समय उनके एक पैर का नूपुर गिर पड़ा। कुछ और आभूषण भी टूटकर गिर पड़े। पानी से निकाली गई मीन की भाँति वे छटपटा रही थीं और रावण उन्हें लिए उड़ता चला जा रहा था।

सीता जी ने रावण को इस कुकृत्य के लिए बहुत धिक्कारा। उन्होंने कहा, "एक ओर तो तू अपने बल-पौरुष की डींग हांकता है और दूसरी ओर छलपूर्वक मेरे पति की अनुपस्थिति में मुझे हर लाया।" वे अपने-आपको छुड़ाने का बहुत प्रयत्न करती रहीं, पर सब व्यर्थ गया।

आकाशमार्ग से रावण द्वारा बलपूर्वक ले जाए जाते हुए, उन्होंने जब नीचे दृष्टि डाली, तो एक पर्वत-शिखर पर पांच वानरों को बैठे देखा। सीता जी ने अपनी ओढ़नी उतारकर उसमें अपने आभूषण बांधकर नीचे फेंक दिये। उन्होंने सोचा कि संभवतः इन वानरों द्वारा मेरे अपहरण का समाचार श्रीराम-लक्ष्मण तक पहुँच सके।

रावण अनेक वन-पर्वतों और नदियों के ऊपर से होता हुआ समुद्र को पारकर लंकापुरी में जा पहुंचा। सीता जी को लेकर वह अपने अन्तःपुर में गया। वहां उसने राक्षसियों को सीता जी के पहरे पर बिठा दिया और उन्हें कहा कि मेरी आज्ञा के बिना कोई सीता से मिलने न पाये। उसने सीता जी के लिए सारी सुविधाएं जुटाने और कोई कटु बात न कहने का भी आदेश दिया। फिर अन्तःपुर से निकलकर, उसने आठ प्रमुख राक्षसों को खर की वासभूमि में जाकर रहने की आज्ञा दी। सेना-सहित खर के मारे जाने से वह स्थान उजड़ा पड़ा था। उसने उन्हें वहां रहकर राम कब क्या कर रहे हैं, इसकी सूचना देते को कहा। वे आठों राक्षस रावण को प्रणाम कर लंका से विदा हुए।

रावण फिर सीता जी के पास अन्तःपुर में पहुंचा। उसने उन्हें वैभव से पूर्ण अपना राजमहल दिखाते हुए कहा, "सीते! मुझे स्वीकार कर तू इस सारी लंकापुरी की स्वामिनी बन जाएगी। तेरे बुरे दिन समाप्त हुए। अब तू उस भिखारी राम को भूल जा। अब वह कभी भी तुझे नहीं मिल सकता।"

पर सीता जी ने कहा, "दुष्ट! पापी!! तेरा अन्त समय निकट आया जान पड़ता है। तू,

तेरा अन्तःपुर, तेरी राक्षस-सेना और यह लंकापुरी सब का अन्त समीप है। तेरा यह पापकर्म ही तेरी मृत्यु का कारण बनेगा। तेरे सिर पर काल मंडरा रहा है।"

अपनी आशा पर पानी फिरता देखकर रावण ने कहा, "मैं तुझे अन्तिम चेतावनी देता हूं। एक वर्ष के भीतर तुमने अपने दुराग्रह को छोड़कर मुझे स्वीकार नहीं किया तो मेरे रसोइये तेरे टुकड़े-टुकड़े करके तेरा कलेवा बनाएंगे।" फिर रावण ने राक्षसियों को कहा, "इसे अशोक वाटिका में ले जाओ और इसका घमण्ड दूर कर दो। वहां इसे डराओ, धमकाओ, समझाओ, बुझाओ। जैसे भी हो इसे वश में लाने की चेष्टा करो।"

राक्षसियां रावण की आज्ञा पाकर सीता को अशोक वाटिका में ले गई। वह अशोक वाटिका बड़ी ही सुन्दर थी। तरह-तरह के फल-फूल, रंग-बिरंगे चहकते पक्षियों का कलरव, स्वच्छ नील जल से भरी बावड़ियां उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। पर सीता जी को वहां क्षणभर सुख नहीं मिला।

उधर इच्छानुसार रूप धारण करने वाले मृगरूपधारी मारीच को मारकर श्रीराम जल्दी-जल्दी पग बढ़ाते आश्रम को लौट रहे थे कि मार्ग में कई अपशकुन हुए। मृग के स्थान पर वे मारीच को पाकर पहले ही चिन्तित थे। मरते समय मारीच ने 'हा लक्ष्मण ! हा सीते !' की जो गुहार लगाई थी उससे राक्षसों के षड्यन्त्र का पूरा आभास मिलता था। इतने में सामने की ओर से आते लक्ष्मण उन्हें दिखाई दिये। थोड़ी देर में दोनों इकट्ठे हो गये। राम बोले, "लक्ष्मण ! तुमने बहुत बुरा किया जो सीता को अकेली छोड़कर चले आये। हम आश्रम में पहुँचकर सीता को सकुशल देख सकेंगे, मुझे इसकी आशा नहीं है। तुमने ठीक ही कहा था ! वह मृग बाण लगते ही राक्षस रूप में प्रकट हुआ। मेरा मन कह रहा है कि सीता या तो हर ली गई है या मार डाली गई है। उस राक्षस ने मरते समय 'हा लक्ष्मण ! हा सीते !' पुकारकर तुम्हारे और सीता के मन में भय उत्पन्न कर दिया होगा। तुमने सीता को अकेली छोड़कर भारी भूल की। खर के मर जाने के बाद राक्षस बदला लेने के लिये तुले बैठे थे। आज उन्हें अवसर मिल गया।"

दोनों भाई जब आश्रम में पहुँचे तो सीता जी वहां नहीं थीं। आसपास ढूंढा, वहां भी नहीं मिलीं। श्रीराम फिर लक्ष्मण को दोष देने लगे कि क्यों वह सीता को छोड़कर मुझे देखने चला आया। तब लक्ष्मण ने सारी बात विस्तार से बताते हुए अपने आने का कारण बताया। पर श्रीराम फिर भी लक्ष्मण को ही दोषी ठहराते रहे कि सीता की कटु बातों को सुनकर भी तुमने मेरी आज्ञा का पालन क्यों नहीं किया। वे दुःखी होकर सीता को इधर-उधर खोजने लगे। उनकी आंखों में आंसू बह रहे थे और रोते रहने से वे लाल हो गई थीं। वे वन

में विचरते हरिणों, वृक्षों और लताओं से सीता का पता पूछते। लक्ष्मण ने श्रीराम को धैर्य बंधाते हुए कहा, "आप विषाद न करें। मेरे साथ सीता जी को ढूंढने का प्रयत्न करें। हो सकता है, वे घूमती हुई कहीं दूर निकल गई हों। हो सकता है, गोदावरी तट पर चली गई हों। यह भी हो सकता है कि वे हँसी में हमें छकाने के लिये कहीं छिपी हुई हों। जहां-जहां उनके होने की सम्भावना हो सकती है, उन स्थानों में हमें खोजना चाहिए।"

लक्ष्मण के कहने पर वे दोनों कन्दराओं, सरोवरों और वनों में सीता को खोजते फिरे, पर वे कहीं नहीं मिलीं। श्रीराम बिलख-बिलखकर रोने लगे और सीताजी को पुकारने लगे। वे बोले, "मैं सीता के बिना अयोध्या कैसे लौटूगा। धर्मात्मा जनक को क्या मुँह दिखाऊंगा! लक्ष्मण! तुम अयोध्या को लौट जाओ। मैं सीता के बिना किसी तरह भी जीवित नहीं रह सकता।"

भाई को रोते, दुःखी और विलाप करते देखकर लक्ष्मण का मुख भी म्लान हो गया। राम विकल होकर विलाप करते रहे। वे सीता को खोजते दक्षिण की ओर चले तो मार्ग में उन्हें सीता द्वारा शृंगार में प्रयुक्त फूल गिरे दिखाई दिये। श्रीराम ने उन फूलों को पहचान लिया। कुछ दूर उन्हें राक्षस के पद-चिह्न भी दिखाई दिये। साथ ही उन्होंने वहां सीता के पद-चिह्न भी देखे। टूटे हुए धनुष, और रथ को और इधर-उधर बिखरे रक्त-बिन्दुओं को देखकर वे वहां ठिठक गये। पास ही मरे पड़े सारथि और रथ के गधों को उन्होंने देखा। वे अबला सीता के अपहरण-कर्ता को दण्डित न करने के लिये देवताओं को भी उपालम्भ देने लगे। उन्होंने कहा, "यदि मुझे अभी सीता नहीं मिलती है तो मैं अपने बाणों से समस्त लोकों को विक्षुब्ध कर दूंगा। जब तक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी, तो कोई भी शान्तिपूर्वक नहीं रह पायेगा!" उनके नेत्र क्रोध से लाल हो गये, होंठ फड़कने लगे। उन्होंने अपने वस्त्रों, मृग-चर्म और जटाओं को कसकर बांध लिया और लक्ष्मण से धनुष लेकर बाण का सन्धान करने के लिये तैयार हो गये।

लक्ष्मण ने उनके इस अदृष्टपूर्व रौद्र रूप को देखा तो वे भावी अनिष्ट की आशंका से स्तब्ध रह गये। उन्होंने श्रीराम से कहा, "आप सदा समस्त प्राणियों के हितसाधन में तत्पर रहे हैं। फिर आज अपने स्वभाव के विपरीत आचरण करने को क्यों उद्यत हैं? किसी एक के अपराध के लिए समस्त लोकों का संहार करना उचित नहीं है। मैं अभी पता लगाता हूँ कि यहां कौन-सी घटना घटी है और यह टूटा पड़ा रथ किसका है। जो अपराधी है, हमें उसका पता लगाना चाहिए। उसीको दण्ड देना चाहिए। विपत्ति किस पर नहीं आती! विपत्ति में धैर्य ही धर्मशीलों का गुण है। आप तो स्वयं समय-समय पर मुझे ये बातें समझाते रहे हैं। इस समय क्योंकि आप शोक-संतप्त हैं, इसलिये कर्तव्य-विमूढ़ हो गये हैं, मैं तो आपको केवल स्मरण करा रहा हूँ। हमें केवल अपराधी की खोज करके उसे दण्डित करना चाहिए, निर्दोष व्यक्तियों को नहीं।"

लक्ष्मण की बात श्रीराम ने स्वीकार कर ली। उन्होंने फिर सीता की खोज प्रारम्भ की। थोड़ी ही दूर चलने पर उन्हें विशालकाय पक्षिराज जटायु घायल पड़े दिखायी दिये। जटायु ने भी उन्हें देख लिया। वह बोला, "रघुनन्दन राम! तुम जिसे खोज रहे हो, उस साध्वी सीता को रावण हर ले गया है। उसी ने मेरे दोनों पंख काट डाले हैं। मेरा अन्त समय निकट है। मैंने भी उसे खूब छकाया। ये बिखरे पड़े रथ के टुकड़े, धनुष, ध्वजा, मरा हुआ सारथि और गधे इसके साक्षी हैं।"

सीता के सम्बन्ध में यह निश्चित सूचना पाकर श्रीराम ने जटायु को गले लगाया और शोक-विह्वल होकर धरती पर गिर पड़े। जटायु को मरणासन्न देखकर उनका दुःख दूना हो गया। अपने भाग्य को कोसते हुए, श्रीराम ने पिता-तुल्य श्री जटायु को अन्तिम क्षणों में सान्त्वना देने का प्रयत्न किया। जटायु की वाणी लड़खड़ा गयी थी। फिर भी प्रयत्न करके उसने सीता-हरण का वृत्तान्त श्रीराम को सुनाया। इसी समय उसका प्राणान्त हो गया।

श्रीराम ने लक्ष्मण की सहायता से चिता बनाकर जटायु का दाह-संस्कार किया। तदनन्तर उन्होंने अपने उपकारी और पिता के मित्र को पिण्ड दिया। फिर गोदावरी के तट पर जाकर गृध्रराज को जलांजलि अर्पण की।

वे फिर सीताजी को खोजने लगे। दक्षिण-पश्चिम दिशा की ओर बढ़ते हुए वे एक दुर्गम मार्ग पर जा पहुंचे। यहाँ एक बड़ी कन्दरा के पास उन्हें अयोमुखी नामक घोर-दर्शना राक्षसी मिली। उसने लक्ष्मण से विवाह का प्रस्ताव किया। लक्ष्मण ने तलवार से उसके नाक, कान और स्तन काट लिये और वह चीखती-चिल्लाती वहां से भाग गयी।

कुछ आगे बढ़ने पर उन्हें एक भयंकर राक्षस मिला। इसके सिर नहीं था। सिर के अंग छाती में थे। केवल धड़ मात्र होने से इसका नाम कबन्ध (धड़) पड़ गया था। वह श्रीराम का रास्ता रोककर खड़ा हो गया। उसने अपनी दोनों भुजाएं फैलाकर श्रीराम और लक्ष्मण को पकड़ लिया। कबन्ध द्वारा दबोचे श्रीराम-लक्ष्मण बड़ा कष्ट अनुभव कर रहे थे। पर उनसे कुछ भी करते नहीं बन पा रहा था। श्रीराम-लक्ष्मण की विपत्तियों का अन्त नहीं था। एक जाती नहीं थी कि दूसरी आ जाती थी। कबन्ध दोनों भाइयों को खा जाने के लिए उद्यत था कि उन्होंने अपनी तलवारों से उसकी भुजाएं काट डालीं। पीड़ा से व्याकुल कबन्ध धरती पर गिर पड़ा। उसने श्रीराम का परिचय पूछा और अपना परिचय देते हुए स्थूलशिरा ऋषि के शाप और इन्द्र के वज्र से शरीर के विकृत होने की बात सुनाई। फिर उसने उनसे अपना दाह-संस्कार करने की प्रार्थना की। दाह-संस्कार करने पर वह शापमुक्त हो गया और सीता जी की प्राप्ति के लिए पम्पा सरोवर के पास रह रहे सुग्रीव से मित्रता करने की सलाह दी। और वहां जाने का मार्ग बताया। पम्पा सरोवर की शोभा-श्री का वर्णन करते हुए उसने वहां रहने वाली शबरी का परिचय भी दिया।

श्रीराम-लक्ष्मण कबन्ध द्वारा बताए मार्ग पर चलते हुए पम्पा सरोवर के समीपवर्ती मतंग

वन में पहुँचे। वहीं शबरी का आश्रम था। श्रीराम-लक्ष्मण के चरणों में प्रणाम करके शबरी ने उनका आतिथ्य-सत्कार किया। शबरी यद्यपि नीच जाति की थी तथापि उसने आत्म-तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। श्रीराम के दर्शनों से कृतार्थ होकर अपना शरीर त्याग दिया और दिव्यलोक को सिधार गयी।

श्रीराम-लक्ष्मण वहां से पम्पा सरोवर की ओर चले।

स्वीकार है।"

मित्रता के लिए स्वीकृति मिल जाने पर हनुमान प्रसन्न हुआ। फिर लक्ष्मण ने श्रीराम का परिचय देते हुए अपने वनवास का कारण बताया और सीता-हरण की बात बताई। फिर कबन्ध द्वारा सुग्रीव की सहायता लेने की सलाह का वृत्तान्त भी सुनाया।

हनुमान ने कहा, "आप जैसे महानुभावों के दर्शनों से वानरपति सुग्रीव अपने-आपको धन्य मानेंगे। उनकी पत्नी का भी बालि ने अपहरण किया है। समान दुःख वाले व्यक्तियों में सहज ही मित्रता स्थापित हो जाती है। सीता जी की खोज में वे आपके सहायक बनेंगे।" यह कहकर हनुमान ने उनसे सुग्रीव के पास चलने की प्रार्थना की। हनुमान के साथ श्रीराम-लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव के वासस्थान में पहुंचे। हनुमान ने उनका आपस में परिचय कराया। वनवास और सीताहरण की कहानी सुनाते हुए सीता की खोज में सहायता करने और मैत्री करने की बात भी बताई। सुग्रीव ने मैत्री के प्रस्ताव के रूप में अपना हाथ आगे बढ़ा दिया। श्रीराम ने मैत्री के लिए बढ़े उस हाथ को अपने हाथ में लेकर प्रीतिपूर्वक दबाया और सुग्रीव को छाती से लगा लिया। दोनों अग्नि की प्रदक्षिणा करके, उसे साक्षी बनाकर, एक-दूसरे के मित्र बन गए। सुग्रीव ने कहा, "आज से हम दोनों का दुःख-सुख एक है।" फिर दोनों मित्रों में बड़ी देर तक दुःख-सुख की बातें होती रहीं। श्रीराम ने बालि-वध का वचन देते हुए सुग्रीव को आश्वस्त किया। सुग्रीव ने भी सीता की खोज में पूरा प्रयत्न करने को कहा। फिर सुग्रीव ने कहा, "एक दिन की बात है, कोई राक्षस रोती-बिलखती किसी स्त्री को लिए जा रहा था। संभवतः वह सीता जी ही रही होंगी। वह 'हा राम! हा लक्ष्मण!' की गुहार लगा रही थीं। हम चार-पाँच वानर पर्वत-शिखर पर बैठे हुए थे। हमें देखकर सीता जी ने चादर में बांधकर अपने कई आभूषण नीचे गिराए। मैं अभी उन्हें आपको दिखाता हूँ। आप उन्हें पहचान सकते हैं।" वे आभूषणों की पोटली को गुफा से ले आए और श्रीराम को दे दी। उन वस्त्राभूषणों को देखते ही श्रीराम शोक-विह्वल होकर रो पड़े। वे आभूषण उन्होंने लक्ष्मण को भी दिखाये। लक्ष्मण ने कहा, "भैया, इन भुजबन्धों और कुण्डलों को तो मैं पहचानता नहीं हूं! हां, इन नूपुरों को पहचानता हूँ, क्योंकि प्रतिदिन भाभी के चरणों में प्रणाम करते समय इनपर दृष्टि पड़ती थी।"

सीता के वस्त्राभूषणों को देखकर, सीता के वियोग से दुःखी श्रीराम अधीर हो उठे। सुग्रीव ने उन्हें सान्त्वना देकर धैर्य धारण करने की सम्मति दी।

श्रीराम ने सुग्रीव को सीता की खोज-खबर का कार्य प्रारम्भ करने के लिए कहते हुए कहा, "तुम्हारे लिए मुझे जो कुछ करना है, वह भी बताओ।"

सुग्रीव ने अपनी दुःख-भरी कहानी सुनाते हुए बड़े भाई बालि के साथ वैर उत्पन्न होने की कहानी कह सुनायी।

सुग्रीव की बातें सुनकर श्रीराम ने कहा, "मित्रवर! तुम्हारी भार्या का अपहरण करने

वाले अन्यायी बालि को भी यमलोक पहुँचाकर ही दम लूँगा। बालि के राज्य पर भी तुम्हारा अधिकार होगा।"

सुग्रीव बालि के बल-पराक्रम से आतंकित था। उसने श्रीराम को बालि के अद्भुत वीर होने की बात बताते हुए शंका प्रकट की कि क्या आप उसे युद्ध में जीत भी सकेंगे। इस बात पर लक्ष्मण को हँसी आ गई। उसने सुग्रीव से पूछा कि वह कार्य बताओ जिसके कर देने से तुम्हें निश्चय हो जाए कि श्रीराम बालि को जीत सकते हैं। तब सुग्रीव ने सात वृक्षों को दिखाते हुए कहा कि बालि इनमें से प्रत्येक को अपने बाण से बींध लेता था। यदि श्रीराम भी ऐसा कर दिखाएं तो मुझे उनके बालि से श्रेष्ठ वीर होने का निश्चय हो जाएगा। श्रीराम ने मित्रवर सुग्रीव को विश्वास दिलाने के लिए धनुष पर शर-सन्धान किया और एक सीध में खड़े उन सात साल-वृक्षों को बींध डाला। अब तो सुग्रीव प्रसन्नता से उछलने लगा। उसे निश्चय हो गया कि संग्राम में श्रीराम बालि का वध कर सकेंगे। अब बालि-वध की योजना बनने लगी। श्रीराम ने कहा, "हम सब लोग यहाँ से किष्किन्धा को चलते हैं। सुग्रीव हमसे आगे जाकर बालि को युद्ध के लिए ललकारे।" यह निश्चय करके सब लोग वानरराज बालि की राजधानी किष्किन्धा पहुँचे। वे वृक्षों की आड़ में छिप गए। सुग्रीव ने बालि को युद्ध के लिए ललकारा। ललकार सुनकर बालि लड़ने-मरने के लिए निकल आया। दोनों भाइयों में युद्ध ठन गया। दोनों भाइयों का रूप-आकार एक जैसा था। उनमें कौन सुग्रीव है और कौन बालि, यह पहचानना कठिन था। श्रीराम धनुष-बाण साधे वृक्ष की आड़ में खड़े थे और बालि पर बाण चलाना चाहते थे, पर दोनों में कौन-सा बालि है, यह निश्चय न कर सकने के कारण वे कुछ नहीं कर सके। बालि से मार खाकर सुग्रीव भाग खड़ा हुआ और श्रीराम को न देख सीधा ऋष्यमूक पर्वत पर पहुंचा। लक्ष्मण और हनुमान-सहित श्रीराम भी लौटकर ऋष्यमूक पर पहुंचे। सुग्रीव के दुःख का ठिकाना नहीं था। बालि ने उसे खूब पीटा था। उसकी एक-एक हड्डी-पसली दुख रही थी। जगह-जगह से रक्त बह रहा था। वह श्रीराम के भरोसे लड़ने चला था। राम ने उसके लिए कुछ नहीं किया, इसका उसे बड़ा भारी दुःख था। उसने श्रीराम से कहा, "बताइये, आपने मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया? मुझे पिटने के लिए भेज दिया और स्वयं छिप गए। मैं तो आपके ही बलबूते पर लड़ने गया था। यदि आप बालि को नहीं मार सकते थे, तो मुझे पहले बता देते।"

श्रीराम ने अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए कहा, "मैंने बाण क्यों नहीं चलाया, यह बताता हूँ। तुम दोनों सहोदर भाई हो। तुम्हारा रूप-आकार एक जैसा है। इसलिए मैं पहचान नहीं सका कि दोनों में कौन-सा सुग्रीव है, और कौन-सा बालि। ऐसी स्थिति में बाण किसपर चलाता! इसलिए मुझपर किसी प्रकार का सन्देह व अविश्वास मत करो। दोबारा जाकर बालि से युद्ध करो। अपनी पहचान के लिए कोई चिह्न धारण कर लो, जिससे मैं तुम्हें पहचान सकूं।" फिर श्रीराम लक्ष्मण से बोले, "यह जो सामने फूलों से भरी बेल है, इसे उखाड़

लाओ और हार की तरह सुग्रीव के गले में पहना दो।" लक्ष्मण ने तुरन्त आज्ञा का पालन किया।

दोबारा सभी किष्किन्धा जा पहुँचे। शेष सब लोग तो वृक्षों की आड़ में छिप गए किन्तु सुग्रीव ने वालि को ललकारा। ललकार सुनकर वालि युद्ध के लिए उठ खड़ा हुआ। वालि की पत्नी तारा ने वालि को रोककर युद्ध न करने की सलाह दी। उसने कहा, "पिट-पिटाकर गए सुग्रीव के दोबारा युद्ध के लिए आने के पीछे कुछ महत्त्वपूर्ण बात अवश्य है। मुझे अंगद ने बताया है कि उसे गुप्तचरों से सूचना मिली है कि दशरथ-नन्दन राम से सुग्रीव ने मैत्री कर ली है। अब उन्हींके बलबूते पर सुग्रीव उछल रहा है। श्रीराम वीरता में अप्रतिम हैं। इस-लिये उचित यही है कि सुग्रीव को युवराज पद देकर इस वैर का अन्त कर दिया जाए।"

वालि ने तारा की एक नहीं सुनी और उसे लौटा दिया। रणांगण में उसने युद्ध के लिए खड़े सुग्रीव को देखा। वह मुक्का तानकर सुग्रीव पर झपटा। एक मुक्के से ही उसने सुग्रीव को धूल चटा दी। सुग्रीव के मुंह और नाक से रक्त बहने लगा। कुछ संभलकर सुग्रीव ने एक वृक्ष को उखाड़कर वालि पर दे मारा जिससे वालि के पांव डगमगा गये और शरीर से रक्त बहने लगा। दोनों एक-दूसरे को मार गिराने के प्रयत्न में लगे हुए थे, किन्तु धीरे-धीरे सुग्रीव निढाल होता गया और वालि की विजय होती मालूम दी। सुग्रीव बार-बार वृक्षों की ओट में छिपे राम की ओर कातर दृष्टि से देखता। श्रीराम ने मित्र को विपन्न स्थिति में देखकर एक तीखा बाण धनुष पर रखकर खींचा और वालि की छाती बींध दी। बाण से बिंधते ही वालि धरती पर गिर पड़ा। उसकी छाती से रक्त की धारा बह चली और वह रक्त से नहा-सा गया। श्रीराम लक्ष्मण-सहित मरणासन्न वालि के पास गये। उन्हें देखकर वालि ने कहा, "श्रीराम! मैं आपके साथ तो लड़ नहीं रहा था। फिर भी आपने मुझपर बाण चलाया। इससे आपको किस यश की प्राप्ति होने वाली है। आप धर्मात्मा हैं, न्यायशील हैं, कोई अनुचित कार्य नहीं करेंगे, यही सोचकर मैं तारा के रोकने पर भी नहीं रुका। पर मुझे अब पता लगा कि आप धर्म की ध्वजा पाखण्ड के लिए उठाते फिर रहे हैं। आपका व्यवहार पापपूर्ण है। आपके वेष और व्यवहार में बड़ा विरोध है। मुझ निरपराध को आपने क्यों मारा? आप नर और मैं वानर। फल-फूल खाने वाले मुझसे आपने छल क्यों किया? आप मुझसे आमने-सामने युद्ध करते तो भी कोई बात होती। आपने जिस स्वार्थ के कारण सुग्रीव का हित-साधन किया है, यदि मुझे बताते तो मैं एक ही दिन में उस कार्य को सम्पन्न कर देता। दुरात्मा रावण को बिना मारे ही मैं बांधकर आपके सामने ला खड़ा करता। मुझे अपने मरने की चिंता नहीं है। परन्तु आपने शास्त्र और युद्ध की मर्यादा का उल्लंघन कर छलपूर्वक मेरा वध किया है, इसका दुःख है। यदि मेरे वध के लिए आपके सामने कोई उपयुक्त कारण था, तो मुझे बताइए।"

श्रीराम ने वालि को उत्तर दिया, "वालि, तुम धर्म के तत्त्व को बिना समझे-बूझे ही

मुझपर व्यर्थ दोषारोपण कर रहे हो। मैंने जो तेरा वध किया है, वह धर्म-सम्मत ही है। तुमने अपने छोटे भाई सुग्रीव की पत्नी को अपने अन्तःपुर में रख लिया है, तुम्हारे वध के लिए यह एक ही कारण पर्याप्त है।"

श्रीराम की बात सुनकर बालि का समाधान हो गया। बालि ने दोषारोपण के लिए क्षमा मांगी। बालि ने श्रीराम से अपने पुत्र अंगद की सुरक्षा करने को कहा। सुग्रीव राज्य पाकर तारा का अपमान न करे, इसका भी आप ध्यान रखें। श्रीराम ने अंगद और तारा की सुरक्षा का आश्वासन देते हुए बालि को शोक-मोह छोड़कर इस शरीर का परित्याग करने का उपदेश दिया।

बालि के मरने का समाचार सुनकर अंगद को साथ लेकर तारा युद्धस्थल में आ पहुंची और हृदय-विदारक विलाप करने लगी। सिर और छाती पीटती तारा और अंगद के करुण विलाप को सुनकर सुग्रीव का मन विषाद से भर गया। तारा का करुण-क्रन्दन रुकता ही नहीं था। हनुमान उनके पास जाकर समझाने लगे। पर तारा नहीं मानी। वह स्वामी के साथ सती हो जाना चाहती थी। श्रीराम उसे समझाने गये तो वह बोली कि मुझे भी एक बाण मार दो ताकि मैं स्वर्ग में अपने पति के पास जा सकूं। किसी तरह समझा-बुझाकर उसे शांत किया। सुग्रीव की ग्लानि का भी अन्त नहीं था। वह भाई की हत्या के लिए अपने को दोषी समझता था और भाई के साथ ही चिता में जल मरना चाहता था। श्रीराम-लक्ष्मण ने तारा, अंगद और सुग्रीव को समझाकर बालि का दाह-संस्कार करने के लिए प्रेरित किया। बालि के शव को तुंगभद्रा नदी के तट पर ले जाकर विधिपूर्वक दाह-संस्कार किया गया। फिर सभी वानरों ने तुंगभद्रा के जल से उसे जलांजलि अर्पण की और शोक-संतप्त मन से लौट आए। फिर श्रीराम की अनुमति से वानरों ने सुग्रीव का राजपद पर और अंगद का युवराज पद पर अभिषेक किया।

वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने वाली थी। अतः चार मास तक सीता की खोज का कार्य स्थगित रखने का निश्चय हुआ। श्रीराम वन में और सुग्रीव किष्किन्धा में रहने लगे। सुग्रीव राज्य और अपनी पत्नी रुमा को पाकर परम प्रसन्न हुए।

श्रीराम लक्ष्मण के साथ प्रस्रवण गिरि पर रहने लगे। वहां उन्होंने एक बड़ी गुफा का आश्रय लिया जिससे वर्षा से त्राण पा सकें।

वर्षा काल समाप्त हुआ। किन्तु राम-काज—सीता की खोज के सम्बन्ध में सुग्रीव ने कोई तत्परता नहीं दिखायी। राज्य-सत्ता पाकर उसका प्रमाद और आलस्य बढ़ता गया। सारा कार्य मंत्रियों पर छोड़कर वह सदा अन्तःपुर में ही, स्त्रियों से घिरा, भोग-विलास में मग्न रहने लगा। सुग्रीव के सचिव हनुमान को यह बात अखरी और उसने सुग्रीव को अवसरानुकूल उचित परामर्श देने का निश्चय किया। उसने सुग्रीव से कहा, "वानरराज ! श्रीराम आपको सीता की खोज के लिए कहें, उससे पूर्व ही आपको उस कार्य को प्रारम्भ कर देना चाहिए।

उन्होंने आपका मनोरथ सिद्ध कर दिया है, और अब आपको उनके प्रति कृतज्ञ भाव रखते हुए, उनका प्रत्युपकार करना चाहिए।"

हनुमान का युक्तियुक्त कथन सुग्रीव को जंच गया और उन्होंने वानरप्रमुख नील को समस्त वानर-यूथों को एकत्र करने की आज्ञा दी। इस कार्य के लिए पन्द्रह दिन का समय निश्चित किया गया।

उधर प्रस्रवण गिरि पर रह रहे राम सीता-वियोग-जनित दुःख से व्याकुल थे। सुग्रीव की कृतघ्नता उन्हें संतप्त कर रही थी। उनका रोष जाग उठा और उन्होंने लक्ष्मण को किष्किन्धा जाकर सुग्रीव को चेतावनी देने के लिए कहा, "लक्ष्मण! सुग्रीव से कह दो कि बालि तो अकेला ही मेरे बाण का लक्ष्य बना था और तुम्हें मैं समस्त बन्धु-बांधवों सहित वहाँ भेज दूंगा जहाँ बालि गया है। उससे यह भी कहना कि सीता की खोज के लिए तुमने जो समय निश्चित किया था, वह बीतता जा रहा है, और तुम्हें इसकी रत्ती-भर चिन्ता नहीं है। तुम मित्रद्रोह कर रहे हो। इसका कुफल तुम्हें भोगना पड़ेगा।"

भाई की आज्ञा पाकर धनुषधारी लक्ष्मण तुरन्त किष्किन्धा पहुँचे और सुग्रीव को अपने आगमन की सूचना भिजवायी, किन्तु काम-भोगासक्त सुग्रीव ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इससे लक्ष्मण का क्रोध भड़क उठा। वे नगर-द्वार पर विषधर की भांति फुंकारते खड़े थे कि बालिकुमार अंगद भयभीत उनके सामने हाथ जोड़कर उपस्थित हुआ। लक्ष्मण ने अंगद से कहा, "वत्स! तुम सुग्रीव से जाकर कहो कि श्रीराम का सन्देश लेकर आए लक्ष्मण नगर-द्वार के बाहर खड़े हैं। यदि उनकी इच्छा हो तो वे मुझसे तुरन्त आकर मिलें। बस, तुम इतना कहकर मेरे पास लौट आओ।"

अंगद भागा-भागा अन्तःपुर में गया और लक्ष्मण का सन्देश सुग्रीव को कह सुनाया। सुग्रीव सुनकर भी तन्द्रा और आलस्य में पड़े रहे और कोई उत्तर नहीं दिया। वानर लक्ष्मण के क्रोध से भयभीत थे। वे सुग्रीव को जागता न देखकर चीखने-चिल्लाने लगे जिसे सुनकर सुग्रीव की नींद खुल गयी। प्लक्ष और प्रभाव नामक दो मंत्रियों ने वानरों के हो-हल्ला करने का कारण सुग्रीव को बताया, और प्रतीक्षा में खड़े लक्ष्मण का सन्देश कह सुनाया। कर्तव्य-विमुख सुग्रीव यह नहीं समझ पाया कि लक्ष्मण क्यों क्रुद्ध हैं। तब वीर हनुमान ने योग्य सचिव के कर्तव्य का पालन करते हुए, सुग्रीव को बताया कि आप सीता जी की खोज के कर्तव्य से विमुख हो गए हैं, इसीलिए श्रीराम-लक्ष्मण आप पर क्रुद्ध हैं। उन्हें अनुनय-विनय करके मनाइए और अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सीता जी के खोज-कार्य में तत्परतापूर्वक जुट जाइए।

लक्ष्मण को बुलाने के लिए अंगद गया और उन्हें अन्तःपुर में ले आया। लक्ष्मण ने अपने धनुष पर टंकार दी। टंकार सुनकर सुग्रीव कांप उठा और लक्ष्मण के पास जाने का

साहस नहीं कर सका। उसने तारा को भेजा कि वह अपने मधुर भाषण से लक्ष्मण के क्रोध को शान्त कर दे और तब मैं उनसे मिलूं। तारा लक्ष्मण के पास गई और अपने युक्ति-युक्त तथा मधुर वचनों से उनका क्रोध शान्त करने में सफल हुई। वह अपने साथ उन्हें सुग्रीव के पास ले गई। सुग्रीव तुरन्त आसन से उठा और हाथ जोड़कर लक्ष्मण के सामने जा खड़ा हुआ। लक्ष्मण ने उसे फटकारते हुए कहा, "वानर! तुम कृतघ्न और असत्यवादी हो। तुमने श्रीरामचन्द्र की सहायता से अपना स्वार्थ तो सिद्ध कर लिया किन्तु अब उनकी सहायता करने का अवसर आया तो सुरा-सुन्दरी में आसक्त होकर कुछ नहीं कर रहे हो।"

लक्ष्मण को रुष्ट देखकर सुग्रीव की घिग्घी बंध गयी। पर मधुर-भाषिणी तारा ने लक्ष्मण को बताया कि सभी वानर-यूथों को किष्किन्धा में एकत्र करने के लिए दूत भेजे जा चुके हैं और वे आने ही वाले हैं। वानरराज की छोटी-सी त्रुटि के कारण आपको इस तरह क्रोध नहीं करना चाहिए। भूल किससे नहीं होती। सुरा-सुन्दरी में आसक्त ऋषि-मुनि भी समय के ज्ञान को भुला बैठते हैं, फिर मेरे पति सुग्रीव तो वानर हैं।

लक्ष्मण का क्रोध शान्त हो चला तो सुग्रीव को भी बात करने की हिम्मत पड़ी। उसने राम के उपकार और अपनी भूल को स्वीकार किया। लक्ष्मण का रहा-सहा क्रोध भी शान्त हो गया। सुग्रीव ने हनुमान को आज्ञा दी कि महेन्द्र, हिमवान्, विन्ध्य, कैलास, मन्दराचल, उदयाचल और अस्ताचल, तथा अन्य वन-पर्वतों में जो भी वानर रहते हैं, उन्हें दस दिन के भीतर यहां बुलाने के लिए दूत भेजो। पहले जो दूत गए हैं, उन्हें भी जल्दी करने को कहो।

सर्वत्र दूत भेजे गए। चारों दिशाओं से झुण्ड के झुण्ड वानर किष्किन्धा में पहुँचने लगे। अनगिनत वानरसेना से किष्किन्धा का वनांचल भर गया। जहां तक दृष्टि जाती वानर ही वानर दिखाई देते। इधर वानर, उधर वानर, सब जगह वानर ही वानर।

लक्ष्मण ने सुग्रीव से कूच करने को कहा तब सुग्रीव और लक्ष्मण पालकी पर बैठकर पहले श्रीराम के पास गए। श्रीराम प्रीतिपूर्वक सुग्रीव से मिले और असंख्य वानर-सेना को देखकर प्रसन्न हुए। लाल, पीले, अरुण, धूसर और श्याम वर्ण के वानरों, लंगूरों, रीछों और भालुओं को सीता की खोज के लिये तत्पर देखकर श्रीराम शीघ्र सीता की सुधि मिलने की आशा से प्रसन्न दिखाई दिये।

सुग्रीव के श्वसुर, तारा और रुमा के पिता, हनुमान के पिता केसरी, वानर-यूथपति शतबालि, लंगूरों के सेनापति गवाक्ष, रीछों के सेनापति धूम्र नील, रीछों के राजा जाम्बवान, बालिकुमार अंगद और हनुमान तथा सैकड़ों सेनापति अपनी-अपनी सेना-सहित वहाँ आ उपस्थित हुए। सुग्रीव ने सभी यूथपतियों का श्रीराम से परिचय कराया।

सुग्रीव ने श्रीराम से कहा, "रघुनन्दन! यह समस्त सेना आपकी आज्ञाकारिणी है। अब इसे यथोचित कार्य करने की आज्ञा दीजिये।"

श्रीराम बोले, "मित्र, सबसे पहले यह पता लगाएं कि सीता जीवित हैं या नहीं।

रावण किस देश में निवास करता है। अब इतना पता चल जायेगा तब आगे का कार्यक्रम हम निश्चय करेंगे।"

सुग्रीव ने सुपरीक्षित,अतुल बलशाली और निष्ठावान् एक-एक लाख वानरों के चार सैन्य-समूह बनाये और उन्हें चारों दिशाओं में सीता की खोज के लिये नियुक्त किया। उन्हें एक मास के भीतर अपना कार्य पूरा करने का आदेश देते हुए कहा, "जो कोई सीता का समाचार लायेगा, उसे पुरस्कृत किया जायेगा। प्रत्येक सैन्य-समूह को उसकी खोज की दिशा के प्रमुख पर्वतों, वनों और स्थानों का परिचय देते हुए कहां से प्रारम्भ करके कहां तक खोज करनी है, यह विस्तारपूर्वक बता दिया।

दक्षिण दिशा की ओर जाने वाले सैन्यसमूह के प्रमुख सेनानायक नील, हनुमान जाम्बवान्, अंगद आदि को नियुक्त किया गया। रावण की राजधानी लंका की भौगोलिक स्थिति उन्हें समझा दी गयी। सुग्रीव ने वीर हनुमान को अपना विशिष्ट सहायक जानकर कहा, "कपिश्रेष्ठ ! इस कार्य को सिद्ध करने के लिए तुम्हीं सर्वाधिक उपयुक्त हो। तुम्हारा ज्ञान और निष्ठा सबसे अधिक है। बल-विक्रम में भी तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं है।"

श्रीराम ने सुग्रीव द्वारा कपिवर हनुमान के गुणों का बखान सुना। वे स्वयं भी प्रथम परिचय से ही हनुमान के गुणों पर मोहित थे। उन्हें हनुमान द्वारा सीता की खोज-खबर मिलने की पूरी संभावना थी। उन्होंने राम नामांकित अपनी अंगूठी को हनुमान के पास देते हुए कहा, "वानरवर ! यह अंगूठी तुम संभालकर अपने पास रख लो। यदि तुम्हें सीता मिल गयी तो इस अंगूठी को दिखाकर तुम उन्हें विश्वास दिला सकते हो कि तुम्हें राम ने भेजा है।" श्रीराम-लक्ष्मण और सुग्रीव को प्रणाम करके हनुमान स्वामी का कार्य साधने के लिये वहां से प्रसन्नतापूर्वक विदा हुए।

चारों दिशाओं को जाते वे चार सैन्य-समूह पृथ्वी पर टिड्डीदल की तरह छा गए। श्रीराम लक्ष्मण-सहित प्रस्रवण गिरि पर ही ठहरे रहे और एक मास की अवधि की प्रतीक्षा करने लगे।

एक मास की अवधि पूरी होने पर पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में सीता की खोज करने वाले वानरसेना के समूह निराश होकर किष्किन्धा लौट आए। किन्तु दक्षिण दिशा में खोज करने गये हुए वानर नहीं लौटे। उनका एक मास विन्ध्य तक पहुँचने और खोजने में ही समाप्त हो गया। वे वहां एक गुफा में भटक गए जो बड़ी लम्बी और अंधेरी थी। एक-दूसरे का हाथ पकड़, भूखे-प्यासे वे गुफा के दूसरे द्वार पर पहुँचे तो वहां एक दिव्य नगर दिखाई दिया। उस नगर की संरक्षिका तापसी के प्रभाव से वे बाहर निकले। एक मास का समय बीत चुकने के कारण सभी को लगा कि अब उनका जीवन समाप्त होने वाला है, क्योंकि सुग्रीव आज्ञा का उल्लंघन करने के लिए उन्हें प्राणदण्ड देंगे। अंगद के नेतृत्व में अधिकांश वानरों ने निश्चय किया कि दोबारा उसी गुफा में जाकर छिप रहें, जिससे राजा सुग्रीव उन्हें

खोज न सकें। पर कपिवर हनुमान ने किसी तरह समझा-बुझाकर उन्हें इस कार्य से विरत किया। पर अंगद ने कहा, "सुग्रीव मुझे या तो बन्धन में डाल देंगे या मार देंगे, इसलिए मैं किष्किन्धा लौटकर नहीं जाऊंगा। यहीं भूखा-प्यासा रहकर प्राण दे दूंगा।" दूसरे वानरों ने भी उसके साथ उपवास करने का निश्चय किया और सब पूर्वाभिमुख होकर उपवास करके बैठ गये। इतने में गृध्रराज सम्पाति ने, जो पंख जल जाने के कारण उड़ नहीं पाते थे और भूखे थे, वानरों को सुनाकर कहा, "तुम में से जो-जो मरता जाएगा, उसे मैं खाता जाऊंगा। इस तरह मेरी भूख मिटेगी।" अब तो सभी वानर बहुत भयभीत हुए। वे आपस में कहने लगे कि जटायु ही अच्छा रहा जो राम का कार्य करते हुए मरा। हम तो व्यर्थ की मौत मरने जा रहे हैं। जटायु सम्पाति का छोटा भाई था। उसे जटायु के मरने का पता भी नहीं था। जटायु का नाम सुनते ही उसने वानरों से जटायु का समाचार सुनाने को कहा। तब अंगद ने उसे श्रीराम के वनवास और सीताहरण की कहानी कह सुनाई। जटायु-वध, राम-सुग्रीव मैत्री और सीता की खोज के लिए अपनी यात्रा की बात भी बताई। उन्होंने सम्पाति से पूछा कि यदि आप सीता जी के सम्बन्ध में कुछ जानते हों तो हमें बताएं। तब सम्पाति ने उन्हें रावण और उसकी लंका पुरी का अता-पता बताया और समुद्र लांघकर लंका जाने की प्रेरणा दी। अपने भाई जटायु के हत्यारे रावण का अता-पता बताकर सम्पाति को कुछ सन्तोष हुआ। वानर अपने कार्य में सहायक सिद्ध होने वाली सूचना पाकर उछलने-कूदने लगे और आगे बढ़े तो समुद्र-तट पर जा पहुँचे। पर तरंगाकुल समुद्र को देखकर उनका सारा उत्साह जाता रहा। समुद्र लाँघने का कोई उपाय न देखकर वे सबके सब मुँह लटकाए, चिन्तामग्न हो बैठ गए। अंगद ने उत्साह-हीन वानरों में उत्साह का संचार करते हुए कहा, "बताओ, तुम में से कौन ऐसा है जो समुद्र को लाँघकर लंका से सीता की सुधि ला सकता है? वही हम सब को मृत्यु से बचा सकता है।" सभी वानरप्रमुख छलांग लगाने की अपनी शक्ति बताने लगे, पर सौ योजन की दूरी अंगद के सिवा दूसरा कोई नहीं फलांग सकता था। अंगद भी जा तो सकता था, पर वापस लौटने में असमर्थ था, इसलिए उसका जाना न जाना बराबर था। अंगद युवराज भी था और सेना का नेता भी, इसलिये उसे न भेजने का ही निश्चय हुआ। अब समुद्र-पार जाए तो कौन?

वानरसेना को इस तरह विषाद में पड़ा देख वयोवृद्ध जाम्बवान ने कपिश्रेष्ठ हनुमान से कहा, "अरे हनुमान! तुम चुपचाप क्यों बैठे हो? कुछ बोलते नहीं? तुम ज्ञान और बल में सबसे श्रेष्ठ हो। कपिराज सुग्रीव से तुम्हारा बल-विक्रम कुछ कम नहीं है। श्रीराम और लक्ष्मण जैसा बल-पौरुष तुममें है। तुममें गरुड़ की गति है। तुम तो शैशवकाल में भी घोर पराक्रमी रहे हो। तुम तो बचपन में सूर्य को कोई फल समझकर उसके पास तक जा पहुंचे थे। इन्द्र ने अपने वज्र से तुमपर प्रहार करके तुम्हारी ठोड़ी को दबा डाला था, इसलिए तुम्हारा नाम हनुमान पड़ा था। तुम्हें चोट लग जाने से तुम्हारे पिता पवन इन्द्र पर क्रुद्ध हो गये और

उन्होंने प्रवाहित होना बन्द कर दिया। सब लोकों में त्राहि-त्राहि मच गयी। सभी तुम्हारे पिता को मनाने लगे। तब वे प्रसन्न होकर प्रवाहित हुए और प्राणियों की जीवन-रक्षा हुई। ब्रह्मा ने उनपर प्रसन्न होकर तुम्हें वर दिया था कि कोई तुम्हें मार नहीं सकेगा। इन्द्र ने तुम्हें इच्छामृत्यु का वरदान दिया है। तुम वायुपुत्र हो। वायु जैसा ही वेग और गति तुम्हारे अन्दर है। उठो, इस महासागर को लांघकर श्रीराम का प्रिय कार्य और हमारी प्राण-रक्षा दोनों काम एकसाथ करो।"

बस, फिर क्या था। अपने बल-पौरुष का स्मरण दिलाने पर हनुमान ने अपना विराट रूप प्रकट किया। वानर हर्ष में भरे उनकी स्तुति करने लगे। त्रिविक्रम भगवान् वामन की तरह हनुमान का शरीर बढ़ता गया।

वृद्ध जाम्बवान् ने कहा, "जब तक तुम लौट नहीं आओगे, हम यहीं तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे।"

छलांग लगाने के लिए महाबली हनुमान महेन्द्र पर्वत के शिखर पर जा चढ़े और छलांग लगा दी।

सुन्दरकाण्ड

सागर के ऊपर उड़ते हुए पवनपुत्र हनुमान अपनी पूंछ, रंग और वेग के कारण ऐसे दिखायी देते थे जैसे पुच्छल उल्का आकाश में जाती दिखाई देती है। हनुमान को राम-काज के लिए अपने ऊपर से लांघते देखकर समुद्र ने सोचा कि इक्ष्वाकु कुल का सम्मान करने के लिये मुझे हनुमान का कुछ उपकार करना चाहिये, क्योंकि मेरी रचना इक्ष्वाकु कुल के पराक्रमी नरेश सगर के पुत्र ने की है और श्रीराम उसी कुल के हैं। उसने सागर-स्थित मैनाक पर्वत को ऊंचा उठने की आज्ञा दी जिससे हनुमान उसपर विश्राम कर सकें। समुद्र की आज्ञा पाकर मैनाक पर्वत समुद्र से बाहर बहुत ऊँचा निकल आया। सामने ऊँचे खड़े मैनाक पर्वत को देखकर हनुमान ने समझा कि यह मेरे मार्ग में रुकावट है। हनुमान ने उस पर्वत के ऊँचे शिखर को अपनी छाती के धक्के से गिरा दिया। तब मैनाक ने उनसे विनयपूर्वक कुछ देर विश्राम करने को कहा। उसने बताया कि मैं समुद्र की आज्ञा से आपके विश्राम के निमित्त ही यहां खड़ा हूँ। पर हनुमान बोले, "आपने अपने वचनों द्वारा जो मेरा सत्कार किया, उसीसे मेरा आतिथ्य हो गया। मैंने ऐसा निश्चय किया है कि मार्ग में बिना रुके ही लंका पहुँचूंगा।" इतना कहकर पवन-पुत्र ने अपने हाथ से मैनाक का स्पर्श किया और आगे बढ़ गये।

देवताओं ने हनुमान की परीक्षा लेने के लिये नागमाता सुरसा को कहा कि तुम दो घड़ी के लिये इनके मार्ग में विघ्न डालो। सुरसा ने देवताओं की बात मानकर विकराल राक्षसी का रूप बनाया और मुँह फैलाकर अधर में खड़ी हो गयी। हनुमान अपने शरीर को एकदम छोटा बनाकर सुरसा के मुँह में प्रविष्ट हुए और निकल भी आये। वे कुछ आगे बढ़े थे कि सिंहिका नामक राक्षसी मिली। वह हनुमान को अपना आहार बनाना चाहती थी। वह छाया को पकड़कर ही वस्तु को पकड़ लेती थी। हनुमान भी उसकी पकड़ में आ गये। उन्होंने सब ओर दृष्टि घुमाकर देखा तो जल में उसका विशाल शरीर दिखाई दिया। वह राक्षसी मुँह फैलाए उन्हें निगलना ही चाहती थी कि हनुमान ने अपना आकार संकुचित करके और उसके मुख में प्रवेश करके, अपने तीखे नखों से राक्षसी के मर्म स्थानों को फाड़ डाला और बाहर निकल आये। हनुमान फिर आगे बढ़े।

समुद्र पार पहुँचकर वानरवीर हनुमान आकार संकुचित करके अपने वास्तविक रूप में आ गये। वे लम्ब पर्वत पर उतरे थे। वहां से लंकापुरी स्पष्ट दिखाई देती थी। अट्टालियों उद्यानों, पुष्करणियों और विविध पक्षियों से सुशोभित लंकापुरी उन्हें बड़ी सुहानी लगी। ऊँची दीवार से घिरी हुई लंकापुरी के द्वारों पर सशस्त्र राक्षस पहरा दे रहे थे। दीवार के बाहर पानी से भरी गहरी खाई थी। ऊँचाई पर अवस्थित लंकापुरी, विश्वकर्मा के कला-कौशल का मूर्तिमन्त स्वरूप थी। लंकापुरी के उत्तरी द्वार पर पहुँचकर हनुमान गहरी चिन्ता में डूब गये। दो घड़ी सोच-विचारकर उन्होंने निश्चय किया कि रात्रि में ही भीतर प्रवेश करना उचित होगा। हनुमान चाहते थे कि राक्षसों को पता दिये बिना सीता जी से भेंट हो जाए। वे सूर्यास्त की प्रतीक्षा करने लगे।

सूर्यास्त होने पर हनुमान ने अपना आकार छोटा बना लिया। वे उछलकर दीवार फांदते हुए लंकापुरी में प्रविष्ट हुए। लंकापुरी के भवनों और राजमार्गों को देखकर हनुमान चकित रह गये। अब इतनी विशाल इस नगरी में सीता को कहाँ खोजा जाए, इसकी चिन्ता उन्हें हुई। जगह-जगह पहरा दे रहे राक्षसों की दृष्टि से अपने को छिपाए रखना भी कठिन कार्य था। सबसे पहले हनुमान का सामना इस पुरी की अधिष्ठात् देवी लंका से हुआ। उसने हनुमान के लाल गाल पर जोर का थप्पड़ मारकर उसे और भी लाल कर दिया। फिर तो हनुमान ने भी उसपर एक जोर का मुक्का जमाया। वह चित्त गिर पड़ी और लगी गिड़गिड़ाने कि मैं स्त्री हूँ, मुझे जान से मत मारो। हनुमान उसे छोड़कर आगे बढ़े। वे एक छत से दूसरी पर कूदते हुए लंकापति के राजमहल के पास जा पहुँचे। यहाँ गुप्तचरों और पहरेदारों की भर-मार थी। यह राजभवन शोभा में अनुपम था। वानरवीर ने इसमें सब जगह घूम-घूमकर देखा, पर सीता उन्हें कहीं दिखाई न दीं। तब हनुमान की चिन्ता और बढ़ गयी। वे रावण के शयनागार तथा मधुशाला में भी गये, जहां अनेक स्त्रियां सोई पड़ी थीं, पर जनकनन्दिनी सीता उन्हें कहीं दिखाई न दीं। उन्होंने सोचा, रावण ने सीता जी को मार डाला होगा या राम-विरह में उन्होंने स्वयं प्राण त्याग दिये होंगे या इन घोर राक्षसियों से भयभीत होकर मर गयी होंगी। अब मैं लौटकर अपने साथियों को क्या उत्तर दूंगा? थोड़ी देर निराशा की घटा हनुमान के उत्साह पर छायी रही, पर शीघ्र ही उन्होंने अन्य स्थानों में मैथिली को खोजने का निश्चय किया। रात बीत चली थी। दिन में खोज करने में प्राणों का संकट था और बिना पता लगाये हनुमान वापस नहीं जाना चाहते थे।

रावण के अन्तःपुर से लगी हुई अशोक वाटिका थी। पुष्पित लताओं और वृक्षों से सुशोभित उस वाटिका में हनुमान जी ने सीता को खोजना प्रारम्भ किया। वे एक वृक्ष से दूसरे पर छलाँग लगाते जाते थे जिससे अपने नीड़ों में सोये विविध पक्षी जाग पड़ते और भयभीत होकर शोर मचाने लगते। बेलों और वृक्षों से फल-फूल गिरने लगते और नीरव रात्रि की स्तब्धता मुखर हो जाती। अशोक वाटिका की यह विशेषता थी कि उसमें जो

कोई भी आता उसका शोक दूर हो जाता। चन्दन, चम्पा और मौलसिरी तथा झरनों, जलाशयों से सुशोभित अशोक वाटिका की शोभाश्री मन को मुग्ध कर देती थी। लता-वितानों को बलपूर्वक भेदते, वृक्षों को भिझोड़ते, हनुमान एक अशोक कुंज में पहुँचे। इस कुंज के पास ही एक ऊंचा मन्दिर था। वे मन्दिर पर चढ़कर इधर-उधर दृष्टि दौड़ाकर जानकी को खोज रहे थे कि उनकी दृष्टि मलिन वेष-भूषा वाली एक स्त्री पर पड़ी, जो राक्षसियों से घिरी हुई थी। उपवास से क्षीण, विरहाग्नि से संतप्त, वह नारी सिसक रही थी। राख से ढकी अग्नि की तरह, चन्द्रमा की क्षीण कला की तरह, पीले रेशमी वस्त्र से ढकी वह स्त्री हनुमान जी द्वारा लंका में देखी समस्त नारियों से भिन्न दिखाई देती थी। हनुमान जी ने अनुमान लगाया कि संभवतः यही सीता जी हैं। ऐसी ही पीली साड़ी में राक्षसराज द्वारा ले जायी जा रही नारी को उन्होंने ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे देखा था। हनुमान जी को लगा कि जिन्हें वे खोज रहे थे वह मिल गयीं। इसलिए आशा से उनका मन प्रसन्न हो चला।

प्रभात-वेला समीप थी। ब्रह्मराक्षस वेदमन्त्रों का पाठ करने लगे थे और रावण को मधुर वाद्य बजाकर जगाया जा रहा था। जागकर और वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर सुन्दरी राक्षसियों से घिरा वह सीधा अशोक वाटिका में सीता जी के पास आया। हनुमान छिपकर बैठे उसे देखते रहे। दुष्ट, काम-मोहित रावण को आता देखकर शोकाकुल सीता भय के मारे कदलीदल की तरह कांपने लगीं और अपने अंगों का संकोच करके नीचा मुँह किये रोती-सिसकती बैठी रहीं। रावण ने साध्वी सीता को तरह-तरह के प्रलोभन दिये और राम को भूलकर अपने को अपनाने की बात कही। सीता ने रावण की ओर पीठ करके उत्तर दिया, "तुम मुझे ऐश्वर्य और धन के प्रलोभन से फुसला नहीं सकते। तुम्हें पापाचरण को छोड़कर धर्माचरण में प्रवृत्त होना चाहिये, नहीं तो तुम्हारे अकेले के पाप के कारण यह धन-धान्य से भरी-पूरी लंका उजड़ जायेगी। तुम्हें चाहिये कि मुझे श्रीराम के पास पहुँचाकर उनसे मैत्री कर लो नहीं तो तुम आंखों से अपने समस्त बन्धु-बान्धवों समेत इस लंका को भस्मसात् होते देखोगे।"

रावण ने सीता जी के कटु वचनों को सुनकर कहा, "तुम्हारे प्रेम में आसक्त होने के कारण मैं तुम्हें कोई कठोर दण्ड नहीं दे पा रहा हूँ। पर धैर्य की भी एक सीमा होती है। मैं तुम्हें दो मास का समय देता हूँ। यदि इस बीच तुमने मुझे अपना पति स्वीकार नहीं किया तो मैं तुम्हें पकाकर खा जाऊंगा। जब तक तुम्हारे मन में मेरे प्रति प्रीति उत्पन्न नहीं होगी, मैं तुम्हारा स्पर्श नहीं करूंगा। पर याद रखो कि वह भिखारी राम तुम्हें पाना तो दूर रहा, कभी देख भी नहीं सकेगा। तुम या तो मेरी पटरानी बनोगी या मेरा भक्ष्य।"

रावण ने राक्षसियों को कहा कि तुम सीता को समझा-बुझाकर मेरे अनुकूल करने का प्रयत्न करो। इतने में रावण की पटरानी मन्दोदरी वहां आयी और रावण से बोली, "इस अभागी मानवी नारी के भाग्य में ऐश्वर्य भोगना नहीं लिखा है। जो स्त्री आपको नहीं चाहती

उस पाकर आप क्या करेंगे ?" यह कहते हुए वह रावण को दूसरी ओर ले गयी।

अब रावण से आज्ञाप्राप्त राक्षसियां सीता जी को समझाने-मनाने लगीं। त्रिजटा आदि राक्षसियों ने रावण के बल, पौरुष, कुल और ऐश्वर्य का बखान करते हुए सीता जी को उसको पतिरूप में स्वीकार करने को कहा। पर केवल श्रीराम में आसक्त सीता जी ने उनकी एक नहीं सुनी, तब वे तरह-तरह के भय दिखाकर उन्हें मारने-काटने की धमकियां देने लगीं, पर साध्वी सीता पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे श्रीराम का चिन्तन-स्मरण करती हुई विलाप करने लगीं और इस दारुण दुःख से छुटकारा पाने के लिये उन्होंने प्राणों को त्याग देने का विचार किया। उनके प्राण-त्याग की बात सुनकर कुछ राक्षसियां रावण को यह बात बताने चली गयीं। शेष सीता जी को मार खा जाने का भय दिखाने लगीं। तभी कुछ पहले सोकर उठी बूढ़ी त्रिजटा राक्षसी बोली, "आज मैंने बड़ा भयंकर और रोमांचकारी स्वप्न देखा है। मुझे लगता है कि राक्षसों पर कोई भयंकर विपत्ति आने वाली है और सीता का मनोरथ पूरा होने वाला है।"

यह सुनते ही राक्षसियां त्रिजटा को घेरकर बैठ गयीं और उत्सुक होकर स्वप्न का विवरण पूछने लगीं। त्रिजटा ने रावण के पराभव और राम के अभ्युदय का सूचक स्वप्न सुनाया और राक्षसियों को सलाह दी कि सीता जी से कटुवचन न कहें और पहले किये गये अपराधों के लिये क्षमा मांगें।

रावण और राक्षसियों से भयभीत सीता जी ने सोचा कि यह पापी रावण मुझे मार डाले, इससे तो यही अच्छा है कि मैं स्वयं आत्मघात कर लूं। वे अशोक वृक्ष के नीचे खड़ी यह सब सोच ही रही थीं कि उनका बायां नेत्र और बाईं भुजा फड़कने लगे। इन शुभ शकुनों का उनके मन पर अच्छा प्रभाव पड़ा और उनके चेहरे पर छाया विषाद धुल गया।

हनुमान अशोक वृक्ष में छिपे बैठे सब कुछ देख रहे थे। उन्हें जिनकी खोज थी, वे भगवती सीता मिल गयीं थीं। उन्होंने श्रीराम का सन्देश सुनाकर सीता जी को आश्वस्त करने का निश्चय किया। किन्तु राक्षसियों के सामने सीता जी से बात कैसे की जाये, यही समस्या थी। श्रीराम का सन्देश सीता जी को सुनाना और राक्षसियों की पकड़ में न आते हुए सीता जी का सन्देश श्रीराम तक पहुँचाना—यह दुष्कर कार्य हनुमान के सामने था। उन्होंने सोचा, यदि बिना सन्देश सुनाये और सन्देश लिये लौट जाता हूँ तो सीता जी आत्महत्या कर लेंगी, और इससे सब काम बिगड़ जायेगा। दूसरी समस्या यह है कि कहीं सीता जी मुझे भी रावण द्वारा भेजा हुआ कपटी न समझ लें। बहुत सोच-विचार के बाद कपिश्रेष्ठ हनुमान ने निश्चय किया कि मैं श्रीराम का गुणगान करके सीता जी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करूंगा। हनुमान ने महाराज दशरथ के गुणों बखान करते हुए श्रीराम के वनवास, खर-दूषण के वध, सीता-हरण, सुग्रीव से मित्रता और सीता की खोज के लिये चारों दिशाओं में वानरों को भेजना और उन्हीं खोजने वाले वानरों में से अपने एक होने की बात धीरे-धीरे सीता जी

को कह सुनायी।

सीता जी को शब्द तो सुनाई दे रहे थे, पर बोलनेवाला दिखायी नहीं दे रहा था। उन्होंने विस्मित-चकित होकर अशोक वृक्ष की ओर, ऊपर को देखा। डाल पर बैठे हनुमान को देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई, पर वे निश्चय नहीं कर पा रही थीं कि मैं स्वप्न देख रही हूँ, या सत्य। उन्हें लगा कि मैं स्वप्न ही देख रही हूँ। क्योंकि मैं दिन-रात श्रीराम का स्मरण-चिन्तन करती रहती हूँ, इसलिये वही मुझे स्वप्न में दिखायी, सुनायी दे रहा है। पर वे यह भी अनुभव कर रही थीं कि मैं सोयी हुई नहीं हूँ। मैंने स्पष्ट सुना और वानर को आँखों से देखा है। इतने में हनुमान वृक्ष से नीचे उतर आये, हाथ जोड़कर सीता जी को प्रणाम किया और अपनी शंका के निवारण के लिये पूछा कि क्या आप ही सीता जी हैं। सीता जी ने भी अपना पूरा परिचय दिया। अब हनुमान बोले, "देवि ! मैं श्रीराम का दूत हूँ और उनका सन्देश आपके लिये लाया हूँ। श्रीराम-लक्ष्मण सकुशल हैं और वे आपकी कुशलता पूछते हैं।" हनुमान सीता जी के कुछ और पास चले गये। अब सीता जी का मन फिर शंकित हो उठा। उन्होंने सोचा, यह रावण ही है, जो कपटरूप धारण करके मेरे पास आया है। वे अशोक की शाखा का सहारा छोड़कर बैठ गयीं। वे भयाकुल बोलीं, "मैं समझती हूँ कि तुम रावण हो। पहले संन्यासी का वेष बनाकर मुझे छल चुके हो, तुम मायावी रावण हो। मैं तुम्हारे छल को खूब समझती हूँ।" सीता जी को फिर भ्रम हुआ कि मैं कहीं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ। वात-विकार-जनित विभ्रम तो यह नहीं है ! पर फिर उन्हें लगा कि नहीं, मैं जाग रही हूँ। मैं अपने को देख और समझ रही हूँ और इस वानर को भी देख रही हूँ।

हनुमान जी ने फिर श्रीराम-लक्ष्मण और सुग्रीव की ओर से आने की बात कही। वे बोले, "मैं सुग्रीव का मंत्री हनुमान नामक वानर हूँ। मेरी बात पर विश्वास कीजिये और अन्यथा मत सोचिये। अपना समाधान करने के लिये सीता जी ने पूछा, 'तुम वानर हो और श्रीराम मनुष्य, फिर तुम्हारा मेल कैसे हुआ ? तुम श्रीराम-लक्ष्मण को कैसे जानते हो ? अच्छा, यदि तुम उनके दूत हो और तुमने उन्हें देखा है तो बताओ कि उनका रूप-आकार कैसा है ?"

हनुमान ने श्रीराम-लक्ष्मण के शरीर का यथातथ्य वर्णन करके राम-सुग्रीव की मैत्री की सारी कथा सुनायी। फिर उन्होंने राम नाम से अंकित अंगूठी सीता को दी जिससे लेश मात्र भी सन्देह शेष नहीं रहा।

अब तो सीता जी प्रसन्न होकर हनुमान की प्रशंसा करने लगीं। अंगूठी पाकर उन्हें ऐसा लगा जैसे उनके प्राणाधार श्रीराम ही मिल गये हों। फिर वे बोलीं, "श्रीराम-लक्ष्मण ने अब तक इस लंकापुरी का विध्वंस क्यों नहीं किया ? वे चुप क्यों बैठे हैं ? क्या अभी मेरे दुःखों का अन्त-काल नहीं आया ? क्या श्रीराम को मेरा ध्यान है ? वे मुझे भूल तो नहीं बैठे हैं ?"

हनुमान बोले, "अभी तक तो उन्हें यही पता नहीं है कि आप यहाँ हैं। बस, मेरे जाते

ही वे लंका पर आक्रमण कर देंगे और राक्षस-कुल का संहार करके आपको मुक्त कर देंगे। आपके बिना रघुनन्दन क्षण भर भी चैन नहीं पाते हैं। वे बहुत कम खाते और सोते हैं। स्वप्न में भी वे 'सीते ! सीते !!' कह उठते हैं।

ये बातें सुनकर भगवती सीता का शोक यद्यपि कुछ कम हुआ, किन्तु उनके वियोग-जनित श्रीराम के दुःख की बात सुनकर वे फिर दुःखी हो उठीं। वे फिर हनुमान से बोलीं, "वानरवर ! तुम उनसे जाकर कहना कि वे शीघ्रता करें। एक वर्ष पूरा होने से पहले-पहले मुझे मुक्त करा लें, नहीं तो रावण मुझे मार डालेगा। अब केवल दो मास शेष रह गये हैं, इस अवधि के भीतर ही मुझे यहां से लिवा ले जाएं। रावण के भाई विभीषण ने रावण को सलाह दी थी कि मुझे लौटा दिया जाए, पर वह नहीं मानता। विभीषण की पत्नी ने अपने पुत्र को मेरे पास भेजा था। वही ये सब बातें मुझे बता गया है। हनुमान ! कब मेरे इन दुःखों का अन्त होगा। कब मैं श्रीराम के मुख-चन्द्र को देखूंगी ? पापी रावण का भाई-बन्धुओं-सहित कब अन्त होगा !" यह कहते-कहते वे रो पड़ीं।

कपिश्रेष्ठ हनुमान से भगवती सीता का दुःख देखा नहीं जाता था। वे बोले, "बस, मैंने कहा न कि मेरे जाते ही, यह पता लगने पर कि आप यहां हैं, श्रीराम लंका पर आक्रमण कर देंगे। और आप चाहें तो मैं अभी आपको राक्षसों के भय से मुक्त कर सकता हूँ। आप मेरी पीठ पर बैठ जाइये। मैं आपको श्रीरघुनाथ के पास पहुँचा दूंगा। मेरे कथन की उपेक्षा मत कीजिए। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, रावणसमेत ये राक्षस मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। मैं जैसे आया हूँ, वैसे ही चला भी जाऊँगा। आप मेरा पराक्रम देखिए।"

सीता बोलीं, "हनुमान ! तुम्हारी बातें सुनकर मुझे ऐसा लगता है कि ये सब वानर-स्वभाव की चपलता के वश ही कही गयी हैं। अपने शरीर की और जिस कार्य को करने की बात तुम कह रहे हो, उसकी तुलना तो करो।"

हनुमान को लगा कि सीता जी यह जानते हुए भी कि मैं अकेला समुद्र को लांघ कर, राक्षसों की आँखों में धूल झोंककर इनके पास जा पहुँचा हूँ, फिर भी ये मेरी जाति का और मेरा तिरस्कार कर रही हैं। यह सोचकर उन्होंने अपना विकराल और विराट रूप सीता जी को दिखाने का निश्चय किया। उन्होंने अपने शरीर को सोने के पर्वत जैसा ऊंचा और देदीप्य-मान बना लिया। फिर वे बोले, "मैं चाहूँ तो रावणसमेत इस पूरी लंका को उठाकर ले जाऊं। आपको अकेले ले जाना तो बहुत साधारण बात है। अब आप क्या कहती हैं ?"

सीता बोलीं, "मैं तुम्हारे बल-विक्रम से भली भाँति परिचित हूँ, पर तुम्हारी पीठ पर बैठकर न जाने के और ही कारण हैं। पहला तो यह कि आकाश-मार्ग से जाने के समय तुम्हारी गति के वेग के कारण मैं गिर सकती हूँ। दूसरा यह कि यदि राक्षसों ने देख लिया और युद्ध करने लगे तो तुम्हें मुझे संभालना और युद्ध करना दोनों कार्य एकसाथ करने

कठिन होंगे। तीसरे यह कि मेरे तुम्हारे साथ जाने से श्रीराम के यश को बट्टा लगेगा। चौथे यह कि मैं स्वेच्छा से किसी पर-पुरुष के शरीर का स्पर्श नहीं कर सकती। रावण जो मुझे हर ले आया, वह मेरी विवशता थी। इसलिए वीर वानर! तुम ऐसा यत्न करो कि कपीन्द्र सुग्रीव की समस्त सेना-सहित श्रीराम-लक्ष्मण लंका पर अभियान करें और सेना-सहित रावण का संहार करके मुझे ले जाएं। यही उनके गौरव के अनुरूप होगा।''

सीता जी की बात सुनकर हनुमान बोले, ''आप ठीक ही कह रही हैं। अब आप कृपा करके अपनी कोई पहचान की वस्तु श्रीराम के लिए दे दीजिए, जैसे उन्होंने अंगूठी दी थी। इससे श्रीराम आश्वस्त हो जाएंगे कि मैं आपसे भेंट करके लौटा हूँ।''

सीता बोलीं, ''तुम श्रीराम से कहना, 'चित्रकूट में वास के दिनों में एक कौए ने मुझे चोंच मारी थी तो आपने कुपित होकर, उसपर ब्रह्मास्त्र छोड़ा था। कहीं भी त्राण न पाकर जब वह अन्त में आपकी शरण आया था तो आपने उस शरणागत को प्राणदान दिया था और उसकी केवल दाईं आंख ही फोड़ी थी। परन्तु आज समर्थ होते हुए भी आप मेरे अपहरणकर्ता को कोई दण्ड नहीं दे रहे हैं?' उन्हें मेरा प्रणाम कहना और कहना कि मेरे दुःखों का अन्त करके शीघ्र मुझे अपना आश्रय प्रदान करें। लक्ष्मण को भी मेरी मुक्ति के लिए प्रेरित करना। अधिक क्या कहूं, श्रीराम यदि मुझे जीवित देखना चाहते हैं तो दो माह के भीतर मेरा उद्धार करें।'' यह कहते हुए सीता जी ने कपड़े में बंधी चूड़ामणि को निकाला और श्रीरामचन्द्र जी को देने के लिए हनुमान को सौंप दिया। उस चूड़ामणि को लेकर हनुमान ने भगवती सीता को प्रणाम किया और चलने की अनुमति मांगी। सीता जी के नेत्र छलछला पड़े और गला रुंध गया।

हनुमान वहाँ से उत्तर दिशा की ओर चल पड़े। उन्होंने सोचा, लंका में आया हूँ तो शत्रु की शक्ति की थाह लेकर ही जाना चाहिये। उन्होंने निश्चय किया कि दण्ड-नीति का अनुसरण करते हुए मुझे कुछ करना चाहिए। फिर क्या था, वानरवीर हनुमान ने अपनी जाति के अनुरूप उद्यान को उजाड़ने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। वृक्ष तोड़ डाले, लताएं उखाड़ फेंकीं। उद्यान के पक्षी भय के मारे चें-चें, कें-कें का शोर मचाने लगे। कुछ ही देर में सारा उद्यान धराशायी वृक्षों और लताओं से पट गया। राक्षसियों ने इसकी सूचना रावण तक पहुँचाई। रावण ने राक्षसों को आज्ञा दी कि उस वानर को पकड़कर बाँध दो। हनुमान जी उद्यान के मुख्य द्वार पर खड़े थे। विशाल राक्षस-सेना एकसाथ उनपर टूट पड़ी।

हनुमान जी ने श्रीराम-लक्ष्मण और सुग्रीव की जय का घोष करते हुए राक्षसों को अपना परिचय दिया। अग्निपुंज की तरह दमकते अपने विशाल और विकराल शरीर को और भी तानकर और द्वार पर पड़े एक लौहदण्ड को उठाकर वानरवीर ने राक्षसों का संहार करना प्रारम्भ किया। कुछ ही देर में मरे-कटे राक्षसों के घिनौने शरीरों से वहाँ की धरती पट गई। जब रावण को पता लगा कि भेजे गये समस्त राक्षसों को उस वानर ने अकेले

ही मार डाला है तो उसके क्रोध की सीमा नहीं रही। उसने प्रहस्त के महान् पराक्रमी पुत्र जम्बुमाली को सेना-सहित उस वानर को पकड़ने की आज्ञा दी। उधर हनुमान ने राक्षसों के कुलदेवता के मंदिर को गिराना-तोड़ना प्रारम्भ किया। मन्दिर के रक्षक राक्षसों ने अस्त्रा-स्त्रों से उनपर आक्रमण कर दिया। हनुमान जी ने मन्दिर के एक भारी खम्भे को उठाकर घोर गर्जन करते हुए राक्षसों का विनाश कर डाला। फिर राम-लक्ष्मण, सुग्रीव का जयघोष करते हुए उन्होंने राक्षसों को सुनाते हुए कहा, "तुम्हारे और तुम्हारी इस लंका के दिन पूरे हुए। बल-विक्रम में मुझसे भी बड़े-बड़े वानरवीर सुग्रीव के नेतृत्व में तुम्हारा विनाश करने के लिए पहुँचने वाले हैं।"

इतने में प्रहस्त का पुत्र जम्बुमाली धनुष-बाण लिए आ पहुँचा और हनुमान जी पर बाण-वर्षा करने लगा। उसके बाणों से पीड़ित हो हनुमान जी का क्रोध भड़क उठा। एक बड़ी शिला को उठाकर उन्होंने जम्बुमाली पर दे मारा। पर जम्बुमाली ने उसे बाणों से व्यर्थ कर दिया। फिर हनुमान जी ने वहाँ पड़े भारी भाले को जम्बुमाली पर फेंका। जम्बुमाली इस वार को सह न सका। उसका मस्तक कटकर दूर जा पड़ा।

रावण को जम्बुमाली के मारे जाने का पता लगा तो उसने सात मंत्रिपुत्रों को लड़ने के लिये भेजा। हनुमान द्वारा वे भी मार डाले गए। अब रावण ने अपने पाँच सेनापतियों को भेजा। वे भी वानरवीर के हाथों यमलोक के यात्री हुए। हर बार राक्षसों के पराजित होने का समाचार सुनकर रावण बौखला उठा। अब की उसने अपने पुत्र अक्षयकुमार को हनुमान से लड़ने के लिए भेजा। अक्षयकुमार ने हनुमान को युद्ध के लिए ललकारा और उनके माथे में एकसाथ तीन बाण मारकर रक्तरंजित कर दिया। हनुमान ने पहले तो उसके रथ को नष्ट किया और जब वह धरती पर आ खड़ा हुआ तो झपटकर दोनों टाँगें पकड़कर ऊपर उठा लिया और कई चक्कर घुमाने के बाद पटक दिया। अक्षयकुमार का शरीर टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गया। अब हनुमान फिर उद्यान के द्वार पर खड़े होकर युद्ध की इच्छा से प्रतीक्षा करने लगे।

उस ओर रावण को जब पता लगा कि अक्षयकुमार भी मारा गया तो उसकी चिन्ता और क्रोध दोनों ही बढ़ गये। उसने अपने महान् पराक्रमी पुत्र मेघनाद को बुलाकर उसके बल-विक्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा कि अब तुम अकेले जाकर उस वानर से युद्ध करो। मेघनाद रावण की ही तरह युद्ध-विद्या में पारंगत था। उसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की थी। वह चार सिंहों द्वारा खींचे जाने वाले रथ पर चढ़कर गरुड़ की तरह वेग से हनुमान के पास जा पहुँचा। हनुमान एक प्रसिद्ध वीरयोद्धा को सामने पाकर दूने उत्साह के साथ लड़ने के लिए तैयार हो गये। मेघनाद अपने तीखे बाणों की वर्षा करने लगा और वीर हनुमान उन्हें व्यर्थ करने लगे। हनुमान अपने को उसके बाणों से बचाने के लिए तरह-तरह

के पैंतरे बदलते रहे। उन्हें मेघनाद को धर दबाने का अवसर ही नहीं मिल रहा था। मेघनाद के भी सारे अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ जा रहे थे। उसने निश्चय किया कि मारने का विचार न करके इस वानर को पकड़ लेना चाहिए। पर यह कार्य भी उससे करते नहीं बनता था। मेघनाद का धैर्य समाप्त हो चला। उसने अमोघ ब्रह्मास्त्र को प्रयोग करके हनुमान को बांध लिया। हनुमान निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। ब्रह्मास्त्र का प्रभाव ही ऐसा था। पर हनुमान जी चाहते तो बंध जाने के बाद ब्रह्मा द्वारा मिले वरदान से मुक्त भी हो सकते थे। पर उन्होंने सोचा कि इस बहाने रावण से भेंट होने की संभावना है, इसलिए बंधे ही रहना चाहिए। राक्षसों ने निश्चेष्ट हनुमान को घेर लिया और खूब डांटा-डपटा। फिर रस्सियों से जकड़कर बांध दिया। पर दूसरे बंधनों से बंधते ही ब्रह्मास्त्र की जकड़ समाप्त हो गई। क्योंकि उस अस्त्र का बन्धन किसी दूसरे बन्धन से बांधने पर व्यर्थ हो जाता है। राक्षसों को क्या पता था यह वानर ब्रह्मास्त्र के कारण निश्चेष्ट पड़ा है। यह बात तो मेघनाद ही जानता था। राक्षसों ने उसके किये-कराये पर पानी फेर दिया था और इसका मेघनाद को बड़ा दुःख था।

राक्षस घूंसों और थप्पड़ों से मारते, घसीटकर हनुमान को रावण के पास ले चले। सभा में उसे रावण के समक्ष प्रस्तुत किया गया। सभासदों में कुछ तो कहने लगे कि इसे मार दो, काट दो, जला दो, और कुछ पूछने लगे कि यह कौन है, कहां से आया है, किसका सेवक है इत्यादि।

क्रोध में भरे रावण ने मंत्रियों से कहा कि इस वानर का परिचय पूछो। हनुमान ने स्पष्ट बता दिया कि मैं सुग्रीव का दूत हूं। रावण से मिलने आया हूं। मैं सीता जी की खोज के उद्देश्य से आया हूं। राक्षसों ने मुझे मारना चाहा, इसलिए मैंने भी उन्हें मारा। मैंने सीता को यहां देखा है। परायी स्त्री का बलपूर्वक अपहरण करके अपने यहां रखना किसी प्रकार भी उचित नहीं ठहराया जा सकता। इसलिए आपको चाहिए कि जानकी को सम्मानपूर्वक लौटा दें। भगवान् राम के प्रति अपराध करके कोई भी जीवित नहीं रह सकता।

वानरवीर हनुमान की धर्मयुक्त और न्यायपूर्ण बातें दुर्बुद्धि रावण को अच्छी नहीं लगीं। उसने सेवकों को हनुमान के वध की आज्ञा दे डाली। वहीं बैठे विभीषण ने रावण के इस निर्णय का विरोध किया। उसने नम्रतापूर्वक राक्षसेन्द्र से कहा, "यह वानर दूत बनकर आया है और दूत अवध्य होता है। इसे मृत्युदण्ड के अतिरिक्त दूसरा कोई दण्ड दिया जा सकता है। यदि आप प्राणदण्ड देना चाहते हैं तो उसे दीजिए जिसने यह दूत भेजा है।"

बहुत समझाने-बुझाने पर यह बात रावण ने मान ली। फिर बोला, "पर इसे कुछ न कुछ दण्ड अवश्य दिया जाना चाहिए। वानरों को अपनी पूंछ बड़ी प्यारी होती है। अतः इसकी पूंछ जला दी जाए।" फिर उसने राक्षसों को आज्ञा दी कि इसकी पूंछ में आग लगाकर इसे समूची लंका में घुमाया जाये।

आज्ञा मिलते ही राक्षसों ने हनुमान की पूंछ को कपड़ों से लपेटना प्रारम्भ कर दिया।

कपड़े लपेटकर उसे तेल से अच्छी तरह भिगोया और आग लगा दी। हनुमान अपनी पूंछ को लुकाठी की तरह घुमाकर आसपास खड़े राक्षसों को पीटने लगे। तब क्रूर राक्षसों ने मिलकर उन्हें बांध दिया और पूंछ जलती देखकर प्रसन्न होने लगे। उन्होंने बाजों-गाजों के साथ हनुमान को सारी लंका में घुमाना प्रारम्भ किया। शत्रु का गुप्तचर कहकर वे राक्षसों को उनका परिचय देते। बालक, वृद्ध और स्त्रियां घरों से निकल-निकलकर यह तमाशा देखने लगे। कुछ राक्षसियों ने यह समाचार सीता जी को सुनाया। सुनकर सीता जी को बड़ा दुःख हुआ। वे हनुमान की मंगल कामना के लिए अग्निदेव का चिन्तन करते हुए बोलीं, "हे अग्निदेव ! मेरे तप और पातिव्रत्य के कारण हनुमान को मत जलाइए।"

उधर पूंछ में आग लगने पर हनुमान सोचने लगे, "यह आग मुझे जलाती नहीं है, इसका क्या कारण है ! उन्होंने इसे श्रीराम का ही अनुग्रह माना। फिर उन्होंने निश्चय किया कि इन राक्षसों को पूंछ में आग लगाने का दण्ड अवश्य मिलना चाहिए। बस, फिर क्या था, उन्होंने अपने शरीर को तानकर सारे बंधन तोड़ डाले और पास पड़े एक भाले को उठाकर साथ चल रहे समस्त राक्षसों को मार डाला। फिर ऊंचे-ऊंचे महलों पर चढ़ गये और पूंछ की आग से सब ओर आग लगाने लगे। एक के बाद एक लंका के बड़े-बड़े प्रासाद धू-धू करके जलने लगे। विभीषण के घर को छोड़कर सारी लंकापुरी आग की लपटों से सुवर्ण पर्वत की तरह दिखाई देने लगी। हवा का संयोग पाकर आग ने भयंकर रूप धारण कर लिया। राक्षस भाग-भागकर दूर जाने लगे और हृदयद्रावक हाहाकार से सारी लंका त्रस्त हो उठी। प्रलया-ग्नि जैसी उस आग ने सारी लंका को श्मशान बना दिया। एक-एक प्रासाद एक-एक चिता की तरह धू-धू करके जलने लगा। झुलसे हुए, अधजले राक्षसों के भागने और चीखने-चिल्लाने से पिशाच-नृत्य-सा होने लगा। जब सारी लंकापुरी जलकर राख हो गयी तो हनुमान ने समुद्र में कूदकर अपनी पूंछ की आग बुझा डाली। अब उनके मन में नई चिन्ता जागी। कहीं जलती लंका में भगवती सीता तो दग्ध नहीं हो गयीं ? हाय ! मैंने सीता की रक्षा का कोई विचार किये बिना लंका को जलाकर अपना ही मनोरथ नष्ट कर डाला। पर फिर विचार आया कि भगवती सीता तो स्वयं अग्निरूप हैं। उनका सतीत्व ही उनका रक्षक है। उन्होंने निश्चय किया कि मैं दोबारा सीता जी का दर्शन करके ही लौटूंगा। वे अशोक वाटिका में पहुंचे और सीता जी को सकुशल देखकर बड़े प्रसन्न हुए। अब उन्हें यहां कोई कार्य करना शेष नहीं रहा था। इसलिये समुद्र के किनारे ऊंचे उठे अरिष्ट गिरि के शृंग पर जा चढ़े और उत्तर तट की ओर जाने के लिए बड़े वेग से उछले। जब दूसरा किनारा दिखाई दिया तो पवनपुत्र ने जोर की गर्जना की और जहां वे अपने मित्रों-सहयोगियों को छोड़ गये थे उस ओर बढ़े। हनुमान की जानी-पहचानी गर्जना सुनकर उदास-निराश बैठे वानरयूथ आंखें उठा-उठाकर देखने लगे। वे सब समझ गये थे कि हनुमान सफलमनोरथ होकर लौटे हैं, तभी

तो ऐसा गर्ज रहे हैं और उनके देखते-देखते पवनपुत्र हनुमान महेन्द्र पर्वत के एक शिखर पर उतर पड़े। फिर तो सभी वानर उन्हें चारों ओर से घेरकर खड़े हो गये। तरह-तरह के फल-मूलों से उन्होंने हनुमान का स्वागत-सत्कार किया। जाम्बवान् आदि वृद्धजनों व युवराज अंगद को प्रणाम करके हनुमान बोले, "मुझे देवी सीता का दर्शन हो गया।" इतना सुनते ही वानरसेना हर्ष-विभोर होकर खूब उछल-कूद मचाने और किलकारियाँ मारने लगी। फिर हनुमान जी ने उनसे सारी बातें विस्तार से कह सुनायीं। सबने हनुमान जी को सराहते हुए उनका अभिनन्दन किया। फिर हनुमान ने सबको प्रेरणा दी कि यदि सबकी सम्मति हो तो हम लंका पर आक्रमण करके और सीता को वहाँ से लाकर ही श्रीराम-लक्ष्मण और सुग्रीव के सामने जायें। इन प्रेरक वचनों को सुनकर अंगद में उत्साह ठाठें मारने लगा। वह बोला, "श्रीराम के सामने यह निवेदन करना उचित नहीं जान पड़ता कि हमने देवी सीता का दर्शन तो किया, पर उन्हें ला नहीं सके।" पर विचारवान् जाम्बवान ने इस बात का समर्थन नहीं किया। वे बोले, "हमें केवल पता लगाने की आज्ञा दी गयी है, लाने की नहीं। श्रीराम ने हम सबके सामने जो यह प्रतिज्ञा की है कि वे स्वयं शत्रुओं पर विजय पाकर सीता जी को लायेंगे, वह झूठी हो जायेगी। इसलिये इस समय हमें तुरन्त सूचना पहुँचाने का ही कार्य करना चाहिये।"

यह बात सबने मान ली और महावीर हनुमान को आगे करके सब किष्किन्धा की ओर चल पड़े। वे सुग्रीव के मधुवन में जा पहुँचे। यह एक सुरक्षित वन था। सुग्रीव के मामा दधिमान नामक वानर इसकी रक्षा करते थे। फलों से भरा हुआ यह वन देखकर वानर-सेना फल खाने के लिये लालायित हो उठी। उन्होंने इसके लिये अंगद से आज्ञा माँगी और अंगद ने स्वीकृति दे दी। फिर क्या था, बात की बात में सारी वानर-सेना वृक्षों पर जा चढ़ी और मनचाहे फलों को खाने लगी। उनकी उछल-कूद और छीना-झपटी को देखकर ऐसा लगता था कि सभी मतवाले हो गए हैं। वानर का यही स्वभाव है कि खाना कम और उजाड़ना अधिक। यहाँ भी वही हुआ। वन के रक्षक दधिमुख ने इस ऊधम को रोकने का बहुत प्रयत्न किया, पर यहाँ सुनता कौन था! उसे क्रोध आ गया। जब उसने कुछ को डाँटा-फटकारा तो वे मिलकर उसे ही सताने लगे। वे तो मारे प्रसन्नता से पागल हो गए थे और फिर युवराज अंगद की अनुमति मिल ही चुकी थी। फिर वे इतना बड़ा कार्य करके आए थे जिसके सामने ऐसे छोटे-छोटे अपराध नगण्य थे। उधर हनुमान ने वानरों को खुली छूट दे दी कि खूब खाओ-पियो। जो तुम्हें रोकने आएगा उसे मैं रोकूँगा। अंगद ने भी हनुमान की बात का समर्थन कर दिया। वन के रखवालों की वहाँ एक न चली। इस वन में शहद के छत्तों की भर-मार थी और वानर-सेना उनपर टूट पड़ी थी। जो खा-पीकर अघा गये वे इधर-उधर लेट गये। दधिमुख जब अपने सेवकों को साथ लेकर रोकने लगा तो इन्होंने उसकी दुर्गति कर दी।

अन्त में उसने निश्चय किया कि सुग्रीव से कहकर इन्हें दण्ड दिलाया जाये। दधिमुख

ने खूब नमक-मिर्च लगाकर युवराज और हनुमान की बुराई की और वन को उजाड़ने के लिये उन्हें ही दोषी ठहराया।

लक्ष्मण के यह पूछने पर कि "क्या बात है," सुग्रीव ने मधुबन को उजाड़ने की बात बताते हुए कहा, "जान पड़ता है कि उन्होंने देवी सीता का पता अवश्य लगा लिया है। यदि ये वानरवीर सफलमनोरथ होकर न आते तो इस तरह का उत्पात मचाने का साहस कभी न करते।"

यह हर्षदायक समाचार सुनकर श्रीराम-लक्ष्मण अत्यन्त प्रसन्न हुए। सुग्रीव भी प्रसन्नता से खिल उठे। वे दधिमुख से बोले, "मामा ! सफलकार्य होकर लौटे हुए वानर-वीरों की उद्दण्डता को क्षमा कर दीजिए। अब शीघ्र जाइए और उन्हें यहाँ आने के लिये कहिये।"

दधिमुख ने सुग्रीव का सन्देश युवराज अंगद को कह सुनाया। अंगद ने वानरों को सुग्रीव के पास चलने को कहा। आज्ञा पाकर वानरसेना उछलती-कूदती अंगद के नेतृत्व में सुग्रीव और श्रीराम-लक्ष्मण के पास पहुँची। हनुमान-अंगद आदि ने सुग्रीव और श्रीराम-लक्ष्मण के चरणों में प्रणाम करते हुए निवेदन किया कि देवी सीता पातिव्रत्य के नियमों का पालन करती हुई सकुशल हैं। हनुमान बोले, "मैंने उनका दर्शन किया है।" और फिर उन्होंने सारी बातें विस्तार से कह सुनाईं। सुरक्षित चूड़ामणि भी दे दी।

चूड़ामणि को देखकर और जानकी की कष्टपूर्ण करुण-कथा सुनकर श्रीराम का हृदय शोक-विह्वल हो गया। सीता-सम्बन्धी पूरी जानकारी पाकर श्रीराम को हर्ष हो रहा था और दुःखगाथा को सुनकर कष्ट।

युद्धकाण्ड

हनुमान द्वारा साधित सागर-संतरण, सीता-दर्शन, राक्षस-मर्दन और लंका-दहन के अद्भुत कार्य को सुनकर श्रीराम ने हनुमान की बड़ी प्रशंसा की।

श्रीराम को सान्त्वना देते हुए वानरेन्द्र सुग्रीव बोले, "देवी सीता का पूरा समाचार मिल जाने के बाद अब आपका शोक करना उचित नहीं है। अब आप संताप छोड़कर पापात्मा रावण के विनाश में तत्पर होइए और हमें उचित निर्देश दीजिए। यह वानरसेना आपके संकेत पर महान् से महान् दुष्कर कार्य करने में भी समर्थ है। कार्य-सिद्धि के लिये शोक का परित्याग करके शौर्य का आश्रय लीजिए। अब यह विचारिये कि समुद्र को लाँघने का क्या उपाय किया जाये। मुझे यही एक बड़ी बाधा दिखाई देती है। आप दूरदर्शी और सूक्ष्म-दर्शी हैं। उत्साह का आश्रय लीजिए और शत्रु को यमलोक पहुंचाने का मार्ग प्रशस्त कीजिए। देव, दानव और मानवों में कौन ऐसा है जो युद्ध में आपके सामने ठहर सके।"

सुग्रीव के सत्परामर्श को मानकर देश-काल के अनुसार कार्य करने वाले नीति-निपुण श्रीराम ने हनुमान से लंकापुरी की सैनिक महत्त्व की पूरी जानकारी देने को कहा।

हनुमान बोले, "लंकापुरी धन-धान्य से पूर्ण, रथों, हाथियों और सैनिकों से भरी हुई है। चार उसके मुख्य द्वार हैं और उनपर शतघ्नियाँ लगी हैं। चारों ओर ऊंचे परकोटे से घिरी हुई लंका शत्रुओं से सुरक्षित और दुर्जेय है। परकोटे के बाहर जल से भरी गहरी खाई है, जिसके कारण परकोटे तक पहुँचना कठिन है। चारों द्वारों के सामने खाई पर पुल बनाकर मार्ग बनाया गया है। परकोटे पर घोर पराक्रमी राक्षस वीरों का पहरा है और दरवाजों पर भी शस्त्रधारी पहरेदार नियुक्त हैं, जिनकी अनुमति के बिना भीतर प्रवेश करना कठिन है। रावण स्वयं सेनाओं का निरीक्षण करता है। नदी, पर्वत, वन, खाई और परकोटे के कारण लंकापुरी शत्रुओं के लिये दुर्गम्य है। किन्तु मैंने इन सब बाधाओं को पार कर लंका में प्रवेश ही नहीं किया है, देवी सीता के दर्शन भी किये हैं और राक्षस-सेना का संहार भी किया है। लंका को जलाकर उसकी समृद्धि को स्वाहा कर दिया है और राक्षसों का मनोबल तोड़ डाला है। मैं तो समझता हूँ कि अंगद, द्विविद, मैन्द, जाम्बवान, नल और नील—इतने ही वानर सेनानायक लंका-विजय के लिये पर्याप्त हैं। अधिक सेना ले जाने की आवश्यकता नहीं है।

अब तो आप आवश्यक उपकरणों और सामग्री का संग्रह करके विजययोग शुभमुहूर्त में सेना को प्रस्थान करने की आज्ञा दीजिए।"

श्रीराम ने सारी बातों का विचार करते हुए कहा, "वीरवर हनुमान! मैं अकेला भी उस लंकापुरी को ध्वस्त कर सकता हूँ। आज बड़ा अच्छा मुहूर्त है और शकुन भी अच्छे हो रहे हैं, इसलिये आज ही यहाँ से प्रस्थान कर देना चाहिये। ऐसी व्यवस्था करो कि सेनापति नील एक लाख वानरवीरों को लेकर अग्रगामी सैन्य-दल के रूप में आगे चलें और मार्ग को प्रशस्त बनाएं। उपयुक्त स्थानों में पड़ाव डालने की व्यवस्था करें। शत्रु जलाशयों को विष डालकर दूषित न कर दें, इसकी भी उचित व्यवस्था होनी चाहिये। छिपकर बैठे शत्रु हमपर पीछे से आक्रमण न करें, इसलिये शत्रु के छिपने योग्य स्थानों को भली प्रकार देखते हुए ही आगे बढ़ना चाहिये। बूढ़ों और किशोर अवस्था वालों को सेना में सम्मिलित न करके यहीं रहने को कहा जाये। गज, गवय और गवाक्ष नामक यूथपति सेना से आगे चलें। यूथपति ऋषभ सेना के दाहिने भाग की रक्षा करते चलें। गन्धमादन यूथपति को दायें भाग की रक्षा में नियुक्त किया जाये। मैं और लक्ष्मण क्रमशः हनुमान और अंगद के कन्धों पर चढ़कर, सेना के मध्यभाग में रहकर उसे उत्साहित करते चलेंगे। जाम्बवान, सुषेण और वेगदर्शी यूथपति सेना के पिछले भाग की रक्षा करते चलेंगे।"

वानरपति सुग्रीव की आज्ञा से यथानिर्दिष्ट सारी सेनाएं सज्जित होकर दक्षिण दिशा की ओर चल पड़ीं। दिन-रात यात्रा करती हुई वानर-सेना समुद्र तट पर अवस्थित महेन्द्र पर्वत पर जा पहुँची। समुद्र की उत्ताल तरंगों के गर्जन से यहाँ हर समय खूब शोर होता रहता था। श्रीराम सुग्रीव से बोले, "वानरेन्द्र! यहाँ तक की यात्रा तो निर्विघ्न हो गई किन्तु सागर-संतरण का कोई उपाय दिखाई नहीं देता है। मैं चिन्तित हूँ कि इसे हम कैसे पार कर पायेंगे?" सारी सेना को वहाँ पड़ाव डालने की आज्ञा देकर और सावधान रहने को कहकर श्रीराम-लक्ष्मण और सुग्रीव समुद्र-संतरण का उपाय सोचने लगे। उस समय समुद्र में ज्वार आया हुआ था और उसकी भयंकरता और बढ़ गई थी। सागर क्षुब्ध और क्रुद्ध सा दिखाई देता था। सागर की दुर्लंघ्यता और सीता द्वारा बताई गई दो मास की अवधि का विचार करके श्रीराम शोक-सागर में निमग्न हो गये। उन्हें इस बात की बड़ी चिन्ता थी कि इस समयावधि में कार्य कैसे सम्पन्न होगा!

उधर लंका में वीरवर हनुमान ने जो अपना पराक्रम प्रदर्शित किया था, उससे लंकापति रावण का मुख मारे लज्जा के नीचा हो गया था। उसने अपने मंत्रियों को बुलाकर परामर्श किया कि क्या करना चाहिये। उसे गुप्तचरों से जो कुछ पता चला था, उसकी सूचना

मन्त्रियों को देते हुए वह बोला, "राम वानरों की सेना सहित लंकापुरी पर चढ़ाई करने आ रहा है। वह सागर-संतरण कर ही लेगा, यह भी स्पष्ट है क्योंकि हनुमान नामक वानर पहले ही समुद्र लाँघ कर यहाँ आ चुका है।"

मंत्रियों ने रावण के पूर्व काल में किये गये पराक्रमों का उल्लेख करते हुए कहा, "लंकेश्वर ! आप चिन्ता क्यों करते हैं ? आप निश्चिन्त होकर बैठिये। अकेले महाबाहु इन्द्रजित ही समस्त वानर-सेना का संहार कर डालेंगे। वे तप द्वारा प्राप्त वरदान के कारण दिव्यास्त्रों की शक्ति से सम्पन्न हैं। वे शत्रुओं के लिये अजेय हैं। उनके सामने कोई नहीं ठहर सकता। उन्होंने देवराज इन्द्र तक को कैद कर लिया था, फिर किसी दूसरे की तो बात ही क्या ! इसलिये राजकुमार इन्दरजित मेघनाद को ही भेजिए जिससे वे यहाँ आने से पूर्व ही वानर सेना को नष्ट कर दें। इसके पश्चात् प्रहस्त, दुर्मुख, निकुम्भ और वज्रहनु आदि सेना-नायक बोले कि पहले हम असावधान होने के कारण उस वानर से मार खा गये। अब हम सावधान हो गये हैं और देवताओं तक को युद्ध में पछाड़ने के लिये समर्थ हैं। सीता-हरण के कारण आप पर कोई संकट नहीं आ सकता। उस वानर ने हमारे प्रति जो अपराध किया है उसका दण्ड हम अवश्य देंगे। फिर तो प्रत्येक सेना-नायक बढ़-बढ़कर बातें बनाने लगा और अकेले ही श्रीराम-लक्ष्मण-सुग्रीव सहित समस्त सेना को मार भगाने की बात कहने लगा। उनमें से एक वज्रदंष्ट्र नामक राक्षस बोला, "मेरा विचार है कि मायावी राक्षसों की एक सेना मानवों का रूप बनाकर राम के पास जाये और कहे कि हमें आपके छोटे भाई भरत ने आपकी सहायता के लिये भेजा है। फिर जब वे आक्रमण करें तो भीतर-बाहर दोनों ओर से उनपर प्रहार करके परास्त कर दें। राजनीति में छल-बल से ही सफलता मिलती है।" कुम्भकर्ण का पुत्र निकुम्भ बोला, "आप में से किसीको भी कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। आप सब अपना-अपना काम देखिये, उन्हें मैं अकेला ही मार भगाऊंगा।"

इस प्रकार शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित अनेक वीर वानर सेना के संहार के लिये खड़े हो गये।

धर्मात्मा विभीषण ने उन्हें रोकते हुए लंकापति से कहा, "राक्षसेन्द्र, साम, दाम और भेद से कार्य सिद्ध न होने पर ही दण्ड-नीति का सहारा लेना उचित होता है। शत्रु की शक्ति की थाह लिये बिना आक्रमण को नीतिमान् पुरुष अनुचित बताते हैं। जो हनुमान समुद्र पारकर यहाँ आकर राक्षस-सेना का संहार और लंका को स्वाहा कर गया, उसे कौन मार सकता है ! डींगें मारने वाले ये सेनापति उस समय कहाँ सोये हुए थे ? उस समय इनकी शूरवीरता को क्या काठ मार गया था। आप बिना उचित कारण के ही श्रीराम की पत्नी को हर लाए हैं। खर को मारने का दोषारोपण भी उचित नहीं है, क्योंकि उसने ही उन पर आक्रमण किया था। मेरे विचार में सीता को लौटा देना ही उचित है। नहीं तो हमें भारी विपत्ति का सामना करना पड़ेगा। आप मेरे बड़े भाई हैं। मेरी हितयुक्त बात को मानकर सीता को

लौटा दिया जाये।"

विभीषण की बात सुनकर रावण सभा को विसर्जित कर अन्तःपुर में चला गया। दूसरे दिन प्रातः धर्मात्मा विभीषण महल में रावण के पास गये और उसे फिर सीता को लौटाने के लिये कहा पर रावण ने स्वीकार नहीं किया।

रावण की आज्ञा से फिर सभा जुटी। मंत्री, बन्धु-बान्धव और प्रमुख राक्षस उसमें उपस्थित हुए। रावण ने प्रहस्त को नगर की रक्षा का भार सौंपते हुए, सभासदों को सम्बोधित करते हुए कहा, "मैंने सीता-हरण का जो कार्य किया है, उसे आप सब लोग जानते हैं। मैं चाहता हूं कि आप मेरे उस कार्य का समर्थन करें। मुझे नहीं लगता कि राम समुद्र लांघकर लंका तक पहुंच सकेगा। किन्तु आप सब यह भी जानते हैं कि एक वानर ने यहां आकर कैसा उत्पात मचाया। इसलिये सारी बातों का विचार करते हुए अपनी-अपनी सम्मति दीजिए। राम-लक्ष्मण और वानर-पति सुग्रीव सेना-सहित उस पार पहुँच चुके हैं। यदि वे समुद्र पार कर भी लें तो भी मुझे जीत नहीं सकते।"

रावण की बातें सुनकर उसके भाई कुम्भकर्ण को क्रोध आ गया। वह बोला, "आपको चाहिये था कि सीता को हरने से पूर्व या हरकर लाने के तुरन्त बाद हम से विचार करते। पर-स्त्री-हरण का कार्य सर्वथा निन्दनीय है। बिना सोच-विचार कर किए कार्य के लिये पीछे पछताना पड़ता ही है। आप विष पीकर उसे पचाने की बात सोच रहे हैं। यद्यपि आपने भयंकर भूल की है तथापि मैं आपके शत्रुओं का संहार करके आपको सुखी करूंगा। खाओ, पियो और मौज करो। मैं सब देख लूंगा। राम के मरते ही सीता सदा के लिये तुम्हारी हो जाएगी।"

महापार्श्व नामक राक्षस वीर बोला, "जो पुरुष प्राप्त हुई वस्तु का उपभोग नहीं करता है, वह मूर्ख है।"

महापार्श्व की बात सुनकर रावण प्रसन्न ही हुआ और बोला, "तुम ठीक कह रहे हो। पर मैंने जो आजतक बल का प्रयोग नहीं किया उसका भी एक कारण है। एक अप्सरा के साथ मैंने बल का प्रयोग किया था, तब प्रजापति ब्रह्मा ने मुझे शाप दिया था कि यदि भविष्य में ऐसा करोगे तो तुम्हारे मस्तक के सौ टुकड़े हो जाएंगे।"

विभीषण से चुप नहीं रहा गया यद्यपि उसकी बात पहले भी नहीं मानी गई थी। वह बोला, "मंत्रियों का कार्य राजा की हां में हां मिलाना नहीं है। धर्म, न्याय और नीतियुक्त सम्मति देना है। राजा और प्रजा का जिसमें हित हो, उस कार्य की प्रेरणा देना है। यही सोचकर मैं कहता हूँ कि सीता को लौटा दिया जाये। व्यर्थ युद्ध छेड़ना ठीक नहीं।"

इन्द्रजित मेघनाद बोला, "चाचा जी, आप बड़े डरपोक हैं। युद्ध से डरते हैं और हमें भी डराने का प्रयत्न कर रहे हैं। आप में तो किसी गये-बीते राक्षस जितना भी साहस नहीं है। आपको पता ही है, मैंने अकेले ही इन्द्र को भगाकर इन्द्रजित की उपाधि प्राप्त की थी। फिर

वे दो वनवासी राजकुमार हमारा बिगाड़ ही क्या सकते हैं?"

विभीषण ने उत्तर दिया, "तुम अभी बच्चे हो, तुम्हारी बुद्धि कच्ची है। तुम उद्दण्ड और उच्छृंखल भी हो। तुम्हें तो इस सभा में बुलाना भी नहीं चाहिए था। एक वानर तुम्हें नाकों चने चबवा गया। उसे पकड़ने के लिये तुम्हें ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना पड़ा। इतने से तुम्हारी आँखें खुल जानी चाहिये थीं। अब तुम किस मुँह से डींग हांकते हो?"

रावण बोला,"विभीषण, तुम शत्रु का पक्ष ले रहे हो। मेरे विचार में तुम्हीं हमारे सबसे बड़े शत्रु हो। तुम मुझसे जलते हो। तुम्हें मेरा राजा होना नहीं भाता। तुम जाति-बान्धव जो हो। जाति-बन्धु से बढ़कर शत्रु कौन हो सकता है? तुम कृतघ्न हो। छोटा भाई होने के कारण मैं तुम्हें कुछ नहीं कह रहा हूँ। और कोई होता तो अभी यमलोक पहुँच जाता। तुम्हें धिक्कार है जो तुम शत्रु का समर्थन और गुण-गान कर रहे हो।"

रावण के कठोर वचन सुनकर विभीषण तथा चार अन्य राक्षस आसन छोड़कर उठ खड़े हुए और सभा भवन से बाहर निकल गये। जाते-जाते विभीषण ने कहा, "आप मेरे बड़े भाई हैं, इसलिये पिता के समान हैं। आप चाहे जो कहिए। मैं तो यही कह सकता है कि आपके बुरे दिन आये हुए हैं जो आप अपने हित की बात नहीं सुनना चाहते।" इतना कहकर वे पाँचों समुद्र पारकर वानर सेना के पास पहुँचे। शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित इन पांच राक्षसों को आता देखकर सुग्रीव के मन में शंका हुई कि शत्रु पक्ष के ये लोग हमारा अहित करने आ रहे हैं।

उधर विभीषण ने सुग्रीव से कहा कि मैं लंकापति रावण का छोटा भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है। मैंने लंकेश्वर को बहुत समझाया कि परस्त्री का अपहरण पापकार्य है और आप सीता को लौटा दीजिए पर उसने मेरी बात नहीं मानी और भरी सभा में मुझे अपमानित किया। इसलिये मैं अपने स्त्री-पुत्रों को छोड़कर आपकी शरण आया हूँ। मेरे आगमन की सूचना तुरन्त शरणागत वत्सल श्रीराम को पहुँचाइए।

सुग्रीव श्रीराम के पास पहुँचे। विभीषण का सन्देश सुनाते हुए उन्होंने अपने मन की शंका भी प्रकट कर दी कि शत्रु पक्ष के ये लोग हमारा भेद लेने के लिये कपटपूर्ण आचरण कर रहे हैं। हमें इन पर विश्वास नहीं करना चाहिए। मुझे तो लगता है कि रावण ने ही इन्हें सिखा-पढ़ाकर भेजा है।

सुग्रीव के चुप होने पर श्रीराम ने पास बैठे प्रमुख वानरों से कहा कि सब लोग अपनी-अपनी सम्मति दें कि इनके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये।

अंगद, शरभ, जाम्बवान, मैन्द आदि वानर-प्रमुखों ने वानरेन्द्र सुग्रीव की बात का समर्थन किया पर वानर-वीर हनुमान ने कहा, "अभी जो सुझाव आये हैं, मेरा मत उनसे भिन्न है। विभीषण अपने दुष्ट बड़े भाई से अपमानित होकर यहाँ आया है। उसे पता है कि आपने वालि का वध करके सुग्रीव को राज्य दिलाया है। ठीक यही बात उसके मन में भी है। शत्रु-

पक्ष की पूरी जानकारी उसे है। इसलिये वह हमारा सहायक भी हो सकता है। उसके बात-चीत करने के ढंग से ऐसा नहीं लगता कि वह हमारे साथ छल करने आया है। किसीके मन में छिपे गूढ़भाव को जान लेना अत्यन्त कठिन कार्य है। आप जैसा उचित समझें करें।"

अब श्रीराम बोले, "मित्रो ! जो मित्रभाव से मेरे पास आया है, उसे अपनाना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। शरणागत चाहे दोषी भी हो तो भी उसे आश्रय देना निन्दित नहीं है।"

सुग्रीव बोले, "जो व्यक्ति संकट में पड़े हुए अपने भाई को छोड़ सकता है, वह और किसीसे क्या मित्रता निभायेगा ! वह तो किसीको भी छोड़ सकता।"

श्रीराम बोले, "मैं तो समझता हूँ कि रावण से विभीषण को भय उत्पन्न हो गया है, इसीलिए वह आया है। वह भाई को संकट में छोड़कर नहीं, अपने पर आये संकट से बचने के लिए आया है। विभीषण को हमें मारकर कुछ मिलने वाला नहीं है। हाँ, हमारा साथ देने पर उसे लाभ हो सकता है, इसलिए भी वह हमें लाभ ही पहुंचाने का प्रयत्न करेगा। इस बात का विचार न भी किया जाये तो भी शरणागत का परित्याग सर्वथा अनुचित है। मेरा प्रण है कि जो कोई भी यह कहेगा कि मैं तुम्हारा हूँ, मैं उसे अभयदान दूंगा। अतः मित्र ! आप जाकर उसे ले आइये।"

शरणागत-वत्सल श्रीराम के धर्म और नीति-युक्त वचन सुनकर सुग्रीव सन्तुष्ट होकर विभीषण को बुला लाये। श्रीराम उन्हें आगे बढ़कर मिले और सम्मान सहित ले आये। विभीषण और चार अन्य राक्षसों ने श्रीराम को प्रणाम किया और अपना परिचय दिया। विभीषण बोला, "मैं आपकी शरण में आया हूँ। मुझे अपनाने की कृपा करें।"

श्रीराम बोले, "विभीषण ! तुम लंकापति रावण की सारी सैन्य-शक्ति को जानते हो। मुझे उसका ठीक-ठीक परिचय दो ?"

विभीषण ने कहा, "रावण देवता, गन्धर्व आदि के लिये अवध्य है। केवल मानव ही उसे मार सकता है। हमारा मंझला भाई कुम्भकर्ण, सेनापति प्रहस्त, रावण-पुत्र मेघनाद ये सब महान् बलशाली और दुर्जेय योद्धा हैं। रावण ने देवताओं पर भी विजय पायी है, इसीसे आप उसकी शक्ति का अनुमान लगा सकते हैं।"

विभीषण की बात सुनकर श्रीराम बोले, "विभीषण ! मैं सच कहता हूँ कि देवताओं के लिये भी अजेय ससैन्य रावण को मारकर मैं तुम्हें लंका का राजा बनाऊंगा। मैं सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि रावण का वध किये बिना मैं अयोध्या को नहीं लौटूंगा।"

विभीषण ने कहा, "प्रभो ! लंका को जीतने में मैं आपकी यथाशक्ति सहायता करूंगा।"

श्रीराम ने लक्ष्मण को कहा, "लक्ष्मण ! तुरंत जाकर सागर का जल ले आओ और लंका के राज्य पर विभीषण का अभिषेक करो।"

आज्ञा मिलते ही लक्ष्मण सागर का जल ले आये और प्रमुख वानरों के समक्ष विभीषण का लंका के राज्य पर अभिषेक कर दिया।

फिर हनुमान और सुग्रीव आदि ने विभीषण से पूछा कि बताइये, हम सब समुद्र को कैसे पार करें ?

विभीषण ने कहा, "श्रीराम को समुद्र की शरण में जाना चाहिये। सागर की रचना श्रीराम के वंशजों ने ही की थी, इसलिये वह इनका कार्य अवश्य करेगा।"

सुग्रीव ने यही बात श्रीराम को बतायी। उन्हें भी यह ठीक लगी। श्रीराम समुद्रतट पर कुशा का आसन बिछाकर बैठ गये।

रावण का एक गुप्तचर था शार्दूल। उसने सागर तट पर डेरा डाले पड़ी हुई विशाल वानरसेना की सूचना लंका में रावण को पहुँचायी। उसने यह सुझाव भी दिया कि या तो सीता को लौटा दें या फिर सुग्रीव को अपनी ओर कर लें। यह भी न हो सके तो राम और सुग्रीव में फूट डलवा दें। कोई योग्य दूत भेजकर यह काम करवाइये। रावण ने शुक नामक दूत को, सुग्रीव को अपने पक्ष में करने के लिये भेजा। उसने सुग्रीव के पास जाकर रावण का सन्देश कह सुनाया। वह अभी कह ही रहा था कि वानरों ने उसे पकड़ लिया और नोचने-खसोटने लगे। श्रीराम ने बीच-बचाव करके उसे बचाया। वह दूत फिर सुग्रीव से पूछने लगा कि रावण के लिये आपका सन्देश क्या है ? तब सुग्रीव ने कहा, "तुम रावण से कह देना कि तुम न तो मेरे मित्र हो और न दया के पात्र। तुमने कभी मुझपर कोई उपकार भी नहीं किया है जो मैं उसका बदला चुकाऊं। तुम मेरे मित्र और उपकारी श्रीराम के शत्रु हो, इसलिये मेरे भी शत्रु हो। मेरी और तुम्हारी भेंट युद्ध स्थल में होगी।" वानरों ने फिर उसे पकड़ लिया और पीटने लगे। एक मुक्का मारता तो दूसरा थप्पड़, तीसरा बाल नोचता और चौथा टांग घसीटता। दूत फिर चिल्लाया तो श्रीराम ने वानरों को मारने से रोककर उसे बांध लेने को कहा।

श्रीराम तीन दिन तक सागरतट पर धरना दिये बैठे रहे पर सागर देवता नहीं पसीजे। अब तो श्रीराम को क्रोध आ गया। सीधी उँगलियों से घी निकलता न देख श्रीराम ने निश्चय किया कि मैं अपने बाणों से महासागर के भीतर रहने वाले समस्त जलचरों का संहार करूंगा और सागर को भी सुखा दूंगा। श्रीराम ने जब अपने बाणों से सागर को क्षुब्ध

कर दिया तब हाथ जोड़कर सागर तरंगों के बीच प्रकट हुआ। उसने कहा, "यह संभव नहीं है कि मेरा जल स्थिर और ठोस हो जाये और आपकी सेना उसपर चलकर उस पार चली जाये। हां, मैं आपको ऐसा उपाय बताता हूँ जिससे सारे वानर पार भी उतर जायें और जलचरों से उन्हें किसी प्रकार का भय भी उपस्थित न हो। साथ ही मेरे स्वभाव और मर्यादा की भी रक्षा हो।"

श्रीराम ने कहा, "ठीक है। पर यह बताओ कि धनुष पर चढ़े इस बाण को कहां फेंकूं ?"

समुद्र ने द्रुम कुल्य नामक प्रदेश में वह बाण फेंकने की प्रार्थना की। उस बाण के प्रभाव से वह समस्त प्रदेश मरुभूमि में परिणत हो गया। तदनन्तर सागर ने बताया, "आप की सेना में जो यह वानर-प्रमुख नल है, वह अपने पिता विश्वकर्मा की भांति ही शिल्पकर्म में अत्यन्त चतुर है। उसे कहिये, वह मेरे ऊपर सेतु का निर्माण करे। उस सेतु के ऊपर से सारी सेना पार चली जाएगी।" यह कहकर सागर अदृश्य हो गया। अब वानर-श्रेष्ठ नल ने उठकर श्रीराम से निवेदन किया, "रघुनाथ ! मैं अपने पिता द्वारा प्रदत्त शिल्प-विद्या के ज्ञान से सागर पर सेतु का निर्माण करूंगा। अतः आज से ही यह कार्य आरम्भ होना चाहिए। सारे वानर इस कार्य में मुझे सहयोग देंगे। मैं कुछ ही दिनों में इसे पूरा कर दूंगा और फिर हम सब सागर को पार करेंगे।"

फिर क्या था ! समस्त वानरसेना शिला और वृक्षों को ढो-ढोकर लाने लगी और कार्य होने लगा। पांच दिनों में पूरा सेतु बनकर तैयार हो गया। उस सेतु को देखकर ऐसा लगता था जैसे सागर को दो भागों में विभक्त कर दिया गया हो। सारी वानरसेना सेतु पर चलते हुए उस पार जा पहुंची। विभीषण ने सेतु की रक्षा के लिये कुछ वीर वानरों को नियुक्त कर दिया जिससे राक्षस उसे तोड़ने में सफल न हो सकें। सागर पार करके सेना ने पड़ाव डाल दिया। श्रीराम चाहते थे कि बिना विलम्ब किये लंका पर आक्रमण कर दिया जाये। उनके विचार को जानकर सुग्रीव ने समस्त सेना को अनेक समूहों में बांटा और मोर्चाबन्दी कर ली।

श्रीराम ने ऊंचाई पर अवस्थित लंकापुरी को देखा। ऊंचे भवनों और पताकाओं से सजी हुई वह नगरी बड़ी शोभाशालिनी थी। खाई और परकोटे से घिरी हुई वह शत्रुओं के लिये दुर्गम्य थी।

कौन-सी सेना किस वानर-वीर के नेतृत्व में किस स्थान पर खड़ी होगी, यह सारी व्यवस्था कर चुकने के बाद शुक नामक रावण के दूत को बन्धन-मुक्त करने की आज्ञा दी गई। शुक बन्धन-मुक्त होकर लंका में जा पहुँचा। वानरों की नोच-खसोट से उसकी दशा बिगड़ी हुई थी। उसने अपने ऊपर बीती बातें रावण को सुनाते हुए कहा, "महाराज ! उन्होंने सागर पर सेतु का निर्माण करके उसे भी पार कर लिया और अब वानर-सेना-सहित राम लंका के

तोरण द्वार पर आ पहुंचे हैं। अब तो आप दो में से एक काम कीजिए, या तो सीता को लौटा दीजिए या फिर चलकर उनसे युद्ध कीजिए। वैसे मेरे विचार में वानरों से हमारा मेल तो हो नहीं सकता। वे तो बिना बात काटने को दौड़ते हैं।''

रावण ने फिर डींग हांकना प्रारम्भ की। बोला, ''उनकी मौत ही उन्हें यहां घेर लाई है। अब समझो कि उनके दिन पूरे हुए। वे तो हैं ही क्या! सारे देवता भी उनकी सहायता को आ जायें तब भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।'' फिर रावण ने दो मंत्रियों को कहा, ''पता लगा है कि वानरों ने सागर पर सेतु बना लिया। मुझे इस बात पर विश्वास नहीं है। तुम दोनों स्वयं जाकर देखकर आओ। यह भी पता करके आना कि वानर-सेना कितनी है? कैसी है? बस, चुपचुप जाना जिससे किसीको पता न लगे। उन्होंने कैसी मोर्चा बन्दी की है, कौन-कौन किस-किस मोर्चे का सेनापति है? उसके अस्त्रशस्त्र क्या हैं? वे क्या करना चाहते हैं। इन सब बातों का पूरा पता लगाकर शीघ्र लौट आओ और मुझे बताओ।'' दोनों राक्षसों ने वानर का कपट-रूप बनाया और वानरसेना में जा घुसे। उस अथाह सेना का अनुमान वे नहीं लगा सके। जहां तक तक दृष्टि जाती थी,सेना ही सेना दिखाई देती थी। राक्षसों की माया को राक्षस ही पहचान सकते हैं। विभीषण ने उन दोनों को पहचान लिया और पकड़कर श्रीराम के पास ले गये। विभीषण ने श्रीराम को बताया कि ये दोनों रावण के मंत्री हैं और कपटवेष बनाकर हमारी सेना में घुस कर भेद ले रहे हैं। उन दोनों राक्षसों को लगा कि अब हमें जीवित नहीं छोड़ा जायेगा। वे भयभीत होकर बोल पड़े कि रावण ने भेजा है और हम जानकारी लेने आये हैं।

श्रीराम ने हंसते हुए कहा, ''यदि तुमने अपना काम पूरा कर लिया हो तो अपनी इच्छा-नुसार जा सकते हो। यदि कुछ देखना रह गया हो तो भी बताओ? विभीषण तुम्हें साथ ले जाकर दिखा देंगे?'' फिर उन्होंने विभीषण को उन्हें छोड़ देने की आज्ञा दी और दोनों राक्षसों को सम्बोधित करते हुए बोले, ''तुम रावण से कह देना कि जिस बलबूते पर तुम सीता को हर लाये थे, उसे दिखाने का अवसर आ गया है।''

दोनों मंत्रियों ने रावण को सारी बातें बता दीं और सम्मति दी की राम से सन्धि कर लेने में ही लाभ है।

पर रावण नहीं माना। बोला, ''लगता है, वानरों ने तुम्हें खूब तंग किया है जिससे तुम अपना साहस खो बैठे हो और अत्यन्त भयभीत हो। अच्छा चलो, इस ऊंचे महल की सब से ऊपर वाली छत पर चलकर मुझे व्यूह-रचना और प्रमुख यूथपतियों का परिचय दो।'' फिर वे तीनों महल की छत पर जा चढ़े और उनमें से एक—सारण उंगली के संकेत से दिखाने और यूथपतियों का परिचय देने लगा। वानर-सेनापतियों का परिचय देकर जब सारण चुप हो गया तो दूसरे ने सुग्रीव के मंत्रियों, श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण के बल-पराक्रम का विस्तृत परिचय दिया। उसने बताया कि वह जो दिखाई दे रहा है, वही हनुमान है। यही

है जिसने सबसे पहले समुद्र पार किया था और लंका को जला गया; था इसे तो आप कभी भूल ही नहीं सकते। उसने यह भी बताया कि श्रीराम ने विभीषण का लंका के राज्य पर अभिषेक कर दिया है और अब आपके भाई विभीषण उनकी सहायता कर रहे हैं और हमारी सारी बातें उन्होंने शत्रु पक्ष को बता दी हैं। राक्षसेन्द्र! अब आप कोई ऐसा उपाय कीजिए जिससे आपको विजय-श्री मिले और शत्रु-पक्ष का पराभव हो।

शुक और सारण द्वारा समस्त वानर यूथपतियों का परिचय प्राप्त करके तथा उनकी प्रशंसा सुनकर रावण तिलमिला उठा। शत्रुपक्ष की प्रशंसा उसे कहां सह्य थी! उसने शुक और सारण को फटकारते हुए उनके समस्त पद और अधिकार छीन लिये और आज्ञा दी कि मेरे सामने से हट जाओ और फिर कभी मुझे मुँह न दिखाना। वे दोनों चले गये तो पास बैठे महोदर को गुप्तचरों को बुला लाने के लिये रावण ने आज्ञा दी। गुप्तचरों के आ जाने पर उन्हें श्रीराम और वानर-सेना की गतिविधि जानने के लिए भेजा।

सुवेल पर्वत के निकट जाकर उन गुप्तचरों ने वहां की गतिविधि का निरीक्षण करना प्रारम्भ किया ही था कि वे विभिषण द्वारा पहचान लिए गए। वानरों ने उन्हें पीटना प्रारम्भ कर दिया पर श्रीराम ने उन्हें छुड़ाकर छोड़ दिया। वे वापस रावण के पास पहुँचे और बताया कि अनगिनत वानर सेना सुवेल पर्वत के निकट डेरा डाले पड़ी है। वहां की सुरक्षा-व्यवस्था इतनी उत्तम है कि भेद लेना बड़ा कठिन है। हमें विभिषण ने पहचान लिया और वानरों ने थप्पड़ों, मुक्कों, लातों और घूँसों से मार-मारकर हमें पीड़ित कर दिया। श्रीराम की कृपा से हमें मुक्ति मिली। वे लंका पर चढ़ाई करने के लिए आने वाले हैं। अब आप या तो सीताजी को लौटाने की व्यवस्था करें या युद्ध की तैयारी। सारी बातें सुनकर रावण को कुछ चिन्ता हुई। उसने तत्काल मंत्रियों की सभा बुलाई और उसमें गुप्त मंत्रणा की। फिर अन्तःपुर में जाकर महामायावी विद्युज्जिह्व को साथ लेकर अशोक वाटिका में प्रवेश किया। विद्युज्जिह्व ने अपनी माया से श्रीराम का कटा हुआ सिर बनाया। रावण तो सीताजी के पास चला गया और विद्युज्जिह्व को कह गया कि तुम सिर और धनुष-बाण लेकर कुछ देर बाद आना।

रावण ने सीताजी से जाकर कहा, "तू जिस राम के लिए मेरी बात नहीं मान रही है, वह बेचारा आज लड़ाई में मारा गया। तुमने सोचा था कि वह तुम्हें यहाँ से छुड़ा ले जाएगा। वह बात समाप्त हो गई। अब तुम स्वेच्छा से मेरी पत्नी बन जाओ।" फिर उसने एक राक्षसी को कहा कि जाकर विद्युज्जिह्व को बुला लाओ और उसे कहना कि राम का कटा सिर भी लेता आए, जिसे पहचान कर सीता को विश्वास हो जाए।

तब धनुष-बाण और श्रीराम का माया-निर्मित कटा मस्तक लेकर विद्युज्जिह्व आ उपस्थित हुआ। उस कटे सिर को विद्युज्जिह्व ने सीता के आगे रख दिया और धनुष-बाण को दिखाते हुए कहा कि यह उन्हीं का धनुष है जिसे हम उठा लाये हैं।

देवी सीता ने राक्षसी माया द्वारा रचित राम के सिर और धनुष को वास्तविक ही समझा। वे दहाड़ मारकर रो पड़ीं और दुःख से अचेत हो गईं। चेतना आने पर वे बिलख-बिलखकर हृदय-विदारक विलाप करने लगीं। इतने में वहां एक राक्षस आया और रावण से बोला कि प्रहस्त सब मंत्रियों के साथ आपके दर्शन करना चाहते हैं। कोई अत्यन्त आवश्यक राजकीय कार्य आ पड़ा है, अतः आप तुरन्त दर्शन देने की कृपा करें।

रावण अशोक वाटिका से चला गया। रावण के वहां से जाते ही वह सिर और धनुष वहां से अदृश्य हो गये। रावण ने मंत्रियों से मंत्रणा करके निश्चय किया कि तत्काल सारे नगर में ढोल बजाकर घोषणा कर दी जाए कि समस्त राक्षस शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर यहां पधारें। किन्तु उन्हें यहां बुलाने का कारण न बताया जाए।

डिंडिम घोष द्वारा सूचना पाकर समस्त राक्षस-सैनिक एकत्र हो गये। उधर सीता जी को शोक-संतप्त देखकर सरमा नाम की राक्षसी, जो कि सीता की रक्षिका थी और सखी बन गई थी, उनके पास आकर बोली, "सीते! धैर्य धारण करो। राम कुशलपूर्वक हैं। ये जो तुमने उनका सिर और धनुष देखा, ये सब माया द्वारा निर्मित थे, वास्तविक नहीं। श्रीराम वानर सेना के साथ समुद्र लांघकर इस ओर आ पहुँचे हैं। अब तुम्हारे दुर्दिन समाप्त होने वाले हैं। दोनों पक्षों में युद्ध होने वाला है। रावण इस समय बहुत भयभीत है। रावण की माता ने भी उसे कहा है कि सीता को लौटा दो पर वह किसीकी बात नहीं मान रहा है। वह प्राण रहते तुम्हें नहीं लौटायेगा।"

उधर सभा में रावण ने प्रमुख राक्षसों पर कटाक्ष करते हुए कहा, "आप लोगों ने राम के समुद्र लांघने और वीरता की जो बातें बताई हैं और जिन्हें जानकर आप एक-दूसरे का मुँह ताक रहे हैं, मैं समझता हूँ कि अब भी आप अपना पराक्रम दिखाने में कमी नहीं रखेंगे।"

बूढ़ा राक्षस माल्यवान जो कि रावण का नाना था, उसे समझाते हुए बोला, "राक्षस-राज! मेरी सम्मति है कि तुम राम से सन्धि कर लो। लंका में सब ओर अपशकुन हो रहे हैं। मुझे इस युद्ध में लंका का कल्याण नहीं दिखाई देता।"

माल्यवान की सत्य किन्तु अप्रिय बात सुनकर रावण की आंखें लाल हो गईं। वह बोला, "तुम या तो मुझसे मन-ही-मन शत्रुता रखते हो या शत्रु से मिले हुए हो। राम अपने समस्त मित्रों-सहित भी युद्ध में मेरे सामने नहीं ठहर सकता। मैं स्पष्ट बता देना चाहता हूँ कि मैं टूट जाऊंगा पर झुकूँगा नहीं। इसे मेरा दोष समझो या स्वभाव।"

फटकार सुनकर माल्यवान् सभा से उठकर चला गया। रावण ने मंत्रियों और सेना-पतियों से परामर्श करके लंका की सुरक्षा की व्यवस्था की। फिर सभा को विसर्जित कर न्तःपुर में चला गया।

उधर विभीषण ने अपने चार सचिवों को लंका में भेजकर वहाँ की सुरक्षा-व्यवस्था का पूरा-पूरा परिचय प्राप्त करके श्रीराम को बताया। उसी के अनुसार लंका के विभिन्न दिशा-द्वारों पर आक्रमण करने के लिए विभिन्न वानर यूथपतियों की नियुक्ति की। लक्ष्मणसहित श्रीराम ने वानरराज सुग्रीव, ऋक्षराज जाम्बवान् तथा विभीषण के साथ उत्तर द्वार से प्रवेश करके लंका के मध्यभाग पर जहाँ रावण स्वयं मोर्चा संभालने वाला था, आक्रमण करने का निश्चय किया।

फिर सारी सेना को कूच करने की आज्ञा दी गई। यह निश्चय हुआ कि आज की रात सुवेल पर्वत के ऊपर काटी जाए। वहाँ से लंका के भीतर की गतिविधियों का निरीक्षण करते हुए सभी वहाँ की शोभा देखकर चकित रह गये। श्रीराम और सुग्रीव सुवेल पर्वत के एक सबसे ऊंचे शिखर पर चढ़कर जब लंका को देख रहे थे तो एक सुविशाल ऊंचे प्रासाद की छत पर उन्होंने लंकापति रावण को बैठे देखा। रावण पर दृष्टि पड़ते ही कपिराज सुग्रीव उठ खड़े हुए और उछलकर रावण के प्रासाद की छत पर जा पहुंचे और रावण पर झपट पड़े। उन्होंने उसका मुकुट गिरा दिया और मल्लयुद्ध करने लगे। रावण ने सुग्रीव को उठाकर छत पर पटक दिया। फिर सुग्रीव ने रावण को पटका। दोनों योद्धा खून-पसीने से तर हो गये पर कोई भी हार मानने को तैयार नहीं था। दोनों ने खूब दाव-पेंच दिखाए। रावण को अच्छी तरह छकाकर कपिराज सुग्रीव फिर उछलते हुए श्रीराम के पास जा पहुँचे। रावण भौचक्का-सा खड़ा देखता रहा।

श्रीराम ने जब लौटे हुए क्षत-विक्षत सुग्रीव को देखा तो बोले, "मित्र! ऐसा दुस्साहस मत दिखाओ। आपस में विचार किये बिना ही आप रावण पर चढ़ दौड़े।"

उन्होंने वहाँ से नीचे उतरकर और एक बार फिर समस्त सैन्य-समूहों को उनका कर्त्तव्य बताते हुए लंका को चारों ओर से घेरने का आदेश दिया। वानर सेना टिड्डी दल की तरह लंका के चारों ओर फैल गई। फिर श्रीराम ने विभीषण के साथ विचार करके निश्चय किया कि एक बार फिर रावण को समझाने-बुझाने का प्रयत्न करना चाहिए। युद्ध का आश्रय अनिवार्य स्थिति में ही लेना चाहिए। निश्चय हुआ कि वालि-पुत्र अंगद को दूत बनाकर भेजा जाए। उसे समझा-बुझाकर लंका के भीतर राक्षसेन्द्र रावण के पास भेजा गया।

रावण राजभवन में मंत्रियों के बीच बैठा हुआ था। अपना परिचय देते हुए अंगद ने श्रीराम की कही हुई बातें ज्यों की त्यों सुना दीं। उसने कहा, "श्रीराम ने कहा है कि देवी सीता को सम्मानपूर्वक तुरन्त लौटा दो नहीं तो मेरे तीखे बाणों से मारे जाओगे और लंका का राज्य धर्मात्मा विभीषण को मिलेगा।"

रावण यह सुनकर क्रोध से जल उठा। उसने मंत्रियों को आज्ञा दी कि इस वानर को पकड़ो और मार डालो। राक्षस अंगद को पकड़कर ले चले कि तभी उनको अंगद ने

अपनी बाँहों के बीच दबोच लिया और उछलकर प्रासाद की छत पर जा चढ़ा। फिर उस छत पर ऐसी उछल-कूद मचाई कि छत गिर पड़ी। फिर उछलता-कूदता वापस श्रीराम के पास आ पहुँचा।

उधर राक्षसों ने रावण को सूचना दी कि वानर-सेना ने चारों ओर से लंका को घेर लिया है। तब उसने अपनी सेना को परकोटे से बाहर निकलकर युद्ध करने की आज्ञा दी। रणभेरी और नगाड़े बजाती हुई राक्षस-सेना रावण का जयघोष करती हुई द्वार खोलकर बाहर लड़ने के लिए निकल पड़ी। वानर-सेना तो पहले से ही आक्रमण कर रही थी। वानरों ने वृक्षों और शिलाओं से खाई को पाट दिया था और एक-दूसरे से आगे बढ़कर लड़ने की होड़ लगाते हुए परकोटे पर चढ़कर किलकारियाँ मार रहे थे। मारे कोलाहल के कुछ सुनाई नहीं देता था। उमड़-घुमड़कर बरसते-गरजते काले मेघों की तरह काली राक्षस-सेना शंख और भेरी बजाती मरण-नृत्य-सी करती चली। हाथियों के चिंघाड़ने, घोड़ों के हिनहिनाने, रथों के पहियों की घरघराहट—सबने मिलकर वातावरण को क्षुब्ध कर दिया। शस्त्रास्त्रों से सु-सज्जित राक्षस-सेना वानर-सेना पर टूट पड़ी। वानर पत्थर उठाकर फेंकते, वृक्षों की टहनियों से मारते, नखों और दांतों से काटते, थप्पड़ों, घूंसों और मुक्कों की वर्षा करते राक्षसों से लड़ने लगे। परकोटे पर खड़े राक्षस ऊपर चढ़े वानरों को शूलों और खड्गों से मारने काटने लगे। वानर भी परकोटे पर खड़े राक्षसों को खींचकर धक्का देकर नीचे गिराने लगे। दोनों पक्षों के हताहत सैनिकों के रक्त से युद्ध-भूमि लाल हो गई।

प्रमुख वानर-वीरों और राक्षस-वीरों में द्वन्द्व युद्ध होने लगा। अनेक राक्षसवीर वीर-गति को प्राप्त हुए और वानर-सेना का पलड़ा भारी रहा।

अग्निकेतु, दुर्जय, रश्मिकेतु, सुप्तघन और यज्ञकोप नामक राक्षस वीर मिलकर श्रीराम से लड़ रहे थे और उन्होंने अपने बाणों से श्रीराम को घायल कर दिया था, पर श्रीराम ने उन चारों को मार गिराया। राक्षसों पर युद्ध का उन्माद छाया हुआ था। वे प्राणों का मोह छोड़कर भयंकर युद्ध कर रहे थे। सांझ होने वाली थी। और राक्षस अधिक उत्साह दिखा रहे थे। सन्ध्याकाल में राक्षसों की शक्ति प्रबल हो जाती है। सूर्य अस्त हो गया किन्तु युद्ध बन्द नहीं हुआ। गहरे अंधेरे में भी मार-काट होती रही। इस रात्रि युद्ध में युवराज अंगद ने मेघनाद के घोड़ों और सारथी को मार डाला। इस विपन्न अवस्था में मेघनाद ने छिपकर प्राणों की रक्षा की। फिर मेघनाद छिपकर कूट युद्ध करने लगा और उसने अपने तीखे बाणों से श्रीराम-लक्ष्मण को घायल कर डाला। फिर उसने दोनों भाइयों को नागपाश द्वारा बांध डाला। मेघनाद अपनी राक्षसी माया के कारण श्रीराम-लक्ष्मण को दिखाई नहीं देता था। तब श्रीराम ने दस वानर-यूथपतियों को उसे खोजने का कार्य सौंपा। पर मेघनाद ने उन्हें भी घायल कर डाला और फिर श्रीराम-लक्ष्मण पर बाण-वर्षा करने लगा। वे दोनों मेघनाद के

बाणों से क्षत-विक्षत हो गए और बहते रक्त से नहा उठे। अधिक मात्रा में रक्त बह जाने से श्रीराम-लक्ष्मण में शिथिलता आ गई और युद्ध भूमि में गिर पड़े। वानर-सेना में हाहाकार मच गया। सुग्रीव और विभीषण भी वहीं आ पहुँचे। अब तक मेघनाद बाण-वर्षा बन्द करके अपने को विजयी समझ कर अदृश्य रूप से वहीं खड़ा था। विभीषण ने अपनी मायावी शक्ति से उसे देख लिया। मेघनाद छिपा-छिपा अपने बल का बखान करने लगा। फिर उसने वानर-यूथपतियों पर बाण-वर्षा करके उन्हें मारने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। राक्षस-सेना में विजय की उमंग और वानर-सेना में पराजय की-सी भावना व्याप्त हो गई। मेघनाद श्रीराम-लक्ष्मण को निश्चेष्ट, अचेत पड़ा देखकर यह सोचते हुए कि ये दोनों मर गये हैं, लंकापुरी में अपने महलों में चला गया।

श्रीराम-लक्ष्मण को यों पड़ा देखकर सुग्रीव धैर्य छोड़कर रोने लगे तो महात्मा विभीषण ने उन्हें समझाया और कहा कि यह समय घबराने का नहीं है। अपनी सेनाओं को संभालिए और उत्साहित कीजिए।

विभीषण के समझाने से सुग्रीव ने भागती हुई वानर-सेना को रोका और फिर युद्ध करने की प्रेरणा दी।

वानर वीर अचेत पड़े श्रीराम-लक्ष्मण को घेर कर उनकी सुरक्षा में व्यस्त थे। बिखरी और भयभीत वानर-सेना ने फिर से मोर्चे संभाल लिये थे।

उधर मेघनाद ने अपने पिता रावण को बताया कि मैं रणभूमि में श्रीराम-लक्ष्मण को मारकर आ रहा हूँ। रावण इस समाचार को सुनकर हर्ष के मारे उछल पड़ा और उसने मेघनाद का आलिंगन करते हुए उसकी शूर-वीरता की बड़ी प्रशंसा की।

लंकापति रावण ने सीता की सुरक्षा में नियुक्त राक्षसियों को बुलाकर कहा, "सीता से जाकर कहो कि मेघनाद ने राम और लक्ष्मण को युद्ध में मार डाला है। सीता को पुष्पक विमान पर बिठाकर युद्ध भूमि के ऊपर ले जाओ और कहो कि वह मरे पड़े उन दोनों को अपनी आँखों से देख ले।"

रावण की आज्ञा पाकर वे राक्षसियाँ सीता को पुष्पक विमान पर बिठाकर युद्ध भूमि के ऊपर ले गईं और अचेत पड़े श्रीराम-लक्ष्मण को दिखाया।

सीता ने रण-भूमि में वानर सेनाओं को उदास, हतोत्साह और अचेत पड़े श्रीराम-लक्ष्मण को चारों ओर से घेरकर आंसू बहाते देखा। राक्षस-सेनाएं मारे प्रसन्नता और उत्साह के खूब उछल-कूद रही थीं। रावण के कथन को अपनी आंखों से देखकर साध्वी सीता विलाप करने लगीं। विलाप करती सीता को धैर्य बन्धाते हुए त्रिजटा ने कहा, "देवि ! विषाद

न करो। तुम्हारा पति और देवर जीवित हैं।"

सीताजी ने त्रिजटा से कहा, "बहन ! भगवान् करे तुम्हारी कही हुई बात ही सत्य हो।" विमान फिर वापस लौट पड़ा और सीता जी को अशोक वाटिका में पहुंचा दिया।

कुछ समय बाद श्रीराम की मूर्छा टूटी। आँखें खोलते ही उन्होंने देखा कि लक्ष्मण लहु से लथपथ अचेत पड़ा है। फिर तो उनके दुःख का पारावार नहीं रहा। वे विलाप करते हुए बोले, "लक्ष्मण को खोकर यदि मुझे सीता मिल भी गई तो मैं क्या करूंगा ! अब तो मैं जीना भी नहीं चाहता। लक्ष्मण जैसा भाई मुझे सारी पृथ्वी पर दूसरा नहीं मिल सकता। मैं लक्ष्मण के बिना कदापि अयोध्या को नहीं लौटूंगा। मैं लक्ष्मण के बिना माताओं को मुंह कैसे दिखाऊंगा। जिस प्रकार वन आते समय लक्ष्मण मेरे पीछे-पीछे चला आया था उसी प्रकार मैं भी यमलोक में इसके पीछे-पीछे जाऊंगा। हाय ! मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी किये बिना मरूंगा। मैं धर्मात्मा विभीषण को लंका के राजसिंहासन पर नहीं बिठा सका। वानर-राज सुग्रीव ! अब आप-सेना सहित वापस लौट जाइये।"

श्रीराम को यों दीन-दुखियों की तरह विलाप करते देखकर सारी वानर-सेना रोने लगी। विभीषण सेनाओं की व्यवस्था करके गदा उठाये लौटकर आ रहे थे। उन्हें मेघनाद समझकर वानर सेना में भगदड़ मच गई।

सुग्रीव ने अंगद से पूछा कि सेना में भगदड़ क्यों मच गई ? इतने में धर्मात्मा विभीषण वहाँ आ पहुँचे। सुग्रीव समझ गये कि इनको मेघनाद समझकर ही वानर-सेना में भगदड़ मची है। उन्होंने जाम्बवान् से कहा कि वानरों को बताओ कि ये मेघनाद नहीं हमारे मित्र विभीषण हैं। उन्हें डरकर भागना नहीं चाहिए। जाम्बवान् के समझाने पर वानर-सेना सुस्थिर हो गई। सुग्रीव ने अपने श्वसुर सुषेण से कहा, "ज्यों ही श्रीराम-लक्ष्मण की चेतना लौटती है, आप उन्हें लेकर किष्किन्धा लौट जाइये। मैं यहाँ राक्षसेन्द्र को बन्धु-बान्धवों सहित नष्ट कर के ही वापस लौटूंगा।"

सुषेण ने कहा, "मेरी बात मानें तो सागर-तट पर स्थित चन्द्र और द्रोण नामक पर्वतों पर उगने वाली दो औषधियों को, वानर वीरों को भेजकर मंगाइये। इनमें एक का नाम है, संजीवकरणी और दूसरी का विशल्यकरणी।"

ये बातें हो ही रही थीं कि इतने में पक्षीराज गरुड़ आ गये। उनकी उपस्थिति मात्र से श्रीराम-लक्ष्मण नागपाश से मुक्त हो गये। उनके घाव भी भर गये और वे स्वस्थ होकर उठ खड़े हुए। श्रीराम ने उनके प्रति बड़ा कृतज्ञ भाव प्रकट किया। पक्षीराज गरुड़ श्रीराम की अनुमति लेकर तुरन्त लौट गये।

श्रीराम-लक्ष्मण के स्वस्थ होकर उठ खड़े होने से वानर सेना में हर्ष और उत्साह की लहर दौड़ गई। वानर-सेना युद्ध के लिए प्रस्तुत होकर गंभीर गर्जन करने लगी। वानर-सेना

का कोलाहल सुनकर रावण को चिन्ता हुई। उसने राक्षस वीरों को आज्ञा दी कि जाकर पता लगाओ कि राम-लक्ष्मण के मरने पर इस समय वानर-सेना को शोक में मग्न होना चाहिये था। इसके विपरीत वे प्रसन्नता से भरे हुए हैं तो इसका क्या कारण है?

आज्ञा पाकर राक्षसों ने पता लगाया कि राम-लक्ष्मण जीवित और स्वस्थ हैं। उन्हें यह जानकर बड़ा दुःख हुआ। यह अप्रिय समाचार उन्होंने रावण को कह सुनाया। राम-लक्ष्मण को नाग-पाश से मुक्त जानकर रावण के चेहरे पर जैसे कालिख पुत गई। उसे लगा कि इन्हें मारना मैं जितना सरल काम समझता था, उतना है नहीं। उसने सेनानायक धूम्राक्ष को आज्ञा दी कि तुम सेना लेकर जाओ और राम का वध करो।

आज्ञा पाते ही सेना लेकर धूम्राक्ष युद्ध के लिए चल पड़ा। वह पश्चिम द्वार से निकला, जहां कपिवर हनुमान मोर्चा संभाले हुए थे। राक्षसों और वानरों में फिर घोर युद्ध ठन गया। कितने ही राक्षस और वानर मर-कटकर गिरने लगे। धूम्राक्ष ने ऐसी मारकाट मचाई कि वानर-सेना भाग खड़ी हुई। अब पवन-पुत्र हनुमान का कोप बढ़ गया। उन्होंने एक भारी शिला उठाकर धूम्राक्ष के रथ पर दे मारी। धूम्राक्ष ने रथ से कूदकर अपने प्राण बचाये और गदा लेकर युद्ध करने लगा। उसका रथ और सारथी नष्ट हो चुके थे। अब हनुमान और धूम्राक्ष में युद्ध होने लगा। हनुमान ने एक पर्वत-शिखर धूम्राक्ष पर दे मारा। धूम्राक्ष उससे कुचलाकर मर गया।

धूम्राक्ष के युद्ध में मारे जाने का समाचार सुनकर रावण बहुत लाल-पीला हुआ। उसने वज्रदंष्ट्र नामक राक्षसवीर को सेना लेकर श्रीराम-लक्ष्मण से युद्ध करने भेजा। वज्रदंष्ट्र आज्ञा मिलते ही शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित सेना लेकर लड़ने चला। वह दक्षिण द्वार से निकला जहां का मोर्चा बालि-पुत्र अंगद संभाले हुए था। दोनों वीरों में घोर युद्ध होने लगा। दोनों कई बार गिरे और उठे। पर अन्त में अंगद ने तलवार के वार से वज्रदंष्ट्र का सिर काट डाला। राक्षस सेना भाग खड़ी हुई। वानर-सेना का उत्साह दूना हो गया और वह विजयी-उल्लास से उछलने-कूदने लगी।

वज्रदंष्ट्र के मारे जाने पर रावण ने वीर अकम्पन को युद्ध के लिए भेजा। युद्ध-स्थलों में भारी शोर मचा हुआ था। धूल उड़ने के कारण कुछ स्पष्ट दिखाई नहीं देता था। इसलिये वानर वानरों पर और राक्षस राक्षसों पर प्रहार कर बैठते थे। युद्ध भूमि रक्त से सनी हुई थी। जगह-जगह मृत वानर और राक्षस पड़े हुए थे। अकम्पन के प्रहारों से सेना में भगदड़ मच गई। भागती वानर-सेना को देखकर वानर वीर हनुमान अकम्पन से युद्ध करने लगा। अब वानर सेना फिर उत्साह से लड़ने लगी। अकम्पन ने अपने तीखे बाणों से हनुमान को भी घायल कर डाला। उसके शरीर से रक्त की धारा बह चली। क्रोध में भरे हनुमान ने एक वृक्ष उखाड़कर अकम्पन पर दे मारा जिससे कुचलकर वह राक्षस वीर मर गया। राक्षस-सेना

फिर भाग खड़ी हुई और लंका में घुस गई। भागते हुए राक्षसों में से कितनों ही को वानरों ने पकड़ लिया और घसीटने लगे।

अनेक राक्षस वीरों के वध का समाचार सुनकर रावण की चिन्ता बढ़ चली। उसने राक्षस सेनाओं के मोर्चों का निरीक्षण किया और सैनिकों में नया उत्साह भरने का प्रयत्न किया। फिर बलाध्यक्ष प्रहस्त के नेतृत्व में राक्षस सेना पूर्व द्वार से निकलकर वानरों से लड़ने लगी। प्रहस्त के सैनिकों ने वानर सेना में भारी मार-काट मचा दी। वानर वीर नील प्रहस्त के आक्रमण को रोकने के लिये आगे बढ़ा तो प्रहस्त ने नील को बाणों से बींधकर घायल कर दिया। जब नील ने एक वृक्ष फेंककर प्रहस्त के धनुष को तोड़ डाला तो वह मूसल लेकर लपका और नील के माथे पर प्रहार किया। माथा फटने से रक्त की धारा बह चली और नील की आंखों के आगे अंधकार छा गया। फिर संभलकर नील ने एक बड़ी शिला उठाकर प्रहस्त पर दे मारी जिससे वह पिसकर चकनाचूर हो गया। राक्षस सेना सेनापति प्रहस्त के मारे जाने से हतोत्साह होकर भाग खड़ी हुई और लंका में जा घुसी। नील ने प्रहस्त को मारने का सुखद समाचार श्रीराम को सुनाया तो उन्होंने उसे छाती से लगा लिया और इस अद्‌भुत पराक्रम की प्रशंसा करने लगे।

नील द्वारा प्रहस्त के मारे जाने का समाचार सुनकर रावण शोक से व्याकुल हो उठा। फिर कुछ स्वस्थ होकर उसने सेना के मुख्य अधिकारियों की सभा बुलाई और बोला, "मैं जिन्हें बहुत छोटा समझता था उन्हीं शत्रुओं ने मेरे सेनापति को मार डाला। अब मैं स्वयं युद्ध में भाग लूंगा। यह कहकर राक्षसेन्द्र रावण रथारूढ़ होकर सेना-सहित स्वयं युद्ध करने निकल पड़ा। मेघनाद, अतिकाय, महोदर, कुम्भ, निकुम्भ, नरान्तक आदि वीर राक्षस योद्धाओं से घिरा रावण दूसरे यमराज की तरह प्रतीत होता था। रावण के तेजोदीप्त मुख-मण्डल को देखकर श्रीराम भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। श्रीराम अपने शत्रु को सामने पाकर बड़े प्रसन्न थे। सीता-हरण का प्रतिशोध लेने के लिये उनकी भुजाएं फड़कने लगीं। लक्ष्मण भी उनके साथ रावण से युद्ध करने चले। रावण ने कुछ राक्षस वीरों को लंका के द्वारों और राजमार्गों की रक्षा के लिये नियुक्त किया। उसे भय था कि सब सैनिकों के युद्ध-भूमि में आ जाने से लंका को सैनिक-विहीन जानकर वानर-सेना कहीं भीतर घुसकर उत्पात न मचाने लगे। अब निश्चिन्त होकर लंकापति रावण शस्त्रास्त्रों से वानर-सेना का संहार करने लगा। रावण ने पहला प्रहार सुग्रीव पर किया और वे अचेत होकर गिर पड़े। वानर वीरों ने सुग्रीव को अचेत पड़ा देखकर कुपित हो एक साथ रावण पर आक्रमण कर दिया पर अकेले रावण ने सब के प्रहारों को व्यर्थ कर दिया। साथ ही वानर यूथपतियों को बड़ी बुरी तरह पीड़ित भी कर दिया। वानर-सेना मार खाकर त्राहि-त्राहि कर उठी। तब श्रीराम रावण से युद्ध करने के लिये आगे बढ़े और लक्ष्मण ने उनसे निवेदन किया कि मैं

अकेला ही रावण का संहार करने के लिये पर्याप्त हूँ। श्रीराम ने समझा-बुझाकर लक्ष्मण को रावण से युद्ध करने की आज्ञा दे दी। उधर हनुमान भी रावण को ललकार कर प्रहार करने दौड़े पर रावण ने उनकी छाती में ऐसे जोर का घूंसा मारा कि वे चक्कर खाकर गिर पड़े। थोड़ी देर बाद सम्भलकर हनुमान ने रावण को एक जोर का थप्पड़ मारा। जोरदार थप्पड़ खाकर रावण के पैर उखड़ गये पर वह शीघ्र ही संभल गया और हनुमान के बल की प्रशंसा करते हुए बोला कि तुम जैसे वीरों के साथ ही युद्ध करने में प्रसन्नता होती है। रावण ने फिर हनुमान के घूँसा जमाया और गिरा दिया। फिर वह यूथपति नील की ओर बढ़ा। नील ने अपने दाव-पेचों से जब रावण को बहुत दुःखी कर दिया तो उसने आग्नेयास्त्र का नील पर प्रहार कर दिया जिससे वह धरती पर आ गिरा। अब रावण ने लक्ष्मण से युद्ध ठान दिया। दोनों योद्धा बढ़-बढ़कर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। रावण ने अपने बाणों से लक्ष्मण को विचलित कर दिया। लक्ष्मण ने भी रावण के धनुष को काट डाला और बाण-वर्षा से रावण का सारा शरीर क्षत-विक्षत कर डाला। प्राण बचाने का कोई उपाय न देखकर रावण ने लक्ष्मण पर ब्रह्म शक्ति का प्रयोग कर दिया। बहुत प्रयत्न करने पर भी लक्ष्मण उस शक्ति को रोक नहीं सके। ब्रह्म शक्ति के प्रहार से लक्ष्मण गिर पड़े। तब रावण सहसा उनके पास पहुँचा और दोनों भुजाओं से लक्ष्मण को उठाने लगा पर पूरी शक्ति लगाने पर भी उठा न सका। इसी समय वीर हनुमान ने अकस्मात् रावण की छाती में वज्र जैसा एक मुक्का मारा। रावण मुक्के से धरती पर गिर पड़ा और धूल चाटने लगा। उसके मुँह और नाक से रक्त की धार बह चली। वह तड़पने और छटपटाने लगा। अवसर पाकर हनुमान ने लक्ष्मण को उठाया और श्रीराम के पास पहुँचा दिया। मूर्छा से जागकर रावण फिर बाण-वर्षा करने लगा। उधर लक्ष्मण के स्वस्थ होकर उठ बैठने पर श्रीराम रावण से युद्ध करने लगे। वीरवर हनुमान ने श्रीराम को अपने कन्धे पर बिठा लिया और युद्ध प्रारम्भ हो गया। रावण ने सबसे पहले श्रीराम का वाहन बने हनुमान पर प्रहार करना प्रारम्भ किया। श्रीराम ने अपने तीखे बाणों से रावण के रथ को नष्ट कर दिया और फिर उसकी छाती में तीखे बाण मारे। रावण का राजमुकुट धरती पर गिर पड़ा और निहत्था रावण जीवन से निराश हो गया। उसकी दयनीय दशा देखकर श्रीराम ने उसे युद्ध-स्थल से लौट जाने और पुनः शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर वापस आने के लिये कहा। रावण प्राण बचाकर खिसक गया।

श्रीराम-लक्ष्मण ने क्षत-विक्षत वानरों के शरीरों से बाण निकाले और उनकी सेवा चिकित्सा की व्यवस्था की।

मारे लज्जा के रावण की आँखें ऊपर नहीं उठ रही थीं। देवताओं को भी जीत लेने वाले लंकापति को आज एक मानव श्रीराम से मुंह की खानी पड़ी थी। उसने इस संकट काल में अपने भाई कुम्भकर्ण को जगाने की आज्ञा दी। अब उसे कुम्भकर्ण का ही भरोसा था।

राक्षसों का एक दल खाने-पीने की ढेर सारी सामग्री लेकर कुम्भकर्ण के पास पहुँचा और शंख-भेरी आदि बजाकर उसे जगाने का प्रयत्न करने लगा। कोई उसकी बांह पकड़कर जगाने लगा तो कोई कान के पास जोर-जोर से पुकारने लगा। पर कुम्भकर्ण पहले की ही तरह खुर्राटे भरता सोया पड़ा रहा। फिर उन्होंने उस विशालकाय राक्षस को मुक्के मारकर जगाने का प्रयत्न किया पर वह फिर भी नहीं जगा। सबने मिलकर घोर ध्वनि वाले वाद्य बजाए पर वह नहीं जगा, नहीं जगा। फिर तो राक्षसों ने उसके बाल खींचने और कान काटने प्रारम्भ किए कि वह ऐसे ही जाग जाए। फिर भी मोह-निन्द्रा में पड़ा वह राक्षस टस से मस नहीं हुआ। फिर उसे जगाने के लिये तोपें दागी गई पर फिर भी उसके कान में जूं नहीं रेंगी। तब उसके शरीर पर हाथियों का दल दौड़ाया गया। इतना प्रयत्न करने पर कुम्भकर्ण की नींद टूटी। वह अंगड़ाई और जंभाई लेकर उठ खड़ा हुआ। उसे जोर की भूख लगी हुई थी। खाने-पीने की सामग्री उसके लिए पहले से लाकर रख दी गई थी। कई पशुओं के मांस, घड़ों रक्त और सुरा को खा-पीकर जब वह तृप्त हो गया तो जगाने वाले राक्षस उसे प्रणाम करके घेरकर खड़े हो गये। कुम्भकर्ण ने विस्मय-पूर्वक अपने जगाये जाने का कारण पूछा। रावण के सचिव यूपाक्ष ने कहा, "हमें देवताओं की ओर से तो कोई भय नहीं है परन्तु एक मानव से भय हो रहा है। वानरों ने लंका को घेर लिया है और हमारे वीरों को यमलोक पहुँचा दिया है। लंकापति को हराकर दयापूर्वक छोड़ दिया है और लंकापुरी के भीतर लौट जाने को कहा है। राक्षसेन्द्र इस समय बड़े संकट में हैं?"

रावण की पराजय की बात सुनकर आश्चर्य से कुम्भकर्ण की आँखें फटी-सी रह गई। वह बोला, "राम-लक्ष्मण-सहित सारी वानर सेना को हराकर ही अब मैं लंकापति के दर्शन करूंगा।"

वीर महोदर ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "आप पहले लंकापति से मिल लीजिये। इसके बाद जो कुछ करना है उसका निश्चय कीजिए।"

कुम्भकर्ण रावण के पास पहुँचा। उसने रावण के चरणों में प्रणाम किया और पूछा कि कौन-सा ऐसा कार्य आ पड़ा है, जिसके लिए मुझे जगाया गया?

रावण बोला, "महाबली वीर! तुम सोये पड़े रहने के कारण नहीं जानते कि पिछले दिनों यहाँ क्या कुछ हुआ है। राम ने वानर-सेना-सहित समुद्र पार कर लिया है और लंका को घेरा हुआ है। हमारे सेनापति और बड़े-बड़े वीरों का उसने संहार कर दिया है। इस विपत्ति से हमें तुम्हीं बचा सकते हो। बस, इसलिए तुम्हें जगाया है।"

कुम्भकर्ण रावण की बात सुनकर ठहाका मारकर हंसा और बोला, "हमने तुम्हें पहले ही समझाया था कि दुष्कर्मों को छोड़ दो। पर तुम नहीं माने। तुमने न विभीषण की बात मानी और न मन्दोदरी की।"

छोटे भाई से उपदेश की बातें सुनकर रावण जल-भुन गया। बोला "मैंने तुम्हें उपदेश

देने के लिए नहीं बुलाया है। पहले क्या हुआ, इस समय उसकी चर्चा करने का क्या लाभ! जो बीत गई, सो बात गई। वीर पश्चात्ताप नहीं, पुरुषार्थ करते हैं। वही तुम भी करो। सिर पर से इस महान् संकट को टालने का उपाय करो।"

कुम्भकर्ण को रावण पर दया आई। उसने कहा, "चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारे शत्रुओं का समूल नाश करके ही दम लूँगा। मैं अभी राम-लक्ष्मण को यमलोक का मार्ग दिखाता हूँ। फिर तुम्हें यह वानर-सेना भागती नजर आएगी। राजन्! चिन्ता छोड़ो। खाओ, पियो और मौज मनाओ। मेरे रहते तुम्हें चिन्ता किस बात की है!"

महादेर नामक सचिव को कुम्भकर्ण का उपदेश देना और अकेले ही युद्ध करने की डींग हांकना बुरा लगा। उसकी बातों को काटते हुए महादेर ने कहा, "लंकापति ने जो कुछ किया, ठीक किया। राम को तुम अकेले ही जीत लोगे, यह बचकानी बात है। अब तक हमारे अनेक वीर मारे गए हैं, इसी से हमें उनके बल का अनुमान लगा लेना चाहिये।"

कुम्भकर्ण ने महादेर को डांट दिया। वह बोला, "मैंने जो कुछ कहा है, उसे आज करके दिखाऊंगा। गाल बजाने से क्या लाभ। तुम चाटुकार हो, राजा की हां में हां मिलाने वाले। तुम्हीं जैसे सलाहकारों से लंका चौपट हो रही है। तुम मित्र रूप में शत्रु हो। सेना मारी गई, कोष खाली हो गया। राजा और राजमंत्री ही शेष रह गये हैं। पर आज रणभूमि में इस हानि को लाभ में बदल डालूंगा।"

कुम्भकर्ण की बात सुनकर रावण खिल उठा। उसने कुम्भकर्ण का अभिनन्दन करके उसे युद्ध के लिये विदा किया।

भारी और तीखा शूल हाथ में लिये कुम्भकर्ण लंकापुरी से बाहर निकला। कुम्भकर्ण को देखते ही वानर-सेना में भगदड़ मच गयी। अंगद ने बड़ी कठिनाई से भागती वानर-सेना को रोका। उसने बताया कि राक्षस की यह विशाल काया वास्तविक न होकर माया द्वारा निर्मित है। इसलिये भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। वानरों ने कुम्भकर्ण पर वृक्षों और पत्थरों से आक्रमण किया पर इससे उस महाबली राक्षस का बाल भी बांका नहीं हुआ। वह वानर-सेना को बुरी तरह रौंदने लगा। सेना में फिर भगदड़ मच गयी। वे सिर पर पांव रखकर बिना पीछे देखते हुए, अपने ही साथियों को धकेलते-रौंदते भागने लगे। हड़बड़ी में भागते हुए कितने ही वानर समुद्र में डूब गये। कुछ पुल पर से वापस जाने लगे। अंगद ने भागती वानर-सेना को संभालने का बड़ा प्रयत्न किया। उसने कहा, "तुम भागकर जहाँ कहीं भी जाओगे, सुग्रीव की आज्ञा से पकड़ लिए जाओगे और अपमानित होकर मरोगे। इसलिये तुम्हारा हित इसी में है कि वीरों की तरह लड़ते हुए मरो। युद्ध में शत्रु को मारने पर और वीरता पूर्वक मरने पर यश के भागी बनोगे।"

भागते हुए वानरों ने कहा, "इस विकराल राक्षस से लड़ने का साहस हममें नहीं है। यों ही मौत के मुंह में जाने से लाभ ही क्या! हमें अपनी जान प्यारी है, इसलिये हम जा

रहे हैं।"

बालि कुमार अंगद ने किसी तरह समझा-बुझाकर उन्हें भागने से रोका। वानर-वीर मारेंगे या मरेंगे का निश्चय करके कुम्भकर्ण का सामना करने के लिये तैयार हो गये। हनुमान और द्विविद ने वृक्षों और शिलाओं की मार से राक्षस-सेना का खूब संहार किया। कुम्भकर्ण के नेतृत्व में राक्षस वीर भी बड़े उत्साह के साथ लड़ रहे थे। महाबली हनुमान कुम्भकर्ण का प्रतिरोध करने के लिये आगे बढ़े। उन्होंने कुम्भकर्ण पर एक शिला पटककर उसे घायल कर दिया। कुम्भकर्ण ने अपना तीखा भाला हनुमान की छाती में घोंप दिया। उससे छाती फट गयी और रक्त की धारा बहने लगी। रक्त-वमन करते हुए हनुमान पीड़ा के मारे आर्तनाद करने लगे। राक्षस-सेना में हर्ष और वानर-सेना में विषाद की लहर दौड़ गयी। वानर-सेना रणांगण से भाग खड़ी हुई। नील ने भागते वानरों को रोका और कुम्भकर्ण पर प्रहार किया पर व्यर्थ गया। ऋषभ, शरभ और गन्धमादन नामक वानर वीरों को कुम्भकर्ण ने धराशायी कर दिया। जंगल की आग की तरह कुम्भकर्ण वानर-सेना का नाश करने लगा। वानर-सेना हाहाकार करती हुई श्रीराम के पास पहुँची। कुम्भकर्ण को अंगद ने रोकने का प्रयास किया। कुम्भकर्ण के भाले के प्रहार को व्यर्थ करते हुए अंगद ने उसकी छाती पर एक ऐसा जोरदार घूंसा जमाया कि वह मूर्छित हो गया। फिर मूर्छा टूटने पर उसने दुगने क्रोध से प्रहार करके अंगद को मूर्छित कर दिया और सुग्रीव पर आक्रमण करने के लिये आगे बढ़ा। उसने सुग्रीव पर भाला फेंका जिसे हनुमान ने बीच में ही लपककर पकड़ लिया और तोड़ डाला। क्रुद्ध कुम्भकर्ण ने सुग्रीव के ऊपर एक पर्वत शिखर को फेंककर सुग्रीव को भी धराशायी कर दिया। फिर उसने सुग्रीव को उठाया और लेकर चल पड़ा। वह लंका में जा घुसा। मार्ग में ही सुग्रीव की मूर्छा भंग हो गयी। उन्होंने अपने तीखे दांतों से कुम्भकर्ण के नाक और कान काट डाले तथा नखों से पसलियों को फाड़ डाला। रक्त धाराएं बहाते और पीड़ा से कराहते कुम्भकर्ण ने सुग्रीव को ऊपर उछालकर धरती पर दे मारा। सुग्रीव तुरन्त उठकर भागे और बाहर आ पहुँचे। कुम्भकर्ण भी लौट आया और वानर-सेना पर टूट पड़ा। अब सुमित्रानन्दन लक्ष्मण कुम्भकर्ण से युद्ध करने लगे। लक्ष्मण की बाण-वर्षा से घिरे कुम्भकर्ण ने लक्ष्मण की वीरता की बड़ी सराहना की और कहा कि मुझे अनुमति दो कि मैं राम से युद्ध करूं। इस युद्ध का अन्त तभी होगा जब मैं राम को मार डालूंगा।

लक्ष्मण ने उसे संकेत से श्रीराम को दिखा दिया। श्रीराम पहले से ही युद्ध के लिये प्रस्तुत थे। दोनों में घोर युद्ध छिड़ गया। श्रीराम ने एक दिव्य अस्त्र चलाकर कुम्भकर्ण की दाहिनी भुजा जिसमें उसने मुगदर पकड़ा हुआ था काट डाली। मुगदर सहित उस बांह के नीचे कितने ही वानर दबकर मर गये। कुम्भकर्ण ने शेष बची एक ही भुजा से एक वृक्ष उखाड़ लिया और राम की ओर दौड़ा। श्रीराम ने बाण से उसकी दूसरी भुजा भी काट डाली। कुम्भकर्ण फिर भी नहीं रुका। वह श्रीराम पर टूट पड़ा। श्रीराम ने अर्ध-चन्द्राकार बाण

चलाकर उसके दोनों पैर भी काट डाले। फिर भी वह न मूर्छित हुआ और न रुका। तब श्रीराम ने एक बाण से उसका मस्तक ही काट डाला। राक्षस-सेना महाबली कुम्भकर्ण को मरा देखकर भय और विषाद से भाग चली। भगवान् राम भी ग्रहण-मुक्त सूर्य की भांति दमकते हुए पीछे लौट गये।

कुम्भकर्ण के वध का समाचार सुनकर रावण शोक से मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर सचेत होने पर रावण दुखी होकर विलाप करने लगा। रावण की दाहिनी भुजा-कुम्भकर्ण के मरने से सारी लंकापुरी श्रीराम के बल-पौरुष से भयाक्रान्त हो गयी। कुम्भकर्ण देवताओं के लिये भी अजेय था। वही दुर्धर्ष वीर श्रीराम के द्वारा मारा गया था।

रावण को रोते-कलपते देखकर त्रिशिरा आदि उसके पुत्रों ने उसे ढाढस बंधाया और तीनों लोकों के विजेता रावण को यों साधारण जन की तरह विलाप करने से रोका। त्रिशिरा ने कहा, "आप देव-सेना को पराजित कर चुके हैं। फिर राम को दण्ड देना कौन-सी बड़ी बात है! या फिर आप हमें आज्ञा दें, हम जाकर राम को परास्त करेंगे।"

त्रिशिरा, देवान्तक, नरान्तक और अतिकाय सभी रावण-पुत्र 'मैं राम से लड़ने जाऊंगा' यों कहते हुए वे अनुमति की प्रतीक्षा करने लगे। रावण ने उन्हें छाती से लगाकर आशीर्वाद दिया और युद्ध के लिये भेजा। उसने कुमारों की रक्षा के लिये अपने दो भाइयों महापार्श्व और महोदर को भेजा। अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित योद्धा रथारूढ़ होकर उत्साह के साथ युद्ध भूमि में पहुँचे। घमासान युद्ध प्रारम्भ हुआ और वीरगति प्राप्त राक्षसों और वानरों से युद्ध भूमि पट गयी। नरान्तक निर्भय होकर वानर-सेना में जा घुसा और मारकाट मचाने लगा। सुग्रीव ने इस स्थिति को देखते हुए कुमार अंगद को नरान्तक से युद्ध करने के लिये कहा। अंगद ने नरान्तक को ललकारा। नरान्तक ने अपना भाला अंगद की छाती पर दे मारा पर वह बिना घाव किये ही टूट गया। फिर अंगद ने नरान्तक के घोड़ों को मार डाला और नरान्तक ने अंगद के सिर में ऐसे जोर का मुक्का मारा कि सिर फूट गया, रक्त की धार बह चली और अंगद को मूर्छा आ गयी। चेतना लौटने पर क्रुद्ध अंगद ने नरान्तक की छाती पर एक प्राणान्तक मुक्का मारा जिससे नरान्तक सदा के लिये युद्ध-भूमि में सो गया।

भाई की मृत्यु का बदला लेने के लिए देवान्तक, महोदर और त्रिशिरा ने एक साथ अंगद पर आक्रमण कर दिया। अंगद को शत्रुवीरों से घिरा देखकर हनुमान और नील सहायता को दौड़े। हनुमान ने देवान्तक को और नील ने महोदर को मारकर फिर हनुमान ने त्रिशिरा का भी अन्त कर दिया। अब महापार्श्व शेष बचा था। वह कुपित होकर वानर सेना पर निर्भय प्रहार करने लगा। वानर यूथपति ऋषभ की छाती में तीखा भाला भौंक कर उसने मूर्च्छित कर दिया पर कुछ देर बाद ऋषभ के मुक्के से ही उसने प्राण त्याग दिये।

राक्षस वीर अतिकाय ने जब देखा कि मेरे भाई और चाचा वानर वीरों द्वारा मार गिराये गये हैं और राक्षस सेना अनाथ की तरह उत्साहहीन और दीन हो गई है तो वह युद्ध

वानर-सेना सुरक्षा-व्यवस्था को तोड़कर भीतर घुस सकती है। गुप्तचरों को भी वानर-सेना की गतिविधियों पर दृष्टि रखने और आवश्यक सूचनाएं देने का आदेश दिया। फिर वह आँसू बहाता अन्तःपुर में चला गया।

रावण-पुत्र मेघनाद ने शोकाभिभूत रावण को सान्त्वना देते हुए कहा, "महाराज! आप मेरे रहते किसी बात की चिन्ता न करें। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि मैं राम-लक्ष्मण को युद्ध में परास्त करूंगा। वे मेरे सामने दो घड़ी भी नहीं टिक सकेंगे। मैं आज ही उनका संहार करके आपको निश्चिन्त करूंगा।" इस प्रकार इन्द्रजित मेघनाद आज्ञा लेकर दिव्य और अमोघ अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध के लिए निकल पड़ा। उसके रणांगण में पहुंचते ही राक्षस-सेना चौगुने उत्साह से लड़ने लगी। उसने स्वयं अपने अस्त्र-शस्त्रों से वानर-सेना का संहार प्रारम्भ कर दिया। वानर-वीर क्षत-विक्षत होकर गिरने लगे और युद्ध के लिए उनका उत्साह समाप्त हो गया। उनकी विजय की आशा धूमिल हो गई। वानरों द्वारा वृक्षों और पत्थरों की जो वर्षा की जा रही थी, इन्द्रजीत मेघनाद उसको अपने बाणों से व्यर्थ कर डालता था। मेघनाद वानर-सेना को चीरता हुआ बढ़ा और श्रीराम-लक्ष्मण पर बाण-वर्षा करने लगा। अपनी मायावी शक्ति के कारण मेघनाद शत्रुओं को दिखाई नहीं देता था और ब्रह्मास्त्र का सहारा लेकर शत्रुओं पर प्राणघातक प्रहार करता था। श्रीराम-लक्ष्मण उसके बाणों को सहते हुए भी किंकर्त्तव्य विमूढ़ थे कि इस मायावी शत्रु पर प्रहार करें तो कैसे करें? अन्ततोगत्वा श्रीराम-लक्ष्मण को भी मूर्छित करके वह लंकापुरी को लौट गया। उसने अपने पिता रावण से अपनी विजय का समाचार सुनाया।

वानर-यूथपति श्रीराम-लक्ष्मण को अचेत पड़ा देखकर किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गए। इस आड़े समय में महात्मा विभीषण ने सबको समझाते हुए कहा, "आप सब श्रीराम-लक्ष्मण के लिए चिन्ता मत कीजिए। ब्रह्मास्त्र का सम्मान करते हुए इन्होंने मेघनाद के शस्त्रास्त्रों को अपने ऊपर सहा है, इसलिए ये विषाद-ग्रस्त हुए हैं।"

कपिवर हनुमान ने सुझाव दिया कि इस अस्त्र से घायल जो वानर-वीर अभी तक जीवित हैं, और रणभूमि में पड़े हैं, हमें उनके पास चलकर उन्हें आश्वस्त करना चाहिए। उनकी यह बात सुनकर हाथ में मशाल लेकर हनुमान और विभीषण रणभूमि में घूमने लगे। उन्होंने वहां सुग्रीव, अंगद, नील, शरभ, गन्धमादन, जाम्बवान, सुषेण, नल आदि वानर-प्रमुखों को घायल पड़ा देखा। वृद्ध जाम्बवान के पास जाकर जब विभीषण ने उनका कुशल पूछा तो वे बोले, "मैं आपको केवल स्वर से पहचान रहा हूँ। मुझे कुछ भी दिख नहीं रहा है।" उनसे बोला भी नहीं जाता था। किसी तरह जाम्बवान ने हनुमान की कुशलता के बारे में पूछा।

विभीषण को बड़ा आश्चर्य हुआ। जाम्बवान ने न श्रीराम-लक्ष्मण के बारे में पूछा और न सुग्रीव और अंगद के बारे में। उन्होंने जाम्बवान से इसका कारण पूछ ही लिया। जाम्बवान ने कहा, "यदि पवन-पुत्र हनुमान जीवित हैं तो समझिए कि हम मरकर भी जीवित

हैं। और यदि वह मर गए हैं तो हम जीकर भी मृत हैं।"

वृद्ध जाम्बवान के इतना कहते ही हनुमान ने उनके पांव छूकर प्रणाम किया।

जाम्बवान ने कहा, "वीरवर! अकेले तुम्हीं हो जो श्रीराम-लक्ष्मण सहित वानर-सेना को हर्ष प्रदान कर सकते हो। तुम वायु-वेग से हिमालय पर जाओ। वहाँ उसके ऋषभ-कैलास नामक शिखरों के बीच एक औषधियों से पूर्ण अन्य शिखर है। वहां दिव्य औषधियां तुम्हें चमकती हुई दिखाई देंगी। उनमें से तुम चार औषधियां ले आओ। उनके नाम हैं, मृत-संजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी, और सन्धानी। शीघ्र जाओ और इस कार्य का सम्पादन करो। इन औषधियों के आ जाने से सभी घायल वानर वीरों के प्राणों की रक्षा हो सकेगी। श्रीराम-लक्ष्मण भी स्वस्थ हो जाएंगे।"

महापराक्रमी हनुमान तत्काल एक ऊँचे पर्वत-शिखर पर चढ़कर आकाश मार्ग से उड़ चले। अपनी सर्पाकार पूंछ को ऊपर उठाकर, पीठ को भुकाकर, कानों को सिकोड़कर मुँह फैलाकर और अपनी भुजाओं को आगे की ओर और जंघाओं को पीछे की ओर फैलाकर वे वायुगति से हिमालय के अभीष्ट शिखर पर पहुँचे। वहां दीप्तिमती औषधियों को देखकर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। वह जाम्बवान की बताई चारों औषधियों को खोजने लगे। परन्तु वे दिव्य शक्ति-सम्पन्न औषधियां यह जानकर कि कोई हमें लेने आ रहा है, अदृश्य हो गईं। वीर हनुमान को अपना प्रयत्न विफल होते देखकर बड़ा क्रोध आया। सोच-विचार के लिए समय ही कहां था! उन्होंने उस पर्वत के शिखर को ही उखाड़ लिया और उठाकर गरुड़ के समान गति से लंका की ओर उड़ चले। उन्हें आता देखकर वानर वीरों में हर्ष छा गया। उन औषधियों की सुगन्ध से श्रीराम-लक्ष्मण स्वस्थ होकर उठ खड़े हुए। अन्य घायल वानर-वीर भी उन औषधियों के प्रभाव से स्वस्थ होकर ऐसे उठ खड़े हुए जैसे कोई रात भर सोकर प्रसन्नचित्त उठता है।

सारे वानर वीरों के घाव पुर जाने से वे पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गये। हनुमान ने उस पर्वत शिखर को पुनः हिमालय पर यथा-स्थान स्थापित कर दिया और वापस लौट आए।

तदनन्तर वानरेन्द्र सुग्रीव ने हनुमान से कहा, "कुम्भकर्ण मारा गया। रावण के अनेक पुत्र, भाई और सेनापति मारे गए। राक्षस-सेना का बहुत बड़ा भाग नष्ट हो चुका है। अतः अब लंकापुरी की सुरक्षा का प्रबन्ध करने में रावण असमर्थ है। इसलिए हमारे प्रमुख वानर वीर हाथों में जलती मशालें लेकर लंकापुरी पर धावा बोलें।"

सुग्रीव से आज्ञा पाकर सूर्यास्त होने पर वानर-वीर जलती मशालें लेकर लंकापुरी पर चढ़ दौड़े! उन्हें आता देखकर रक्षा के लिए नियुक्त राक्षस प्राण बचाकर भाग खड़े हुए। वानर-सेना को रोकने वाला कोई नहीं था। वह मनमाने घूम-घूमकर आग लगाने लगी। सत-मंजिले महल राख की ढेरी बन गए। हस्तिशालाओं, अश्वशालाओं और रथ-शालाओं को आग ने स्वाहा कर डाला। सारी लंका श्मशान भूमि की तरह धू-धू करके जल

उठीं। कुछ लोग स्त्रियों और बच्चों को लेकर भागने का प्रयत्न कर रहे थे। राक्षसपुरी में सर्वत्र हाहाकार मचा हुआ था। लंका में प्रवेश करने के मुख्य द्वार, धन-धान्य के भण्डार सभी कुछ जल रहा था। उस रात लंकापुरी खिले हुए पलाश वृक्ष की तरह रक्तिम दिखाई दे रही थी। जलती लंकापुरी का प्रतिबिम्ब समुद्र के जल में पड़ रहा था जिससे वह सागर जल लाल दिखाई दे रहा था। जो राक्षस भागने का प्रयत्न कर रहे थे, वानर-वीर उन्हें भी मार गिराते थे। लंकापुरी के लिए वह काल-रात्रि थी।

शेष बचे राक्षस-वीरों ने निश्चय किया कि हम वानरों से युद्ध करेंगे। उन्हें देख कपीन्द्र सुग्रीव ने वानरों को मोर्चे सम्भालने की आज्ञा दी और यह आज्ञा भी दी कि जो भी कोई युद्ध से मुंह मोड़ेगा उसे मार दिया जाएगा।

राक्षस-सेना के अस्त्र-शस्त्र आग के प्रकाश में विद्युत की तरह चमक रहे थे। रात्रि के अन्धकार में लड़ते वानर और राक्षस बड़े भयंकर दिखाई देते थे। इस रात युद्ध में युवराज अंगद ने कम्पन और प्रजंघ को, द्विविद ने शोणिताक्ष को, मैन्द ने यूपाक्ष को और सुग्रीव ने कुम्भ को मार गिराया।

कुम्भ को मरा देखकर उसके भाई निकुम्भ ने सुग्रीव पर रोषपूर्वक आक्रमण किया। सुग्रीव की सहायता के लिए महाबली हनुमान आगे बढ़े और निकुम्भ के सामने आ डटे। निकुम्भ ने हनुमान की छाती पर भाला दे मारा पर हनुमान उस वार को बचा गए। हनुमान ने भी उसकी कवच-युक्त छाती पर एक जोर का मुक्का मारा जिससे कवच टूट गया और छाती से रक्त बहने लगा पर वीर निकुम्भ बिना विचलित हुए डटा रहा। फिर निकुम्भ ने सहसा हनुमान को पकड़ लिया और अपहरण करके ले चला। निकुम्भ द्वारा ले जाए जाते समय हनुमान ने उसकी छाती पर फिर एक वज्रतुल्य घूंसा मारा जिससे वह राक्षस वीर तिलमिला उठा और अवसर पाकर हनुमान ने अपने को छुड़ा लिया। निकुम्भ को सम्भलने का अवसर दिए बिना हनुमान ने उसे धरती पर पटक दिया और ऊपर चढ़कर खूब रगड़ा। फिर तत्काल उसकी गर्दन पकड़कर मरोड़ डाली जिससे उसका प्राणान्त हो गया।

प्रतिदिन राक्षस-वीरों के मरने का समाचार सुनकर रावण की शोकाग्नि दिन-दिन बढ़ती जाती थी। चोट खाए सर्प की तरह वह फुंफकारता पर बदले में और चोट खाता! काल से प्रेरित उसकी बुद्धि फिर भी सन्मार्ग पर नहीं आती और वह हारते जुआरी की तरह शेष वीरों को दांव पर लगा देता। अब उसने खर के पुत्र मकराक्ष को वानर-सेना का सामना करने के लिए भेजा। राक्षस वीरों से घिरा मकराक्ष युद्धभूमि में पहुँचा और घमासान युद्ध करने लगा। राक्षस वीरों में बड़ा उत्साह था। वे एक-दूसरे से आगे बढ़-बढ़कर युद्ध कर रहे थे। इस युद्ध में राक्षस सेना का पलड़ा भारी था और वानर सेना का संहार हो रहा था। वानर-सेना में भगदड़ मचने लगी। स्थिति को देखते हुए श्रीराम आगे बढ़े और राक्षसों के आक्रमण को रोकने लगे। मकराक्ष ने श्रीराम को युद्ध के लिए ललकारा। उसने कहा,

"मेरी इच्छा है कि दोनों ओर की सेनाएं लड़ना छोड़कर मेरे और तुम्हारे द्वन्द युद्ध को देखें।" उसने राम को खुली चुनौती दी कि तुम जिस युद्ध-विद्या में अपने को अभ्यस्त समझते हो, उसी से मैं तुम्हारे साथ युद्ध करूंगा।

श्रीराम ने उसे डींग हांकना छोड़कर अपना पराक्रम दिखाने के लिए ललकारा तो उसने बाण-वर्षा करनी प्रारम्भ कर दी। मकराक्ष द्वारा छोड़े बाणों को श्रीराम और श्रीराम द्वारा छोड़े बाणों को मकराक्ष अनायास ही काट डालते थे। दोनों के शरीर बाणों से क्षत-विक्षत हो चुके थे। युद्ध का अन्त न होते देखकर श्रीराम ने एक बाण मारकर मकराक्ष के धनुष को ही काट डाला और फिर दूसरे बाणों से घोड़ों, सारथी और रथ को नष्ट कर दिया। मकराक्ष शूल हाथ में लेकर श्रीराम को मारने दौड़ा पर श्रीराम ने उसके फेंके शूल को अपने बाणों से काट डाला। अब तो निःशस्त्र मकराक्ष घूंसा तानकर मुष्टि-युद्ध के लिए लपका। श्रीराम ने भी आग्नेयास्त्र को धनुष पर चढ़ाया और मकराक्ष की छाती को लक्ष्य बनाकर छोड़ दिया। उल्का के समान प्रज्ज्वलित आग्नेयास्त्र ने मकराक्ष के लौह-कपाट जैसे वक्षस्थल को फाड़ डाला। खर-पुत्र मकराक्ष इस प्राणान्तक प्रहार से गिर पड़ा और मर गया। राक्षस सेना भाग खड़ी हुई और लंका में जा घुसी। वानर सेना पर्वताकार उस राक्षस वीर को मरा देखकर विजयोल्लास से भरी किलकारियां मारने लगी।

'मकराक्ष भी मारा गया'—यह दुःखद समाचार सुनकर रावण निराशा और क्रोध से दांत पीसने लगा। प्रतिदिन अपने अमित बल-विक्रमशाली सेनानायकों के वध का समाचार सुनते-सुनते रावण बड़ा चिन्तातुर था। पर उसका अभिमान उसे अपने पहले निर्णयों से पीछे नहीं हटने देता था। कभी-कभी उसे अपने किए पर पश्चात्ताप भी होता किन्तु उसका राक्षसी स्वभाव अपने हठ पर दृढ़ रहा। उसने अपने पुत्र इन्द्रजित मेघनाद को बुलाकर उस के युद्ध-कौशल और पूर्व प्रदर्शित पराक्रम की प्रशंसा करते हुए छल-बल से श्रीराम-लक्ष्मण सहित वानर-सेना के संहार की आज्ञा दी। देवराज इन्द्र को भी परास्त कर इन्द्रजित की पदवी प्राप्त करने वाले मेघनाद के अतिरिक्त अन्य कोई महान् योद्धा लंका में बचा भी नहीं था। लंकापति रावण अन्तिम निर्णायक युद्ध के लिये शेष था।

मेघनाद ने पिता की आज्ञा मानकर वहां से प्रस्थान किया। वह अपनी यज्ञशाला में जाकर विधिवत् अग्निहोत्र करने लगा। उसने यज्ञ द्वारा देव-दानवों को प्रसन्न किया। होम के समय उसे अनेक विजय-सूचक शकुन दिखाई दिये। इन शुभ शकुनों से अपनी विजय में आश्वस्त हो वह मायावी अन्तर्धान होने की शक्ति से सम्पन्न होकर, शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित रथ पर बैठा सूर्य की तरह प्रकाशमान् और शोभायमान् हो रहा था। वह युद्ध के लिये लंका से बाहर निकला। राम-लक्ष्मण को मारकर अपने पिता रावण के मनोरथ को पूर्ण करने का दृढ़ संकल्प मन में लिये वह युद्ध-भूमि में प्रविष्ट हुआ। अपने को मंत्रशक्ति से अदृश्य करके वह आकाश से श्रीराम-लक्ष्मण पर बाणों की वर्षा करने लगा। उस मायावी

को तो सब कुछ दिखाई देता था पर वह किसीको नहीं दिखाई देता था। श्रीराम-लक्ष्मण ने भी अपने दिव्य-अस्त्रों का उस पर प्रयोग किया पर उसका बाल भी बांका नहीं हुआ। एक भी बाण उस तक नहीं पहुंचा। मेघनाद ने अपने चारों ओर माया द्वारा घना धुंआ पैदाकर आकाश को ढक दिया। कुहरे से आच्छादित वह प्रतिपक्षी श्रीराम-लक्ष्मण के दृष्टिपथ में नहीं आता था। न तो उसके शस्त्रास्त्रों की टंकार सुनाई देती थी और न उसके रथ से कोई ध्वनि ही निकलती। शब्द-वेधी बाणों द्वारा भी उसे लक्ष्य नहीं बनाया जा सकता था। वह आंखों और कानों की पहुंच से परे था।

उसने अपने तीखे बाणों की मार से श्रीराम-लक्ष्मण को क्षत-विक्षत कर दिया। उनके शरीर से रक्त की धाराएं बहने लगीं और उनकी शक्ति निरन्तर क्षीण होती गयी। अपनी ओर आते बाणों की दिशा में श्रीराम-लक्ष्मण भी बाण-वर्षा कर रहे थे पर मायावी मेघनाद बार-बार अपनी स्थिति बदल लेता था और श्रीराम-लक्ष्मण को उसकी वास्तविक स्थिति का पता भी नहीं चलता था। पास-पास खड़े दो पुष्पित पलाश-वृक्षों की तरह श्रीराम-लक्ष्मण के रक्तरंजित शरीर बड़ी शोभा पा रहे थे। वानर-वीर मेघनाद के बाणों से मर-मरकर गिरते जा रहे थे। युद्ध भूमि शवों से भर गयी थी। वानर-वीर किंकर्त्तव्य विमूढ़ थे। उनके पत्थर और वृक्ष रूपी हथियार व्यर्थ हो गये थे। अपना शत्रु उन्हें दिखाई ही नहीं देता था। वे करें तो क्या करें!

सुमित्रानन्दन लक्ष्मण ने विवशता के इन क्षणों में खीझकर श्रीराम से कहा, "मैं समस्त राक्षसों के संहार के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना चाहता हूं।" श्रीराम ने उन्हें इसकी अनुमति नहीं दी। वे बोले, "एक राक्षस वीर के कारण समस्त राक्षसों पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना अनुचित है। हमें मेघनाद को मारने का प्रयत्न करना चाहिए।"

मंत्रशक्ति-सम्पन्न मेघनाद श्रीराम के मनोभाव को समझकर युद्ध रोककर लंकापुरी में लौट गया। भीतर जाकर भी उसका युद्धोत्साह मन्द नहीं पड़ा और वह लंका के पश्चिमी द्वार से निकलकर फिर युद्ध-भूमि में आ धमका। उस कपटाचारी ने श्रीराम को हतोत्साह करने के लिए मायावी सीता का निर्माण किया और उसे अपने रथ पर बिठाकर वह वानर सेना के बीच पहुँचा। उसने वानरों के समक्ष उस मायामयी सीता का वध करने का निश्चय किया ताकि वानर यह हृदयविदारक समाचार श्रीराम को जा सुनाएं और श्रीराम सीता को मरा जानकर चिन्ताकुल हो हतोत्साह हो जाएं।

मेघनाद को देखते ही वानर वीर क्रोध से भरे उस पर पत्थरों और वृक्षों की वर्षा करने लगे। पवन-पुत्र हनुमान आगे होकर वानर-सेना का नेतृत्व कर रहे थे। हनुमान ने मेघनाद के रथ में बैठी देवी सीता को देखा। वे एकदम क्षीण और मलिन दिखाई दे रही थीं। हनुमान ने उन्हें कुछ समय पहले भी देखा था। उन्होंने ध्यान से देखकर विश्वास कर लिया कि ये देवी सीता ही हैं। हनुमान प्रमुख वानर वीरों को साथ लेकर मेघनाद के रथ की

ओर बढ़ ही रहे थे कि मेघनाद ने म्यान से तलवार निकाल ली और सीता को केशों से पकड़ कर उनका सिर काटने को उद्यत हुआ। सीता 'हा राम ! हा राम !! पुकारने लगी और सब वानर वीरों के सामने मेघनाद उन्हें पीटने और घसीटने लगा। यह दुःखदायी दृश्य देखकर वीरवर हनुमान आंसू बहाने लगे। उन्होंने मेघनाद को खूब फटकारा और मेघनाद पर टूट पड़े। राक्षस-सेना ने वानर वीरों को रोकने का प्रयत्न किया।

मेघनाद ने हनुमान को सुनाते हुए कहा, "वानर ! श्रीराम-लक्ष्मण-सुग्रीव और तुम सब लोग जिस सीता के लिए लंका पर चढ़ आये हो, उसे मैं अभी तुम्हारे देखते-देखते मार डालूंगा। मैं तुम्हारा मनोरथ कभी पूरा नहीं होने दूंगा। सीता को मारकर ही मैं राम-लक्ष्मण सुग्रीव और विभीषण का वध करूंगा।" यह कहकर उसने सीता पर घातक प्रहार किया। कन्धे पर किये उस गहरे प्रहार से बाईं भुजा समेत सीता का सिर कटकर एक ओर गिर पड़ा। इतना कर चुकने पर मेघनाद ने हनुमान से कहा, "देख लो, मैंने तुम्हारे सामने ही सीता का वध कर दिया है। अब तुम्हारा युद्ध करना व्यर्थ है। युद्ध करके भी तुम क्या पाओगे ?"

वह कपटी अपने उद्देश्य में सफल हुआ। वानर-सेना में शोक की लहर दौड़ गई। वानर-सेना इन्द्रजित की मेघ-गर्जना सुनकर युद्ध से भाग खड़ी हुई। हनुमान ने उन्हें समझा-बुझाकर फिर युद्ध के लिए तैयार किया। सीता-वध से हनुमान का क्रोध भड़क उठा था। वे दावानल की तरह राक्षस-सेना का संहार करने लगे। मेघनाद के रथ पर हनुमान ने एक भारी शिला दे मारी पर सारथि ने रथ को मोड़ कर बचा लिया। वानरों के दुर्धर्ष आक्रमण से राक्षस-सेना क्षीण होने लगी।

मेघनाद ने आगे बढ़कर वानरों के आक्रमण को रोक दिया और प्रत्याक्रमण करके वानर सेना में मार-काट मचा दी।

अन्त में हनुमान ने वानर-वीरों को युद्ध बन्द करके लौट चलने का आदेश दिया। वह बोले, "वीरो ! श्रीराम के जिस मनोरथ को पूरा करने के लिए हम प्राणों का मोह छोड़कर लड़ रहे थे, वह देवी सीता मार डाली गयी हैं। हमें इसकी सूचना श्रीराम-सुग्रीव को देनी चाहिए। फिर वे जैसा कहेंगे, वैसा ही हम करेंगे।"

वानर-सेना को युद्ध-विमुख देखकर मेघनाद भी लंका को लौट पड़ा। वह अग्निहोत्र द्वारा निकुम्भिला देवी को प्रसन्न करने के लिए सीधा उसके मंदिर में पहुँचा। वहाँ अभिचार मंत्रों से आहुतियां देकर वह अपनी यज्ञशाला में पहुंचा और वहां भी हवन करके अग्नि देव को तृप्तकर उनकी प्रसन्नता प्राप्त की। उसने समस्त राक्षस-गणों के कल्याण के निमित्त विधिपूर्वक अग्निहोत्र किया।

उधर हनुमान के नेतृत्व में वानरों और राक्षसों में भयंकर युद्ध होता देखकर श्रीराम ने ऋक्षराज जाम्बवान् को सेना सहित जाकर हनुमान की सहायता करने के लिए भेजा। वे लंका के पश्चिम द्वार की ओर जहां युद्ध हो रहा था, जा ही रहे थे कि सेना-सहित हनुमान को लौटते

देखा। हनुमान ने जाम्बवान् को लौट चलने को कहा। हनुमान सेना सहित श्रीराम के पास पहुँचकर दुःखी होकर बोले, "प्रभो! हमारे देखते-देखते रावण-पुत्र मेघनाद ने रोती हुई सीता को तलवार के वार से मार डाला। उनकी मृत-देह को देखकर मेरा मन उद्विग्न हो गया है। इसलिए यह दुःखद समाचार आपको सुनाने आया हूँ।"

हनुमान की बात सुनकर श्रीराम जड़ से कटे हुए वृक्ष की तरह मूर्छित होकर गिर पड़े। वानर-वीर शीतल जल के छींटे देकर उन्हें सचेत करने का प्रयत्न करने लगे। भैया को मूर्छित देखकर लक्ष्मण भी शोक में डूब गये और उन्हें गोद में लिटाकर मूर्च्छा-भंग का प्रयत्न करने लगे।

लक्ष्मण श्रीराम को गोद में लिये विलाप कर रहे थे कि इतने में महात्मा विभीषण वहाँ आये। उन्हें श्रीराम के मूर्छित होने का कारण ज्ञात नहीं था। उनके पूछने पर आँसू बहाते हुए लक्ष्मण ने कहा, "सौम्य! हनुमान से यह सुनकर कि मेघनाद ने सीता जी का वध कर डाला है, ये मूर्छित हो गये हैं।"

अचेत पड़े श्रीराम को संबोधित करते हुए विभीषण ने कहा, "रघुनन्दन! हनुमान ने जो समाचार आपको सुनाया है, वह सत्य होते हुए भी असत्य है। मेघनाद बड़ा मायावी है। उसने सीता की मायामयी मूर्ति का निर्माण करके आपको शोक-सागर में डुबोने के लिए ही वानर-सेना के समक्ष उसका वध किया है। उस प्रपंची का प्रपंच सफल हुआ है। आपको हतोत्साह करने के लिए ही उसने यह सब किया है। आप उस कपटाचारी की इस कुटिल चाल को व्यर्थ करने के लिए स्वस्थ होकर उठ खड़े होइए। लंका का विनाश होता देखकर ही मेघनाद ने यह योजना बनाई है कि जिस सीता देवी के कारण लंका पर विपत्ति टूट पड़ी है, उनको मारने का नाटक रचकर आपको युद्ध से विमुख किया जा सके। मेघनाद इस समय निकुम्भिला के मन्दिर में होम कर रहा है। हमें इस समय उसके इस अनुष्ठान को पूरा नहीं होने देना चाहिए। यदि यह अनुष्ठान पूरा हो गया तो मेघनाद हमारे लिए अजेय हो जाएगा। मंत्रशक्ति से सम्पन्न मेघनाद का प्रतिकार करना असंभव है। विपत्ति में धैर्य धारण करना ही सत्पुरुषों का धर्म है। आप शोक को छोड़कर स्वस्थ होइए और महाबाहु लक्ष्मण सहित हमें मेघनाद के मंत्र-अनुष्ठान में विघ्न डालने के लिए जाने की आज्ञा दीजिए। लक्ष्मण मेघनाद को अधूरा होम छोड़कर उठ जाने के लिये विवश कर देंगे। बस, इतने से हमारा मनोरथ पूरा हो जाएगा। अब थोड़ी देर करने से भी महान् अनर्थ हो सकता है, इसलिए आप स्वस्थ हो उठिए।"

मूर्छावस्था से सचेत होते हुए श्रीराम ने विभीषण की बातों को पूरी स्पष्टता के साथ नहीं सुना। वे विभीषण से बोले, "महात्मा विभीषण! मैंने आपकी बातें ठीक-ठीक नहीं सुनी हैं, इसलिए मुझे दोबारा बताइये।"

विभीषण ने पूर्व कही बातें फिर कह सुनाईं। श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा, "शेष बची सेना

को लेकर और हनुमान जाम्बवान आदि यूथपतियों को लेकर लंका में घुस जाओ और रावण कुमार मेघनाद का वध कर डालो। ये महात्मा विभीषण उसके समस्त कपटाचरणों से परिचित हैं, ये भी तुम्हारे साथ जाएंगे।"

लक्ष्मण तत्काल तैयार होने लगे। उन्होंने कवच पहना, खड्ग लिया और दिव्यास्त्रों से पूर्ण तुणीर को कन्धे पर लटकाकर धनुष उठाकर चलने को उद्यत हुए। उन्होंने श्रीराम के चरण छूते हुए कहा, "आर्य! आज मैं इन्द्रशत्रु मेघनाद को काल के गाल में अवश्य पहुँचा दूंगा।"

वानर वीरों के साथ हनुमान, अंगद और विभीषण भी लक्ष्मण के पीछे चले। सेना का नेतृत्व वृद्ध जाम्बवान कर रहे थे। राक्षस-सेना भी मोर्चा सम्भाले खड़ी थी। लक्ष्मण निकुम्भिला मन्दिर में पहुँचकर एक ओर खड़े हो गये।

विभीषण ने लक्ष्मण को सम्मति दी, "सामने खड़ी राक्षस-सेना के साथ वानर-सेना युद्ध प्रारम्भ कर दे। आप भी इस व्यूह-रचना को तोड़कर मेघनाद तक पहुँचने का प्रयत्न करें। ऐसा युद्ध-कौशल दिखाएं कि मेघनाद होम पूरा न कर पाये।"

विभीषण की बात मानकर लक्ष्मण ने रावण-पुत्र को लक्ष्य बनाकर बाण बरसाने प्रारम्भ कर दिये। भालू और वानर भी राक्षस-सेना पर टूट पड़े। वानरों और राक्षसों में घमासान युद्ध छिड़ गया। लंकापुरी में हाहाकार मच गया। यह कोलाहल सुनकर, नष्ट होती राक्षस-सेना को बचाने के उद्देश्य से मेघनाद होम छोड़कर उठ खड़ा हुआ। होम में विघ्न पड़ने से उसका क्रोध भड़क उठा था। वह सुसज्जित रथ पर चढ़कर युद्ध करने लगा। राक्षस सेना में भी नया उत्साह भर गया। वीरवर हनुमान जैसे सिंह मृगों के झुंड पर टूट पड़ता है वैसे ही राक्षस-सेना पर टूट पड़े थे और बहुत पराक्रम दिखा रहे थे। राक्षसों ने मिलकर हनुमान को घेर लिया और सभी उन पर प्रहार करने लगे। पर सबके वार सहते और सब पर वार करते कपिवर हनुमान अविचल भाव से डटे रहे। यह देख मेघनाद ने सारथि को अपना रथ हनुमान के सामने ले जाने की आज्ञा दी। वहाँ पहुंचकर वह वीर हनुमान पर अपने समस्त शस्त्रास्त्रों से प्रहार करने लगा।

वीरवर हनुमान ने उसे ललकारते हुए कहा, "यदि दम है तो आओ और मेरे साथ मल्लयुद्ध करो।"

मेघनाद हनुमान की बात को अनसुना करके अपने तीखे बाणों से उनका वध करने का प्रयत्न करने लगा। हनुमान पर आते संकट को ताड़कर विभीषण ने लक्ष्मण को मेघनाद के वध के लिए प्रेरित किया।

महात्मा विभीषण धनुर्धारी लक्ष्मण को इस निकुम्भिला बरगद के पास, जहां मेघनाद भूत-बलि देकर युद्ध के लिये जाता था, ले गये। उन्होंने लक्ष्मण को बताया कि जब मेघनाद यहां आये तो उसके साथ युद्ध करें। लक्ष्मण वहां खड़े थे कि इतने में रथारूढ़

मेघनाद आ पहुँचा। लक्ष्मण ने उसे युद्ध के लिये ललकारा। मेघनाद ने देखा कि चाचा विभीषण भी पास खड़े हैं। उसे यह समझते देर नहीं लगी कि उन्होंने ही यह रहस्य की बात शत्रुओं को बताई है जिससे लक्ष्मण वहाँ आया है। उसने कहा, "चाचा! आप लंका में जन्मे और बढ़े। मेरे पिता के आप सगे भाई हैं। फिर भी आप मुझसे द्रोह क्यों कर रहे हैं? अपने कुटुम्ब, सम्बन्धियों और जाति का आपको कुछ भी ध्यान नहीं है। आपने स्वजन-द्रोह करके राक्षस कुल को कलंकित किया है। दूसरों की दासता स्वीकार करके आपने निन्दनीय कार्य किया है। स्वजन गुणहीन होते हुए भी दूसरों से श्रेष्ठ होते हैं। दूसरा-दूसरा ही होता है। शत्रुओं को लंका के रहस्य बताकर आपने देश-द्रोह का कार्य किया है।"

ये जली-कटी बातें सुनकर विभीषण ने अपने भतीजे को उत्तर दिया, "राक्षस कुल में जन्म लेकर भी मेरा स्वाभव राक्षसी नहीं है। क्रूर और नीच कर्मों में मेरी प्रवृत्ति नहीं है। फिर मुझे रावण ने ही घर से निकाला है। उसके लिये क्या यह उचित था! मैंने रावण के बुरे कर्मों का कभी समर्थन नहीं किया। उसने अपने ही पापाचरण से अपने विनाश को निमंत्रण दिया है। मैं पाप में भागीदार नहीं बनना चाहता। तू भी उद्दण्ड और मूर्ख है। अब अपने किये का फल भोग।"

युद्ध के लिये उद्यत राक्षस-कुमार ने लक्ष्मण को ललकारते हुए कहा, "लक्ष्मण! क्या तुम भूल गये कि मैंने पहले भी युद्ध में तुम दोनों भाइयों को धूल चटाई थी। मैं समझता हूँ कि आज तुम अवश्य ही काल के गाल में पहुँच जाओगे। जैसे आग रुई के ढेर को क्षण भर में जलाकर राख कर देती है, वैसे ही मैं तुम्हें सैन्य-सहित नष्ट कर दूँगा।"

लक्ष्मण ने उत्तर दिया, "यहाँ बातों से बात नहीं बनेगी। शूरवीर कहते नहीं, करके दिखाते हैं। छिपकर युद्ध करना वीरों का नहीं, चोरों का काम है। उस दिन तुमने यही किया था। बातें बनाना छोड़ो और मेरे साथ युद्ध करो।"

युद्ध प्रारम्भ हुआ। मेघनाद की बाण-वर्षा से सुमित्रानन्द लक्ष्मण क्षत विक्षत हो गये। चोट खाये विषधर की तरह लक्ष्मण ने मेघनाद की छाती में पांच बाण मारकर उसे घायल कर दिया। दोनों वीर एक-दूसरे पर विजय पाना चाहते थे। एक-दूसरे पर घातक प्रहार कर रहे थे। यह युद्ध रोमांचकारी था। न कोई हारता था, न कोई युद्ध से हटना चाहता था। दो सिंहों की तरह वे समान विक्रम दिखा रहे थे। लक्ष्मण ने कई संहारक बाणों से मेघनाद पर प्रहार किया। मेघनाद कुछ उदास, हतोत्साह दिखाई दिया। उचित अवसर जानकर विभीषण ने लक्ष्मण को मेघनाद का वध करने के लिए प्रेरित किया। लक्ष्मण के तीखे बाणों से मेघनाद मूर्च्छित हो गया। सचेत होने पर उसने लक्ष्मण, हनुमान और विभीषण तीनों पर घातक बाणों से प्रहार किये। प्रतिकार में लक्ष्मण ने मेघनाद का कवच तोड़ डाला। बदले में इन्द्रजित ने भी लक्ष्मण का कवच तोड़ डाला।

युद्ध का अन्त होते न देखकर विभीषण आगे बढ़े और वानर-सेना को उत्साहित करने

लगे। उन्होंने वानरों से कहा, "वानर-वीरो ! आपने महान् पराक्रमी राक्षस-वीरों का अन्त कर दिया है। अब तो बस, यह मेघनाद और सामने खड़ी थोड़ी-सी सेना बची है। मेघनाद मारा गया तो रावण अकेला रह जायेगा। उसे भी मरा ही समझिए। आपने अनगिनत वीरों का जो संहार किया है, वह कार्य समुद्र तरने जैसा महान् है। अब तो गाय के खुर के बराबर गड्ढे में एकत्र पानी जैसा यह मेघनाद बचा है। इसे भी शीघ्र पार कीजिए।

"मैं पुत्र समान इस भतीजे को अपने हाथों मारना नहीं चाहता। मारने का यत्न करता हूँ तो मेरी आँखें आँसुओं से भर जाती हैं। अतः लक्ष्मण ही इसका वध करें। आप सब उसकी सेना पर टूट पड़िए।"

लक्ष्मण ने मेघनाद के रथ के चारों काले घोड़ों को घायल कर डाला। फिर सारथि का सिर धड़ से अलग कर दिया। अब मेघनाद सारथि का कार्य भी स्वयं करने लगा। मेघनाद द्वारा युद्ध और रथ-संचालन का कार्य एक साथ करने से लक्ष्मण को बड़ा अच्छा अवसर मिल गया। उन्होंने मेघनाद को क्षत-विक्षत कर डाला। उसका उत्साह मन्द पड़ गया। प्रहार रोकने में उसे कठिनाई होने लगी। उधर चार प्रमुख वानर-वीर मेघनाद के रथ के घोड़ों पर जा चढ़े और घूँसों से उन्हें मारने लगे। इस मार से घोड़े रक्त वमन करने लगे और गिरकर मर गये। फिर तो वानर-वीरों ने रथ को भी तोड़-मरोड़ डाला।

अब मेघनाद भी भूमि पर खड़ा होकर युद्ध करने लगा। उसने राक्षसों का उत्साह बढ़ाते हुए कहा कि तुम वानर-सेना का सामना करो। मैं लंका में जाकर दूसरा रथ लेकर आता हूँ। यों कह वह लंका में चला गया। शीघ्र ही वह रथारूढ़ होकर युद्ध भूमि में आ पहुँचा। उसकी इस त्वरा को देखकर लक्ष्मण आदि को बड़ा आश्चर्य हुआ। मेघनाद नये शस्त्रास्त्रों से युद्ध करने लगा। वानर वीरों को मारकर उसने युद्ध भूमि को लाशों से पाट दिया। शेष बची वानर-सेना त्राण पाने के लिये लक्ष्मण के पास गई। लक्ष्मण का वीरोचित दर्प जागा। उन्होंने बाण मारकर मेघनाद के धनुष को काट डाला। उसने दूसरा धनुष उठाया तो उसे भी काट डाला। इन्द्रजित ने तीसरा धनुष लेकर युद्ध प्रारम्भ किया। लक्ष्मण ने मेघनाद को घायल कर डाला था, पर फिर भी वह डटा हुआ था। लक्ष्मण ने नये सारथि का सिर भी उड़ा दिया। विभीषण ने गदा-प्रहार से इन्द्रजित के चारों घोड़ों को मार डाला। मेघनाद रथ के नीचे कूद पड़ा और चाचा विभीषण पर शक्ति-प्रहार किया।

लक्ष्मण और मेघनाद एक-दूसरे द्वारा चलाये अस्त्रों को उनके प्रतिकारक अस्त्र चला कर व्यर्थ करने लगे।

अन्त में लक्ष्मण ने ऐन्द्रास्त्र को धनुष पर रखा और रावण-पुत्र के वध की कामना से उसे कान तक खींचकर छोड़ दिया। धनुष के छूटते ही उस अस्त्र ने मेघनाद के शिरस्त्राण सहित मस्तक को काटकर धरती पर गिरा दिया। इन्द्रजित के मरने का समाचार पाकर राक्षस-सेना हताश हो गई और वानर-सेना में उत्साह भर गया। राक्षस-सेना भाग खड़ी हुई।

विभीषण, हनुमान, जाम्बवान आदि यूथपति देवजयी मेघनाद को परास्त करने वाले सुमित्रा-कुमार लक्ष्मण का अभिनन्दन और उनके पराक्रम की प्रशंसा करने लगे। फिर वे श्रीराम के पास आए और उनके चरणों में प्रणाम करके खड़े हो गए। विभीषण ने बताया कि महात्मा लक्ष्मण ने मेघनाद के वध का महान् कार्य सम्पन्न कर दिया है। श्रीराम ने इस प्रचण्ड पराक्रम के लिए लक्ष्मण की सराहना की और बोले, "हम युद्ध में विजयी हुए हैं।"

लक्ष्मण का शरीर बाणों से क्षत-विक्षत हो चुका था। उन्हें बड़ा कष्ट हो रहा था पर मेघनाद के वध की प्रसन्नता से वे अपने कष्ट को मान नहीं रहे थे। श्रीराम ने सुषेण को उनके घावों की चिकित्सा करने को कहा। अन्य घायल वीर-वानरों और विभीषण की चिकित्सा के लिए भी सुषेण से कहा। सुषेण ने सबको चिकित्सा करके स्वस्थ कर दिया।

उधर रावण के मंत्रियों को जब इन्द्रजित के वध का समाचार मिला तो उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ। वे स्वयं युद्ध स्थल में गये और मेघनाद को मरा पड़ा देखा तो यह हृदय विदारक समाचार रावण को बताया। इन्द्र को जीतने वाले अपने पुत्र के वध का समाचार सुनकर लंकापति रावण को मूर्च्छा आ गई। फिर चेतना आने पर रावण मेघनाद के पूर्व पराक्रमों को स्मरण करके विलाप करने लगा। वह बोला, "शत्रुओं को रुलाने वाले पुत्र! अपनी मां को, मुझे और अपनी पत्नी को छोड़कर तुम कहाँ चले गए? मैं मर जाता और तुम जीते रहते तो मुझे प्रसन्नता होती। तुम मेरा संस्कार करते। पर यह तो उलटा हो गया। अब तो मुझे ही तुम्हारा संस्कार करना पड़ेगा। पुत्र! मेरे शत्रु राम-लक्ष्मण और सुग्रीव तो अभी तक जीवित हैं। तुमने उन्हें मार डालने का प्रण किया था। फिर उन्हें बिना मारे ही तुम कहाँ चले गये?"

रावण को अपने शत्रुओं पर बड़ा क्रोध आया। उसने निश्चय किया कि मैं सीता का वध करूंगा। मेघनाद ने माया निर्मित सीता का वध किया था। मैं उस झूठ को आज सत्य करके दिखाऊंगा। उसने चमचमाती तलवार हाथ में ली और मंत्रियों तथा पत्नी से घिरा हुआ आगे बढ़ा। वह अशोक वाटिका की ओर चला जहाँ सीता का वास था। वह तलवार ताने सीता की ओर दौड़ा। मंत्री उसे रोकने का प्रयत्न करने लगे। सीता ने क्रोध की आग में जलते हुए रावण को तलवार ताने वध के लिये अपनी ओर आते देखा तो वे भयभीत हो गईं।

रावण के मंत्री सुपार्श्व ने रावण से कहा, "महाराज! एक अबला नारी का वध करके आपको कोई यश नहीं मिलेगा। यह तो अधर्म है। आइए! हमारे साथ युद्ध भूमि में चलिए और शत्रु राम पर अपना पराक्रम दिखाइये। वीर अपना क्रोध वीरों पर ही उतारते हैं।" रावण पर सुपार्श्व के नीतियुक्त वचनों का प्रभाव पड़ा। वह सीता के वध का विचार छोड़कर महलों में लौट आया। आते ही उसने राजसभा बुलाई। उसने राक्षस वीरों को सम्बोधित करते हुए कहा, "वीरो! तुम सब के सब रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकों सहित युद्ध के लिये निकल पड़ो और राम को घेर लो। हम सब सेना सहित राम का नाश करके

दम लेंगे।"

आज्ञा पाकर समस्त राक्षस मरणान्तक युद्ध के लिये निकल पड़े। घोर युद्ध छिड़ गया। दोनों पक्ष प्राणों का मोह छोड़कर लड़ने लगे। रणभूमि में खून की नदियां बह चलीं और उसमें लाशें तैरने लगीं। एक-एक राक्षस पर सौ-सौ वानर टूट पड़ते थे। राक्षस भी वानर सेना में मार-काट मचा रहे थे। निहत्थे वानर दांतों से राक्षसों को काटते, पत्थरों की वर्षा करते और थप्पड़ों-मुक्कों से मार-मारकर बेहाल कर देते। पर राक्षसों के शस्त्रों के सामने उन्हें टिकना कठिन हो गया और वे भागकर श्रीराम के पास जा पहुँचे। श्रीराम तुरन्त राक्षसों के भयंकर आक्रमण को रोकने के लिये युद्ध में कूद पड़े। श्रीराम की बाण-वर्षा से युद्ध का पासा पलट गया। राक्षस सेना में हाहाकार मचने लगा। वीर राक्षस कट-कटकर गिरने लगे। राक्षस सेना में भगदड़ मच गई। शेष बचे राक्षस भागकर लंका में जा घुसे। जिन राक्षसियों के पति, पुत्र और भाई मारे गये थे वे करुण विलाप करती हुई शूर्पणखा को कोसने लगीं, जिसने वैर का बीज बोकर और रावण को उकसाकर लंका पर विपत्ति ला खड़ी कर दी थी। वे बोलीं, "धर्मात्मा विभीषण की नीतियुक्त बातें न मानने से ही आज लंका राक्षस-विहीन हो रही है। यह सीता जब से लंका में आई है, तब से ही लंका पर काल की छाया पड़ी हुई है।"

इस प्रकार राक्षसियां विलाप करती हुई रावण को कोसने लगीं।

राक्षसियों का करुण चीत्कार रावण ने भी सुना। लम्बा सांस खींचकर वह चिन्तामग्न कुछ सोचता रहा। उसका वीर दर्प जागा और चिन्ता का स्थान क्रोध ने ले लिया। वह बड़ा डरावना दिखने लगा। किसीसे उसकी ओर नजर भरकर देखा तक नहीं जाता था। उसने महोदर, महापार्श्व और विरूपाक्ष को सेना-सहित युद्ध के लिये कूच करने की आज्ञा दी। आज्ञा मिलते ही वे स्वस्ति वाचन का पाठ करके युद्ध के लिये निकल पड़े। रावण ने सिंह-गर्जना करते हुए कहा कि आज मैं राम-लक्ष्मण और सुग्रीव को यमलोक पहुंचाकर ही लौटूंगा। मैं आज अपने भाइयों और पुत्रों के वध का बदला लूंगा। आज राम और लक्ष्मण के वध का समाचार सुनकर राक्षसियां अपना सारा दुःख भूल जाएंगी। विशेष रूप से सजे हुए और शस्त्रास्त्रों से भरे रथ पर आरूढ़ होकर लंकापति रावण युद्ध के लिये निकल पड़ा। रण-वाद्य बजने लगे। वीर राक्षस सिंह-गर्जना करते हुए रावण के रथ के पीछे-पीछे चलने लगे। वह सीधा श्रीराम-लक्ष्मण के पास पहुँचा। मार्ग में अनेक अशुभ-सूचक शकुन हुए पर रावण ने इसकी रत्ती भर भी परवाह नहीं की। उसके रथ के घोड़े समतल मार्ग में भी बार-बार रपट जाते। रथ के ऊपर गीध मंडराते और बाईं भुजा बार-बार फड़क उठती।

राक्षसों और वानरों में भयंकर युद्ध ठन गया। भला रावण जैसे दुर्धर्ष योद्धा के सामने वानर सेना कहां टिकती! वानर वीरों की लाशों से युद्ध-भूमि पट गई। राक्षस सेना दूने उत्साह से लड़ रही थी। रावण जिस ओर मुँह करता, वानर-सेना में भगदड़ मच जाती। सुग्रीव ने

भागती वानर-सेना को देखा तो स्वयं मोर्चे पर जा डटा। सुषेण नामक वानर यूथपति ने भागते वानरों को रोका। वानर-राज सुग्रीव ने पत्थरों की मार से राक्षसों का कचूमर निकाल दिया। विरूपाक्ष नामक राक्षस सेनापति सुग्रीव का सामना करने के लिये आगे बढ़ा। वह हाथी पर चढ़कर युद्ध कर रहा था। सुग्रीव ने सबसे पहले हाथी पर ही प्रहार किया। वह चोट खाकर पीछे हट गया और बैठ गया। विरूपाक्ष हाथी से कूदकर ढाल तलवार लेकर सुग्रीव पर झपटा। सुग्रीव ने एक भारी शिला उस पर दे मारी पर उसने पैंतरा बदल लिया और बचकर सुग्रीव पर एक जोर का तलवार का वार कर दिया। सुग्रीव घायल होकर गिर पड़ा पर कुछ ही क्षणों बाद खड़ा हो गया और उछलकर विरूपाक्ष की छाती में जोर का मुक्का मारा। विरूपाक्ष फिर भी अविचल युद्ध करता रहा। सुग्रीव के वार खाली जा रहे थे, इसलिये उसे बड़ा क्रोध आया। क्रोध से भरे सुग्रीव ने विरूपाक्ष के माथे पर वज्र जैसे मुक्के का प्रहार किया जिससे वह चक्कर खाकर गिर पड़ा। उसके नाक और मुंह से रक्त बहने लगा। विरूपाक्ष एक बार जो गिरा तो फिर उठ नहीं सका और वहीं ढेर हो गया।

राक्षसेन्द्र रावण ने महोदर को मोर्चा संभालने की आज्ञा दी। महोदर ने बची-खुची राक्षस-सेना के साथ वानर-सेना पर आक्रमण कर दिया। वानर कट-कटकर गिरने लगे। राक्षस शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित थे और वानरों के हथियार थे पत्थर और वृक्ष। महोदर की मार-काट से वानरों में भय छा गया और वे युद्ध से भाग खड़े हुए। सुग्रीव ने फिर मोर्चा संभाला। सुग्रीव ने महोदर के घोड़ों को शिलाएं पटककर मार डाला। महोदर टूटे रथ से नीचे कूद पड़ा और गदा लेकर सुग्रीव पर प्रहार करने को उद्यत हुआ। सुग्रीव ने युद्ध भूमि में पड़े एक मूसल को उठाकर गदा प्रहार को रोक लिया। पर आपस में टकराने से गदा और मूसल दोनों टूट गये। फिर तो दोनों में मल्लयुद्ध होने लगा। अन्त में सुग्रीव ने महोदर को मार गिराया।

महोदर को मरा पड़ा देखकर महापार्श्व क्रोध से आग-बबूला होकर सुग्रीव पर झपटा। इसी समय अंगद ने आगे बढ़कर मोर्चा संभाल लिया। अब अंगद और महापार्श्व में युद्ध होने लगा। जाम्बवान भी अंगद की सहायता को आ पहुंचा। रीछों के राजा गवाक्ष भी महापार्श्व से भिड़ गए। पर उस राक्षसवीर ने जाम्बवान और गवाक्ष दोनों को घायल कर दिया। महापार्श्व ने अपने चमकते हुए फरसे से अंगद के कन्धों पर चोट की पर पैंतरा बदलकर अंगद ने अपने को बचा लिया। फिर कुपित अंगद ने अपने वज्र-कठोर मुक्के से महापार्श्व के मर्म स्थान में प्रहार किया जिसे न सह सकने के कारण वह गिर पड़ा और मर गया। वानर-सेना हर्ष से भरी हुई सिंह-गर्जना करने और उछलने-कूदने लगी।

रावण के अतिरिक्त लंका के समस्त प्रमुख राक्षस-वीर काल के गाल में समा चुके थे। लंकापति के भाई, पुत्र, भतीजे, मंत्री और सेना-नायक एक-एक करके अपना बल-पराक्रम दिखाते हुए मर चुके थे। लंका को वानर-सेना ने घेरा हुआ था। वानर-सेना की भी खूब

क्षति हुई किन्तु श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव, अंगद, हनुमान, जाम्बवान आदि सभी सकुशल थे। रावण सिर कुचले नागराज की तरह क्रोध से फुंफकारता, वीर दर्प दिखाता, बची-खुची राक्षस सेना को लेकर युद्ध के लिये स्वयं निकल पड़ा था। उसने निश्चय किया था कि आज राम-लक्ष्मण सुग्रीव सहित समस्त वानर-सेना नायकों का संहार करके ही लौटूंगा। उसने रण भूमि में ब्रह्मा निर्मित तामस अस्त्र का प्रयोग करके वानर-सेना का संहार प्रारम्भ किया। इस भयानक अस्त्र ने वानर सेना में भगदड़ मचा दी। सभी अपने प्राण बचाकर भागने लगे। वानर-सेना के इस विनाश को देखकर श्रीराम राक्षसेन्द्र रावण से युद्ध करने के लिये उद्यत हुए। अपने वास्तविक प्रतिद्वन्दी रावण को सम्मुख पाकर राम बड़े प्रसन्न थे। पहले लक्ष्मण ने रावण के साथ युद्ध प्रारम्भ किया। पर रावण तो श्रीराम से टक्कर लेना चाहता था। वह लक्ष्मण को लांघकर श्रीराम के सम्मुख जा पहुंचा। दोनों योद्धा एक-दूसरे को लक्ष्य बनाकर प्रहार करने लगे। दोनों ही अप्रतिम वीर थे। अस्त्र विद्या में दोनों पारंगत थे। शत्रु के प्रहार को व्यर्थ करना और शत्रु पर प्रहार करना यही क्रम बड़ी देर तक चलता रहा; पर दोनों में से कोई भी विचलित नहीं हुआ। उन दीप्त अस्त्रों के प्रकाश से रणभूमि में बिजली सी कौंध जाती। दोनों ने एक दूसरे को क्षत-विक्षत कर दिया था पर दोनों में से कोई भी पीछे हटने को तैयार नहीं था। सुमित्रा-कुमार लक्ष्मण ने अपने तीखे बाणों से रावण के रथ की ध्वजा को काट डाला। इस ध्वजा पर मानव-खोपड़ी का चिह्न अंकित था। फिर विभीषण ने रावण के सारथि को मार गिराया और उसके बाद घोड़ों को। रावण को विभीषण पर बड़ा क्रोध आया। पर जब तक रावण रथ के नीचे कूदा, लक्ष्मण ने उसके धनुष को भी काट डाला। विभीषण को मारने के लिये रावण ने शक्ति चलाई। इस शक्ति को लक्ष्मण ने विभीषण के पास पहुँचने से पहले ही काट डाला। रावण को विभीषण पर बड़ा क्रोध था। वह राम-लक्ष्मण को छोड़कर सबसे पहले विभीषण को मारने का यत्न कर रहा था। उसने एक दूसरी अमोघ शक्ति विभीषण को लक्ष्य बनाकर छोड़ी। तेजोदीप्त उस दिव्य-शक्ति को देखकर विभीषण को अपने प्राण संकट में दिखाई दिये। लक्ष्मण ने विभीषण की चिन्ता को समझा और वे विभीषण को पीछे करके स्वयं आगे हो गये। रावण ने देखा कि लक्ष्मण ने विभीषण को बचा लिया। उसने सोचा, पहले लक्ष्मण से ही निबट लूं तो ठीक है।

वह शक्ति सीधी लक्ष्मण की छाती में जा लगी। लक्ष्मण की छाती फट-सी गई और वे अचेत होकर गिर पड़े। पास खड़े श्रीराम लक्ष्मण को अचेत पड़ा देखकर विषाद में डूब गये पर दूसरे ही क्षण उन्होंने सोचा कि यह समय विषाद करने का नहीं है। वानर-वीर छाती में धंसी उस शक्ति को बाहर खींचने का प्रयत्न करने लगे पर उन्हें इसमें सफलता नहीं मिली। तब श्रीराम ने उस शक्ति को निकाल दिया। इतनी ही देर में रावण ने अपने बाणों से उन्हें बुरी तरह घायल कर दिया। श्रीराम ने सुग्रीव और हनुमान से कहा, "आप दोनों लक्ष्मण को घेरकर खड़े रहिये। अब मेरे सामने वह समय आ उपस्थित हुआ है, जिसकी

मुझे प्रतीक्षा थी। पापाचारी रावण का अन्तकाल आ गया है। अब इसे मार डालना ही मेरा अभीष्ट है। अब या तो राम रहेगा या रावण ! आज मैं रावण का वध करके अब तक झेले समस्त दुःखों को भूल सकूंगा। मेरे सारे पुरुषार्थों का चरमफल रावण का वध है। अब यह दुष्ट बचकर नहीं जा सकता। काल ही इसे घेरकर मेरे सामने ले आया है। आज देवताओं का अभीष्ट सिद्ध होगा। आज अन्धकार पर प्रकाश की, पाप पर पुण्य की विजय होगी। आज आसुरी शक्ति अपना पराभव देखेगी। आज से तपस्वी निर्भय और निर्विघ्न हो कर यज्ञाग्नि में होम करेंगे। वानर वीरो ! तुम सब पर्वतशिखरों पर बैठकर मेरा और रावण का युद्ध देखो। आज सब देवता मानव के पराक्रम को देखें। राम और रावण का युद्ध अपने जैसा आप ही होगा। किसी दूसरे युद्ध से इसकी तुलना नहीं की जा सकेगी। जब तक ये सूर्य-चन्द्रमा, सागर, और पृथ्वी रहेगी, इस युद्ध को देव-दानव और मानव विस्मय से स्मरण करते रहेंगे।"

दोनों ओर से बाण-वर्षा प्रारम्भ हुई। शस्त्रास्त्रों की दीप्ति से बिजलियां कौंधने लगीं और टकराहट से मेघ-गर्जन की ध्वनि निकलने लगी।

श्रीराम रावण से युद्ध तो कर रहे थे किन्तु उनका ध्यान घायल और मूर्च्छित पड़े लक्ष्मण की ओर ही था। इस चिन्ता के कारण वे पूरे उत्साह और पराक्रम का परिचय नहीं दे पा रहे थे। लक्ष्मण उन्हें प्राणों से भी प्रिय थे। उनका जीवन संशय में पड़ा हुआ था। और उनकी चिन्ता में श्रीराम पूरे मन से युद्ध नहीं कर पा रहे थे। धनुष उनके हाथ से सरक-सरक जाता। आंखें डबडबाई होने के कारण वे निशाना साधने में भी कठिनाई अनुभव कर रहे थे। उन्होंने वानर-वीर सुषेण को बुलाकर अपनी मनःस्थिति समझाई और तुरन्त लक्ष्मण का उपचार करने को कहा। वे लक्ष्मण के लिये विलाप करते हुए बोले, "लक्ष्मण को खोकर मैं युद्ध जीतकर भी क्या करूंगा ! वनवास के लिये आते समय लक्ष्मण मेरे पीछे आया था। अब परलोक में मैं उसके पीछे-पीछे जाऊंगा ! लक्ष्मण जैसा भाई संसार में मिलना दुर्लभ है। हाय ! मैं माता सुमित्रा को क्या मुँह दिखाऊंगा। पता नहीं, पूर्व जन्म में मैंने कौन-से दुष्कर्म किये थे जिनका यह कुफल मुझे भोगना पड़ रहा है। हा लक्ष्मण ! तुम तो विपत्ति में सदा मुझे धैर्य बन्धाते थे, फिर आज मुझसे क्यों नहीं बोलते !"

सुषेण ने श्रीराम को आश्वस्त करते हुए कहा, "आप इस कठिन समय में शोक मत कीजिए। श्री लक्ष्मण मूर्च्छित अवश्य हुए हैं पर मरे नहीं हैं। सांस चल रही है। हृदय की धड़कन भी ठीक है।" सुषेण ने हनुमान से कहा, "पवन-पुत्र ! आप महोदय पर्वत पर जाकर, उसके दक्षिण शिखर से विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी, संजीवकरणी और संधानी नाम की औषधियां लेकर आइये। उन्हीं से वीरवर लक्ष्मण की प्राण रक्षा हो सकगी।"

हनुमान तुरन्त वायुवेग से महोदय पर्वत पर पहुँचे पर औषधियों को पहचान नहीं सके। उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि क्या करूं। अन्त में उन्होंने उस पर्वत शिखर

को ही ले चलने का निश्चय किया जिससे सुषेण इच्छित औषधियों को पहचानकर उखाड़ सकें। यह सोचकर उन्होंने पर्वत-शिखर को ही उठा लिया और उछलकर आकाश मार्ग से लंका जा पहुँचे। उन्होंने सुषेण से कहा, "मैं आपकी बताई औषधियों को पहचानता नहीं था, इस लिये इस पर्वत-शिखर को ही उठा लाया हूँ। आप उन औषधियों को उखाड़कर सुमित्रानन्दन की चिकित्सा कीजिए।"

सुषेण ने अभिलषित औषधियों को उखाड़ा और कूट-पीसकर लक्ष्मण के नासापुट में डाला। औषधियों के प्रभाव से श्री लक्ष्मण के शरीर में चुभे सारे बाण निकल गये और रक्त बहना भी बन्द हो गया। वे सचेत होकर उठ बैठे। चिन्तित वानर-वीर लक्ष्मण को स्वस्थ देखकर प्रसन्न हो उठे। श्रीराम ने लक्ष्मण को छाती से लगा लिया। उनके नेत्रों में प्रसन्नता के आंसू छलछलाने लगे।

अब श्रीराम पूरे उत्साह के साथ युद्ध करने लगे। अब तक रावण भी दूसरे रथ पर चढ़कर युद्ध के लिये तैयार हो चुका था। जैसे राहु सूर्य पर आक्रमण करता है, वैसे ही उस दैत्यराज ने सूर्य कुल-भूषण राम पर आक्रमण किया। धारासार मेघ जैसे पर्वत पर बरसते हैं, वैसी ही बाण-वर्षा लंकापति रावण श्रीराम पर करने लगा। श्रीराम भी रावण पर बाण-वर्षा कर रहे थे। किन्तु रावण रथारूढ़ था और श्रीराम धरती पर खड़े होकर लड़ रहे थे। इस दृष्टि से दोनों पक्षों में कोई समानता नहीं थी। रावण का अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित रथ, सधे हुए घोड़े और चतुर सारथि बड़े सहायक हो रहे थे।

देवराज इन्द्र ने सारी परिस्थिति को श्रीराम के अनुकूल न देखकर, अपने मातलि को आज्ञा दी कि शीघ्र मेरा रथ लेकर जाओ और श्रीराम को रथारूढ़ होकर युद्ध करने के लिये कहो। मातलि ने तुरन्त आज्ञा का पालन किया और श्रीरामचन्द्र जी के पास पहुँचकर बोला, "महासत्त्व श्रीराम! देवराज इन्द्र ने यह अपना रथ आपके लिये भेजा है। इसमें विशाल इन्द्र धनुष, अभेद्य कवच, दीप्त बाण और शत्रुसंहारक शक्ति सभी कुछ है। सारथि का कार्य मैं करूंगा। आप इस रथ पर आरूढ़ होइए और राक्षसेन्द्र रावण का वैसे ही संहार कीजिए जैसे महेन्द्र ने दानवों का किया था।"

श्रीराम उस देवरथ पर आरूढ़ हुए। अब पहले की अपेक्षा उन्हें लड़ने में सुविधा हो गई। रथारूढ़ श्रीराम भगवान् भास्कर की तरह तेजोदीप्त और शोभा-सम्पन्न दिखने लगे। अब उन दोनों महावीरों का रोंगटे खड़े कर देने वाला युद्ध प्रारम्भ हुआ। रावण ने गान्धर्व और देव अस्त्रों का प्रयोग किया जिन्हें श्रीराम ने इसी नाम के अस्त्रों से नष्ट कर दिया। तब रावण ने राक्षस अस्त्र का प्रयोग किया। श्रीराम ने गुरु अस्त्र से उनका प्रतिकार किया। अपने अस्त्रों को व्यर्थ जाता देखकर रावण को बड़ा क्रोध आया। उसने अपने तीखे बाणों से श्रीराम और मातलि को घायल कर डाला। फिर उसने देवरथ की ध्वजा काट डाली और घोड़ों को बाणों से क्षत-विक्षत कर डाला।

श्रीराम को घायल देखकर धर्मात्मा विभीषण, वानरेन्द्र सुग्रीव और अन्य वानर यूथपति चिन्तित हो उठे। स्वर्ग के देवता भी चिन्ता में पड़ गए कि श्रीराम ने रावण को मारने की प्रतिज्ञा की हुई है, पर उसे मारे बिना स्वयं ही उसके बाणों से घायल हो गये। राक्षसेन्द्र रावण दूने उत्साह से लड़ रहा था और श्रीराम के लिये मोर्चे पर डटे रहकर शर-सन्धान करना भी कठिन होता जा रहा था।

लंकापति के बाणों से क्षत-विक्षत होकर श्रीराम की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उनकी भौंएं टेढ़ी और नेत्र लाल हो गये। आकाशस्थ देवता श्रीराम का जयघोष और दानव लंकापति रावण का जयघोष करने लगे।

रावण ने महाकाल के समान त्रासदायक एक भयंकर शूल को उठा लिया। शैल-शिखर को विदीर्ण कर देने की सामर्थ्य वाले उस शूल को हाथ में लेकर, सिंह-गर्जना करते हुए बांह से ऊपर उठाया और प्रहार करने के लिये उद्यत हुआ। उसने सम्मुख खड़े श्रीराम से कहा, "राम ! यह शूल लक्ष्मण सहित तुम्हारा वध करने के लिये पर्याप्त है। आज तुम्हारा वध करके मैं अपने वैर का बदला चुकाऊंगा।" यह कहकर रावण ने वह शूल रघुकुल-तिलक श्रीराम पर चला दिया। श्रीराम ने उस शूल को व्यर्थ करने का प्रयत्न किया जो व्यर्थ गया। अन्त में उन्होंने रथ के साथ इन्द्र द्वारा दी हुई शक्ति का प्रयोग करके शूल को व्यर्थ कर दिया। उल्का की तरह दीप्तिमती उस शक्ति ने रावण के प्राणान्तक शूल को छिन्न-भिन्न कर दिया। उस शूल को व्यर्थ हुआ देखकर रावण उदास हो गया। उधर श्रीराम ने तीन तीखे बाण उसकी छाती में और तीन ही माथे में मारकर उसे घायल कर दिया। उसके घोड़ों पर प्रहार करके उन्हें भी घायल कर दिया। बहते लाल रक्त में रावण ऐसा दिखाई देता था जैसे पुष्पित पलाश वृक्ष हो। रोषावेश युक्त होकर रावण ने भी बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। उसकी बाण-वर्षा से श्रीराम पर्वत की भांति अविचल खड़े युद्ध करते रहे। श्रीराम ने रावण को फटकारते हुए कहा, "नीच राक्षस ! तू मेरी अनुपस्थिति में सीता को छलपूर्वक हर लाया है, इसलिये तू न तो वीर है और न पराक्रमी। अधर्मी पापी ! तू निर्लज्ज और आचार-विहीन है। सीता के रूप में तो तू अपनी मृत्यु को ही लंका में लाया है। इस कुकर्म का फल तू पिछले दिनों से भोग रहा है। आज तेरा अन्त करके मैं तुझे यमलोक पहुँचाकर शान्ति पाऊंगा। आज तेरे भूलुंठित शरीर को गिद्ध नोच-नोच कर खाएंगे।" यह कहते हुए श्रीराम ने रावण पर बाण-वर्षा प्रारम्भ कर दी।

रावण इस बाण-वर्षा से व्याकुल हो गया। उसमें अस्त्र उठाने की सामर्थ्य भी न रही। उससे धनुष पर शर-सन्धान भी करते नहीं बनता था। वह श्रीराम का सामना करने में अपने को असमर्थ अनुभव करने लगा। सारथि ने रावण को युद्ध करने में असमर्थ देखा तो वह रथ को रण-भूमि से हटाकर ले गया।

रावण के स्वाभिमान को बड़ा आघात पहुँचा। उसने सारथि को फटकारते हुए कहा,

"मूर्ख ! क्या तूने मुझे पराक्रम-शून्य, असमर्थ और डरपोक समझ रखा है जो तू मेरी आज्ञा के बिना ही रथ को युद्धभूमि से भगा ले आया ! तू अपनी बुद्धि से ही मनमाना कार्य कर रहा है, तुझे इसका दण्ड मिलेगा। मेरे अभिप्राय को जाने बिना ही रथ को लौटाकर तूने मेरा घोर अपमान किया है। तूने मेरे यश पर आज पानी फेर दिया। आज शत्रु की दृष्टि में मैं कायर हूँ। क्या तू शत्रुपक्ष से जा मिला है ? तूने जो कार्य किया है, वह हितचिन्तक का नहीं, शत्रु का कार्य है। अब तू इस रथ को शीघ्र लौटा और मेरे शत्रु राम के सामने ले चल। कहीं ऐसा न हो कि मेरा शत्रु-युद्ध-भूमि से चला जाये।"

सारथि ने बड़ी नम्रता और विनय के साथ कहा, "महाराज ! मैं न तो असावधान हूँ और न डरा हुआ। मुझे न तो शत्रु ने फोड़ा है और न ही मेरा विवेक नष्ट हुआ है। मेरा कार्य चाहे आपको अप्रिय लगा हो पर मैंने तो आपका हित साधन करने के लिए ही ऐसा किया था। मैं रथ को पीछे लौटाने का कारण आपको बताता हूँ। मुझे आप थके से लग रहे थे और मैं देख रहा था कि आप शत्रु का ठीक से प्रतिकार नहीं कर पा रहे हैं। मेरे घोड़े भी थक चुके थे। उनके पाँव लड़खड़ा रहे थे। कई अपशकुन मुझे दिखाई दे रहे थे। सारथि का कर्त्तव्य है कि देश-काल, रथी के उत्साह और शत्रु के पराक्रम को ध्यान में रखे। इसलिये मैं समझता हूँ कि मेरा कार्य समयानुकूल था।"

सारथि के सार-युक्त वचनों को सुनकर रावण को सन्तोष हुआ। और उसने रथ को फिर से राम के सामने ले चलने की आज्ञा दी। सारथि ने तुरन्त आज्ञा का पालन किया और रथ थोड़ी ही देर में श्रीराम के सामने पहुंच गया।

श्रीराम ने पताकाओं से अलंकृत, अस्त्र-शस्त्रों से परिपूर्ण, घोर घन गर्जन जैसा शब्द करते रावण के रथ को देखा। श्रीराम ने इन्द्र सारथि मातलि से कहा, "मातले ! सावधान हो जाओ। अपना रथ शत्रु के सामने ले चलो।" आमने-सामने होते ही दोनों महारथियों ने एक-दूसरे पर बाण-वर्षा प्रारम्भ कर दी। श्रीराम ने इन्द्र के दिए धनुष का प्रयोग किया। दोनों योद्धा एक-दूसरे के वध के लिये प्रयत्नशील थे। दोनों ओर की सेनाएं लड़ना-भिड़ना छोड़ कर अपलक नेत्रों से इस रोमांचक युद्ध को देखने लगीं।

श्रीराम ने रावण के रथ पर लगी ध्वजा को काट गिराया। रावण ने बदले में श्रीराम के रथ के घोड़ों पर बाण-वर्षा की। पर वे घोड़े तो देवराज इन्द्र के रथ के थे। देवशक्ति उनकी रक्षक थी, इसलिए उनका बाल भी बाँका नहीं हुआ। रावण को अपना युद्ध-कौशल व्यर्थ जाते देखकर बड़ा क्षोभ हुआ। दोनों के रथ इतने पास-पास पहुँच गए थे कि घोड़ों के मुंह मिल चले थे। श्रीराम ने रावण के घोड़ों को बाणों से घायल करके पीछे मुड़ने के लिए विवश कर दिया। इससे रावण को बड़ा क्रोध आया। उसने मातलि पर प्रहार किया जो व्यर्थ गया। युद्ध का अन्त होता दिखाई नहीं देता था। श्रीराम को इस बात का बड़ा खेद था कि वे अभी तक रावण का वध नहीं कर सके। वे सोचने लगे, मैंने जिन बाणों से मारीच, खर और

दूषण को मारा, विराध का वध किया, कबन्ध को मौत के घाट उतारा, बालि के प्राण लिए और सागर को क्षुब्ध कर डाला, वे मेरे पूर्व परीक्षित बाण आज रावण को मारने में कुण्ठित और निस्तेज हो गए हैं, इसका क्या कारण हो सकता है ?

युद्ध की भीषणता प्रतिक्षण बढ़ती ही जा रही थी। सूर्यास्त के बाद भी युद्ध बन्द नहीं हुआ। सारी रात युद्ध जारी रहा, पर किसी भी पक्ष की विजय नहीं हो रही थी।

मातलि ने श्रीराम से कहा, "आपकी सारी शक्ति रावण के अस्त्रों का प्रतिकार करने में ही लग रही है। यह तो केवल स्वरक्षा का युद्ध हो रहा है। राक्षसेन्द्र के वध के लिए आप को अवसर नहीं मिल रहा है। आप इस दुरात्मा के वध के लिये ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कीजिए।"

श्रीराम ने मातलि के सुझाव को स्वीकारकर महर्षि अगस्त्य द्वारा प्रदत्त अमोघ बाण को धनुष पर चढ़ाया। यह ब्रह्मा जी से मिला था और अमोघ था। यम का दूत वह बाण वेदोक्त मंत्रों से अभिमंत्रित करके श्रीराम ने धनुष पर रखा। पूरी शक्ति से प्रत्यंचा को खींचकर रघुनाथ ने उसे लंकापति रावण के वक्षस्थल को लक्ष्य बनाकर छोड़ा। इस दिव्य बाण ने रावण के विशाल वक्ष को फाड़ डाला। वह आर-पार निकलकर धरती में जा लगा और पुनः विनीत सेवक की भांति कार्य सिद्ध करके तूणीर में लौट आया। रावण के प्राण उसे छोड़कर वैसे ही निकल गये जैसे धर्म दुरात्माओं को छोड़ जाता है। रावण के हाथ से धनुष छूटकर गिर पड़ा और वह विशालकाय दैत्यराज वज्र से आहत वृत्रासुर की भांति रथ से धरती पर आ गिरा। शेष बचे राक्षस वीर अपने स्वामी को मरा देखकर भाग खड़े हुए। वानर वीरों ने भागते हुए राक्षसों का पीछा किया और जो भी हाथ लगा उसे मार डाला। वानर-सेना के हर्ष का आज पारावार नहीं था। इस धर्म-युद्ध रूपी यज्ञ की समाप्ति रावण की पूर्णाहुति से सम्पन्न हो गई थी। वानर श्रीराम का जय घोष करते, किलकारियाँ मारते स्वच्छन्द उछल-कूद मचा रहे थे। स्वर्ग के देवताओं ने पुष्प-वर्षा की। मधुर सुगन्ध युक्त मन्द-पवन बहने लगा। देव-द्वेषी राक्षस-राज रावण के मरने से ऋषि-मुनि, सिद्ध-गन्धर्व सब में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी और सभी महात्मा श्रीराम को साधुवाद देने लगे। सुग्रीव, विभीषण, लक्ष्मण, अंगद और हनुमान सबने मिलकर श्रीराम का अभिनन्दन किया।

पराजित हुए भाई को रणभूमि में मरा पड़ा देखकर विभीषण का हृदय शोक से व्याकुल हो गया। धर्मात्मा विभीषण विलाप करते हुए बोले, "भाई ! आप तो सदा बहुमूल्य बिछौनों पर सोते थे, फिर आज यहाँ धूल में क्यों लेटे हैं ? प्रचण्ड झंझावत से गिरे महावृक्ष की तरह आज आप निश्चेष्ट क्यों पड़े हैं ? भाई ! मैंने आपको आसन्न संकट से बहुत सावधान किया पर आपने मेरी एक नहीं सुनी।"

महात्मा विभीषण को शोक-संतप्त हो विलाप करते देख श्रीराम ने कहा, "मित्र विभीषण ! लंकापति रावण ने वीर गति पायी है। वे प्राणों का मोह छोड़कर वीरता पूर्वक लड़े हैं। इसके लिये शोक करना ठीक नहीं। तीनों लोकों के विजेता रावण को अन्त में काल

ने आ घेरा। समस्त प्राणधारियों को एक न एक दिन काल के अधीन होना ही पड़ता है। रावण वीर था। उसने वीरों की तरह जूझते हुए मृत्यु का वरण किया। इसलिए तुम्हारा शोक करना वृथा है। अब शोक को छोड़कर अपने भाई का मृतक संस्कार करने की तैयारी करो।"

उधर लंका में रावण की मृत्यु का समाचार पहुँचने पर शोकाकुल राक्षसियां अन्तःपुर से निकल पड़ीं और धरती पर लोटने लगीं। वे परकोटे से बाहर निकलकर रणभूमि में पहुँचीं। वे रोती-कलपती, छाती पीटती मृत पड़े रावण के पास पहुँचीं। उसके शव को देखते ही वे उससे लिपट गईं और दहाड़ें मारकर रोने लगीं। तरह-तरह के करुणाजनक विलाप करती हुई रावण की वे स्त्रियां फूट-फूट कर रोने लगीं।

रावण की पटरानी मन्दोदरी का विलाप तो बड़ा ही करुणाजनक था। वे बोलीं, "स्वामी! मुझे तो इस बात पर विश्वास नहीं होता कि आपको एक मानव ने मारा है। आपके भय से तो देवराज इन्द्र भी थर-थर कांपते थे। ये राम मुझे तो साधारण मनुष्य नहीं लगते। मैंने जब महाबलशाली खरदूषण के वध की बात सुनी थी, तभी मेरा माथा ठनका था फिर इस दुर्गम लंका में हनुमान चुपके से घुस आया और सारी लंका को राख का ढेर बनाकर चला गया, यह क्या किसी साधारण व्यक्ति का काम हो सकता है। मुझे लगता है कि आपसे त्रस्त देवताओं ने ही कोई षड्यंत्र रचा था। आपने मेरी एक भी बात नहीं मानी। यह सीता क्या लंका में आयी, राक्षस वंश की मानो मौत ही आ गयी। हाय! पतिव्रता सीता का अपहरण करने से ही आज आपको यह दिन देखना पड़ा। इसी एक पाप ने आपके यश को कलंकित कर दिया। कर्म फल एक न एक दिन अवश्य मिलता है। मेरे नाथ! मुझ अबला को छोड़कर आप कहां चले गए। मेरे किस अपराध के कारण आप रुष्ट हैं, जो मुझसे बोल नहीं रहे हैं? मय की पुत्री, राक्षसराज रावण की पटरानी, इन्द्रजित मेघनाद की मां होकर भी मैं आज कितनी दीन-हीन हूँ। हाय! जैसे साही की देह कांटों से भरी होती है, उस प्रकार आपका शरीर राम के बाणों से भरा हुआ है। इन बाणों के कारण मैं आपका अन्तिम स्पर्श भी नहीं कर पा रही हूँ। मैं स्वप्न देख रही हूं या सत्य! आप राम के हाथों कैसे मारे गये! आप तो मृत्यु की भी मृत्यु थे। फिर आज स्वयं ही मृत्यु के अधीन कैसे हो गये! हाय! मेरी छाती फट क्यों नहीं जाती! आपको मरा जानकर भी मैं अब तक जीवित कैसे हूँ! मुझे आप अपने साथ क्यों नहीं ले गये! मैं आपके बिना कैसे जी सकती हूं! पतिव्रताओं के आंसू व्यर्थ नहीं जाते, यह बात सच हो गयी। आपने महात्मा विभीषण के हितयुक्त वचनों पर क्यों ध्यान नहीं दिया?" यों विलाप करती मन्दोदरी मूच्छित होकर गिर पड़ी। उसकी सौतों ने उसे उठाया और धीरज बंधाने लगीं।

इसी समय श्रीराम ने धर्मात्मा विभीषण को रावण-पत्नियों को धीरज बंधाने और दाह-संस्कार के लिये यथोचित तैयारी करने को कहा।

विभीषण रावण का दाह-संस्कार करने के लिए तैयार नहीं थे पर श्रीराम के समझाने

पर कि वैर जीवितों के साथ ही होता है, मृत्यु के बाद नहीं, वे दाह-संस्कार के लिये तैयार हो गये।

विभीषण दाह-संस्कार की तैयारी में जुट गये। वे लंका में गये और लकड़ी, अग्नि, चन्दन, अगर और अन्यान्य सुगन्धित पदार्थ लेकर पुरोहित सहित लौट आये। रावण के शव को रेशमी वस्त्र से ढककर सोने की अर्थी में रखकर, फूलमालाओं और पताकाओं से सजाया गया। विभीषण आदि वंश के लोग उसे कन्धों पर उठाकर दक्षिण दिशा में श्मशान की ओर चले। अन्तःपुर की स्त्रियां भी रोती हुई शव के पीछे चल रही थीं। चन्दन की चिता बनाकर उस पर रावण का शव रखा और विधिपूर्वक दाह-संस्कार सम्पन्न किया। सबने रावण को जलांजलि अर्पित की। सभी रावण-पत्नियों को लंका में लौट चलने के लिये विभीषण ने कहा।

महात्मा विभीषण दाह-संस्कार करने के पश्चात् श्रीराम के पास लौट आये। श्रीराम ने मातलि का सत्कार करते हुए उन्हें देवराज इन्द्र का रथ लौटा ले जाने के लिये कहा। मातलि रथ सहित दिव्य लोक को लौट गये। श्रीराम ने मित्र सुग्रीव को छाती से लगाकर उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। लक्ष्मण भी पास ही खड़े थे। श्रीराम ने उन्हें आज्ञा दी, "सौम्य, अब तुम लंका में जाकर धर्मात्मा विभीषण का राज्याभिषेक करो।"

लक्ष्मण 'बहुत अच्छा' कहकर विभीषण को साथ ले लंका में गये। वानर अभिषेक के लिये सागर का जल ले आये। वेदोक्त विधि से समुद्र-जल से विभीषण का अभिषेक सम्पन्न किया और लंका के राजसिंहासन पर बिठाया।

अभिषेक के पश्चात् लंकापति विभीषण फिर श्रीराम के पास लौट आये। श्रीराम ने पवन-पुत्र हनुमान से कहा, "महाराज विभीषण से आज्ञा लेकर तुम लंका में जाओ और जनकनन्दनी सीता से उनका कुशल समाचार पूछो। हमारा कुशल समाचार भी उन्हें बताना और कहना कि रावण युद्ध में मारा गया है। फिर वे जो कुछ कहें, वह मुझे आकर बताओ।"

वीरवर हनुमान लंका में गए और अशोक वाटिका में भगवती सीता के पास पहुँचे। उन्होंने राक्षसियों से घिरी सीता को प्रणाम किया। फिर श्रीराम की कही हुई बातें कहीं।

सीता जी चुपचाप सुनती रहीं। वे बड़ी प्रसन्न थीं। हनुमान ने उनकी चुप्पी का कारण पूछा। वे हर्षातिरेक से गद्‌गद होने के कारण ही कुछ बोल नहीं पा रही थीं। उन्होंने यह हर्षदायक समाचार सुनाने के लिये हनुमान को पुरस्कृत करने की इच्छा व्यक्त की पर इस कार्य के योग्य पुरस्कार का वे निश्चय नहीं कर पा रही थीं।

हनुमान ने विनय पूर्वक कहा, "आपने जो मुझे पुरस्कृत करने की बात कही, उसीसे मैं पुरस्कृत हो गया। श्रीराम ने शत्रु पर विजय प्राप्त की, मेरे सारे मनोरथ इसी बात से सिद्ध हो गए। हां, मेरी आप से एक प्रार्थना है। मैं चाहता हूँ कि यहां रहते जिन-जिन राक्षसियों ने आपके साथ कठोर व्यवहार किया है, आपकी आज्ञा हो तो उन सबको अभी इसका

दण्ड दूं ।"

भगवती सीता ने बहुत सोच-विचारकर कहा, "कपिश्रेष्ठ ! इन्होंने मेरे साथ जो भी व्यवहार किया, वह स्वेच्छा से नहीं, राजाज्ञा से ही किया । ये बेचारियाँ तो पराधीन थीं । अतः इन पर क्रोध करना व्यर्थ है । मैंने जो दुःख भोगा, वह मेरे ही पूर्व कर्मों का फल था।"

सीता जी की दयालुता देखकर हनुमान ने उनकी प्रशंसा की और श्रीराम के लिए सन्देश देने के लिए कहा।

देवी सीता बोलीं, "मैं स्वामी का दर्शन करना चाहती हूँ । "

हनुमान ने कहा, "देवि ! आप आज ही मित्रों से घिरे और शत्रुओं से रहित श्रीराम के मुख चन्द्र को देखेंगी ।"

हनुमान वहाँ से लौटकर श्रीराम के पास पहुँचे और भगवती सीता का सन्देश कह सुनाया ।

श्रीराम ने समीपस्थ विभीषण को कहा, " मित्र ! आप विदेहनन्दिनी सीता को स्नान कराकर और वस्त्राभूषणों से भूषित कराकर यहां ले आइये ।"

श्रीराम के कहने पर विभीषण तुरन्त अन्तःपुर में पहुँचे । स्त्रियों को भेजकर उन्होंने अपने आगमन की पूर्व सूचना सीता जी को भिजवाई । फिर स्वयं अंजलिबद्ध उपस्थित हुए और विनय पूर्वक बोले, "विदेह राजकुमारी ! आप स्नान करके और उत्तम वस्त्राभूषणों से भूषित होकर सवारी पर बैठिये । आपके स्वामी आपको देखना चाहते हैं ।"

सीता बोलीं, "राक्षसराज ! मैं बिना स्नान किए ही पति का दर्शन करना चाहती हूँ।"

विभीषण ने निवेदन किया, "देवि ! श्रीराम ने जैसा कहा था, वही मैंने कहा है।"

श्रीराम की इच्छा का सम्मान करते हुए सीता जी ने वैसा ही किया। उन्हें ले जाने के लिए शिविका तैयार थी । उस पर बैठ करके वे श्रीराम के पास चलीं । शिविका के चारों ओर सुरक्षा के लिए राक्षस नियुक्त थे ।

महात्मा विभीषण ने श्रीराम को देवी सीता के आगमन की सूचना दी । श्रीराम ने उन्हें आने की स्वीकृति दी । विभीषण ने वहां उपस्थित लोगों को वहाँ से हटा दिया । यह बात श्रीराम को बुरी लगी । वे नहीं चाहते थे कि दूसरों का कुछ भी अनादर हो । जानकी शिविका से उतरकर पैदल यहाँ आएं जिससे समस्त वानर उन्हें देख सकें ।

श्रीराम की आज्ञा का पालन करते हुए विभीषण देवी सीता को श्रीराम के पास ले आए। श्रीराम के सीता जी के प्रति अकृपापूर्ण व्यवहार से लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमान व्यथित हो उठे । वे समझ रहे थे कि श्रीराम सीता पर अप्रसन्न हैं। पति-भक्तिमती सीता ने विस्मय और स्नेह के साथ स्वामी के मुख का दर्शन किया । जिस मुखचन्द्र को उन्होंने बहुत महीनों से नहीं देखा था, उसे देखते वे अघाती नहीं थीं । पति-दर्शन की प्रसन्नता से

उनका मुख कमल खिल उठा।

विनय और संकोच की मूर्ति सीता को समीप खड़ी देखकर राम बोले, "भद्रे ! मैंने पुरुषार्थ द्वारा तुम्हें शत्रु के चंगुल से छुड़ा लिया है। सुग्रीव, हनुमान और विभीषण की सहायता, सम्मति और परिश्रम सफल हुआ। मैं तुम्हें यह स्पष्ट बता देना चाहता हूं कि यह सारा उद्योग मैंने तुम्हें पाने के लिये नहीं किया है। अपने और कुल के अपयश को दूर करने के लिए ही सब कुछ किया है। तुम्हारे चरित्र के सम्बन्ध में सन्देह का अवसर उपस्थित हुआ है। दुखती आंख को जैसे प्रकाश नहीं सुहाता, वैसे ही तुम मुझे अप्रिय जान पड़ती हो। अब मुझे तुम से कोई प्रयोजन नहीं है। तुम स्वेच्छा से जहां जाना चाहो, जा सकती हो। मैंने अपने मन की बात तुम्हें स्पष्ट रूप से बता दी।"

श्रीराम ने ये सारी बातें वानरों और राक्षसों की भरी सभा में कहीं। भगवती सीता समझ रही थीं कि लंका-विजय के साथ उनके दुःखों का अन्त हो गया। इस नई विपत्ति की उस पति-परायणा देवी ने कल्पना भी नहीं की थी। पति द्वारा परित्यक्ता वे लाज और संकोच से गड़ी जा रही थीं। काश! धरती फट जाती और यह सुनने से पहले ही वे उसमें समा जातीं।

श्रीराम के इन कठोर वचनों को सुनकर वैदेही के रोंगटे खड़े हो गए। भीड़ के सामने लगाए गए इस लांछन से सीता लाज से गड़ गयीं। आंखों से आंसुओं की धार बहते, रुंधे गले से उन्होंने कहा, "आप जिस तरह की कठोर और अनुचित बातें मुझे कह रहे हैं, ऐसी बातें तो कोई नीच कोटि का पुरुष ही नीच कोटि की स्त्री से कह सकता है। मैं अपने चरित्र की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मैं निष्कलंक हूँ। मेरे प्रति आपका सन्देह अनुचित है। मेरा हृदय सदा आप में ही लगा रहा है। मुझे खेद है कि इतने वर्षों एक साथ रहने पर भी आपने मुझे ठीक से नहीं समझा। इससे बढ़कर मेरा दुर्भाग्य क्या हो सकता है ! मेरे शील और पतिभक्ति की आपने उपेक्षा करके जो मन में सन्देह को स्थान दिया, यह सर्वथा अनुचित है।" इतना कहते-कहते भगवती सीता का गला रुंध गया और वे हिचकियां लेती हुई रोने लगीं। लक्ष्मण पास ही बैठे हुए थे। देवी सीता ने उनसे कहा, "सुमित्रानन्दन ! मेरे लिए चिता तैयार करा दो। मेरे इस दुःख की यही दवा है। पति द्वारा लांछित होकर मैं जीना नहीं चाहती।"

श्रीराम के इस रूखे और अनुचित व्यवहार से लक्ष्मण क्रोध में भरे बैठे थे। उन्होंने रोष पूर्वक श्रीराम की ओर देखा। श्रीराम ने अपनी मुख-मुद्रा से लक्ष्मण को चिता तैयार करने का संकेत किया।

श्रीराम उस समय यमराज की तरह बड़े डरावने हो रहे थे। उनके मित्रों में से कोई भी उन्हें समझाने का साहस नहीं कर सका। श्रीराम किंचित् सिर झुकाए खड़े थे। भगवती सीता ने उनकी परिक्रमा की। इसके बाद वे प्रज्वलित चिता के पास गई। उन्होंने हाथ जोड़, कर अग्नि से प्रार्थना की, "यदि मेरा हृदय क्षण भर के लिए भी श्रीराम से दूर न हुआ हो तो

अग्निदेव मेरी रक्षा करें। मेरे शुद्ध चरित्र पर भी मेरे स्वामी सन्देह कर रहे हैं। यदि मैं निष्कलंक होऊं तो अग्निदेव मेरी रक्षा करें। यदि मैंने मन, वाणी और क्रिया द्वारा पति-भक्ति का अतिक्रमण न किया हो तो अग्नि देव मेरी रक्षा करें।" यह कहकर सीता जी प्रदक्षिणा करके चिता में प्रविष्ट हो गईं।

वहां उपस्थित जन-समुदाय ने भगवती सीता को जलती चिता में प्रविष्ट होते देखा तो हाहाकार मच गया।

तभी अग्निदेव चिता को हिलाकर इधर-उधर बिखेरते हुए वैदेही सीता को लिए चिता से बाहर निकले। अरुणोदय कालीन अरुणपीत कान्ति जैसी प्रकाशित हो रही सीता देवी को अम्लान देखकर सभी उपस्थित जन गद्गद् हो उठे। उनके शील और सतीत्व की प्रशंसा करने लगे। जैसे अग्नि-परीक्षा के बाद सुवर्ण अपने खरे-निखरे रूप में देदीप्यमान होता है, वैसे ही भगवती सीता इस अग्नि-परीक्षा में दीप्तिमती होकर बाहर आयीं।

अग्नि देव ने श्रीराम से कहा, "रघुनाथ ! देवी सीता सर्वथा शुद्ध-शील हैं। आप इन्हें सादर स्वीकार करें।"

श्रीराम अग्नि देव के वचन सुनकर प्रसन्न हो उठे। उनके नेत्रों में आनन्दाश्रु छल-छलाने लगे। वे अग्नि देव से बोले, "लोकापवाद से बचने के लिए साध्वी सीता की अग्नि परीक्षा आवश्यक थी। मैं जानता हूँ कि ये परम पवित्र हैं। जैसे मनस्वी पुरुष अपनी कीर्ति नहीं छोड़ सकता, वैसे ही मैं भी इन्हें नहीं छोड़ सकता। ये मुझसे वैसे ही अभिन्न हैं, जैसे सूर्य से उसकी प्रभा।"

श्रीराम ने देवी सीता को पूर्ण हृदय से स्वीकारा।

दूसरे दिन प्रातः जब श्रीराम आदि उठे तो विभीषण ने उन्हें स्नान कराके अंगराग, गन्ध, लेपन, वस्त्राभूषण धारण करने को कहा।

श्रीराम ने कहा,"मित्र!आप सुग्रीव आदि से स्नानादि के लिए अनुरोध कीजिए। मैं तो शीघ्रातिशीघ्र महात्मा भरत से मिलने के लिए आतुर हूँ। वे बहुत कष्ट सह रहे हैं। उनसे मिले बिना मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। अब कोई ऐसा उपाय सोचिए कि मैं शीघ्रातिशीघ्र अयोध्या पहुंच सकूं। जिस मार्ग से मैं पैदल यहां तक आया हूँ, वह मार्ग लम्बा और दुर्गम है। मेरे वनवास की अवधि पूरी होने वाली है। यदि मुझे एक दिन की भी देर हो गयी तो पता नहीं भरत क्या कर बैठेगा।"

राक्षसेन्द्र विभीषण ने उत्तर दिया,"रघुकुल नन्दन ! अयोध्या पहुँचने की आप चिन्ता न करें। मैं एक दिन में आपको वहां पहुंचा दूंगा। लंका में हमारे बड़े भाई कुबेर का पुष्पक विमान विद्यमान है। इसे रावण ने कुबेर से छीन लिया था। आप उस दिव्य विमान पर बैठ-कर अयोध्या जाइए। अब मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करें। मेरे प्रति यदि आपके हृदय में कोई स्थान है, तो जानकी और लक्ष्मण सहित कुछ दिन यहाँ रहिए। मेरा सत्कार ग्रहण

कीजिए। मैं समस्त मित्रों और सैनिकों सहित आपका सत्कार करना चाहता हूँ मेरी इस विनय को स्वीकारकर मुझे सेवा करने का अवसर दीजिए।"

श्रीराम बोले, "महात्मा विभीषण ! आप मेरे अन्तरंग मित्र हैं। आप मेरे सहायक हैं। आपने मेरे ऊपर जो उपकार किया है, क्या वह मेरा कम सम्मान है ? मैं आपके आग्रह को कभी न टालता पर भरत ने प्रतिज्ञा की है कि यदि मैं चौदह वर्ष पूरे होने पर अयोध्या न पहुँचा तो वह आत्मदाह कर लेगा। फिर मेरी माताएं भी मेरे लिए चिन्तित होंगी। मुझे भी उनके दर्शनों की बड़ी उत्कण्ठा है। मेरी परिस्थिति को देखते हुए मुझपर क्रोध न करें और अयोध्या जाने की अनुमति दें। तुरन्त पुष्पक विमान को भिजवाने की व्यवस्था कीजिए।"

धर्मात्मा विभीषण ने पुष्पक विमान मंगवाया। यह विमान बड़ा सुन्दर था। श्वेत-पीत वर्ण की पताकाओं से सुशोभित, रत्न जड़ित, खिड़कियों वाला वह विमान सुखासनों से सज्जित था। विश्वकर्मा का बनाया हुआ वह विमान अन्दर से खूब खुला था। उसमें अलग-अलग कक्ष बने हुए थे। मन के समान अबाध गति वाला वह विमान उड़ान के लिए तैयार था। विभीषण ने श्रीराम को सूचित किया कि विमान तैयार है। फिर विभीषण ने पूछा "प्रभो ! अब मैं आप की क्या सेवा करूं ?"

श्रीराम ने प्रत्युत्तर में कहा,"विभीषण, ये वानर प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध में लड़े हैं। अतः आप रत्न-धनादि दान से इनका सत्कार कीजिए।"

श्रीराम के कहने पर विभीषण ने सभी वानरों को यथोचित पारितोषक देकर सम्मानित किया।

श्रीराम भगवती सीता तथा लक्ष्मण सहित विमान पर बैठे। उन्होंने वानरेन्द्र सुग्रीव को सम्बोधित करते हुए कहा, "आपने मेरी जो सहायता की, उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ। अब आप सेना-सहित किष्किन्धापुरी को लौट जाइए। धर्मात्मा विभीषण, आप भी लंका के राज्य पर धर्मपूर्वक शासन कीजिए। आप सब बन्धु मुझे अब अयोध्या जाने की अनुमति दें।"

श्रीराम के ऐसा कहने पर सभी वानर सेनापति और विभीषण बोले, "हम सब भी अयोध्यापुरी चलना चाहते हैं। हमें भी साथ ले चलिए। हम आपके राज्याभिषेक में सम्मिलित होना चाहते हैं।"

श्रीराम ने कहा, "आप सब मित्रों के साथ अयोध्या जाऊं, यह मेरे लिए बड़ी प्रसन्नता की बात है। अब आप शीघ्रतापूर्वक विमान पर बैठिए।"

वानर वीरों सहित सुग्रीव और मंत्रियों सहित विभीषण विमान पर बैठ गए। विमान उड़ चला।

श्रीराम ने नीचे की ओर संकेत करते हुए देवी सीता से कहा,"सीते ! त्रिकूट पर्वत पर बसी, विश्व-कर्मा द्वारा निर्मित लंकापुरी को देखो। यह कितनी सुन्दर है। यह हमारी युद्ध

भूमि है। यहीं पर हम सबने दुर्जेय राक्षस वीरों का वध किया है। और यह महा समुद्र। उस पुल को देखो, इसी से होकर वानर सेना लंका में पहुँची थी। वह नीचे सेतुबंध तीर्थ है। यहां मैंने भगवान् शंकर की स्थापना की थी। यहीं विभीषण मुझसे आकर मिले थे। अब हम किष्किन्धा को देख रहे हैं। यह वानरेन्द्र सुग्रीव की राजधानी है। यहीं मैंने बालि का वध किया था।"

किष्किन्धा को देखकर भगवती सीता बोलीं, "प्रभो ! मेरी इच्छा है कि सुग्रीव की रानियां तथा वानर वीरों की पत्नियां भी हमारे साथ अयोध्या चलें।"

श्रीराम ने विमान को नीचे उतारने की आज्ञा दी। फिर वे सुग्रीव से बोले, "मित्र ! आप अपनी और वानर वीरों की स्त्रियों को लेकर आयें। वे भी हमारे साथ अयोध्या चलें, ऐसी सीता की इच्छा है।"

सुग्रीव अन्तःपुर में गए और तारा से बोले, "तुम सभी प्रमुख वानर वीरों की पत्नियों के साथ अयोध्या चलने की तैयारी करो।"

तारा की आज्ञा पाकर वानर वीरों की पत्नियां तैयार होकर आ गईं और विमान पर चढ़ गयीं। सीता जी ने उन सब का स्वागत किया। विमान फिर उड़ चला।

श्रीराम फिर सीता जी को भू प्रदेशों का परिचय देने लगे। बोले, "यह नीचे ऋष्यमूक पर्वत शिखर दिखाई दे रहा है। यहीं पर सुग्रीव से मेरी मित्रता हुई थी। यह पम्पातट है। तुम्हारे वियोग के दिनों में, जब मैं यहां भटक रहा था तो यहीं धर्मपरायणा शबरी से मेरी भेंट हुई थी। वह नीचे जो स्थान दिखाई दे रहा है, यहां मैंने कबन्ध को मारा था। अब हम उस स्थान के ऊपर उड़ रहे हैं, जहां तुम्हारी रक्षा करते हुए पक्षीप्रवर जटायु का रावण ने वध किया था। अब हम जनस्थान पर आ पहुंचे हैं। यहीं पर मैंने खरदूषण और त्रिशिरा का वध किया था और वह देखो, हमारी पर्णकुटी दिख रही है। यहां पर रावण ने छलपूर्वक तुम्हरा अपहरण किया था। और यह नीचे निर्मल नीरा गोदावरी दिखाई दे रही है। और वह रहा महर्षि अगस्त का आश्रम। उस ओर कुलपति महामुनि अत्रि का आश्रम दिखाई दे रहा है। यहीं तुमने साध्वी अनुसूया का दर्शन किया था। अब हम चित्रकूट के ऊपर आ गए हैं। यहीं भरत मुझ से आकर मिले थे। यह नीचे यमुना नदी प्रवाहित हो रही है और यह महर्षि भरद्वाज का आश्रम है। वह पुण्य तोया गंगा है जो पापमोचनी है। मित्रवर गुह के नगर श्रृंगवेरपुर के ऊपर इस समय हम उड़ रहे हैं। वह सरयू दिखाई दे रही है। अब हम अयोध्या पहुँच रहे हैं। तुम वनवास की लम्बी अवधि काटकर लौटी हो, पूर्वजों की इस नगरी को नमस्कार करो।"

अब विमान पर बैठे सभी लोग उचक-उचक कर अयोध्या को देखने लगे।

कुछ सोचकर राम ने विमान पीछे लौटाकर भरद्वाजाश्रम में उतारने को कहा। वे आश्रम में गए। महर्षि को प्रणाम किया और पूछा "भगवान् ! आपको अयोध्या का समाचार

मालूम होगा। वहां सब कुशल-मंगल है न ? भरत ठीक से प्रजापालन में तत्पर हैं न ? मेरी माताएं तो जीवित हैं ?"

महामुनि भरद्वाज बोले,"रघुनन्दन ! अयोध्या में सब कुशल है। धर्मात्मा भरत आपके आगमन की प्रतीक्षा में हैं। जब आप वन जाते समय यहां आए थे तो आपको देखकर मेरे मन में बड़ी करुणा हुई थी। अब आपको सफल-प्रतिज्ञ और विजेता के रूप में देखकर प्रसन्नता हो रही है। इस बीच जो कुछ घटित हुआ है, तपोबल के कारण उस सबकी जानकारी मुझे है। आज आप मेरा आतिथ्य स्वीकार कर यहीं रहिए। कल प्रातः अयोध्या को जाइयेगा। मैं आपके द्वारा हुए राक्षस-वध से प्रसन्न होकर आपको वर देना चाहता हूँ। कोई वर मांगिए।"

मुनि-वचन को शिरोधार्य करके श्रीराम ने उस रात वहीं रहने का निश्चय किया। फिर उन्होंने वरदान में महर्षि से माँगा कि यहां से अयोध्या तक मार्ग के सभी वृक्षों में ऋतु न होने पर भी फल उत्पन्न हो जाएं।

महर्षि ने 'तथास्तु' कहा और सारे वृक्ष फलों से लद गये। वानर-वीर अपनी रुचि के अनुसार उन दिव्य अमृतोपम मधुर फलों को खाने लगे।

श्रीराम ने हनुमान से कहा, "वीरवर ! तुम अयोध्या जाकर हमारे आगमन की सूचना दो। मार्ग में शृंगवेरपुर में निषादराज गुह से मिलना। वे मेरे परम मित्र हैं। उनका कुशल पूछना और हमारा कुशल बताना। वे तुम्हें अयोध्या का मार्ग और भरत का समाचार बतायेंगे। फिर तुम अयोध्या जाकर भरत से समस्त समाचार निवेदन करना। मेरे आगमन की सूचना सुनकर भरत के चेहरे पर जो भाव आएं उनका सूक्ष्म निरीक्षण करना। बातचीत और चेष्टाओं से उनके मनोगत भाव को जानना। संभव है वे राज्य को छोड़ना न चाहते हों। यदि ऐसा लगे तो तुरन्त लौटकर बताना। फिर मैं अयोध्या तजकर कहीं दूसरी जगह चला जाऊंगा।"

हनुमान मनुष्य रूप धारणकर तुरन्त चल पड़े। वे शृंगवेर पुर में निषादराज गुह से मिले, फिर अयोध्या के निकट नन्दिग्राम में पहुँचे, जहां आश्रम में भरत रहते थे। भरत ने उनका यथोचित सत्कार किया। आज महात्मा भरत की प्रसन्नता का क्या कहना ! यह हर्ष-वर्द्धक समाचार सुनाने के लिए भरत ने हनुमान को पुरस्कार स्वरूप एक लाख गौएं और सौ गाँव दिये।

अयोध्या में श्रीराम-सीता-लक्ष्मण के स्वागत की तैयारी होने लगी। मन्दिरों, चौराहों और प्रासादों को सजाया गया। बन्दनवार, तोरण और पताकाओं से सारे राजमार्ग को अलंकृत किया गया। सूत, मागध, सामन्त, श्रीमन्त, नागरिक, प्रजाजन और राजपुरुष, तीनों रानियां, शत्रुघ्न और पुरोहित, मंत्रीगण और व्यवसायी संघों के प्रमुख स्वागत और दर्शन के लिए नगर से बाहर नन्दिग्राम की ओर चले। भीड़ को नियन्त्रित करने की व्यवस्था

की गई। सेना भी श्रीराम के स्वागत में सम्मिलित हुई। वाद्य वृन्दों ने वाद्य बजाने प्रारम्भ किये। भरत श्रीराम की चरण पादुकाएं सिर पर धारण किये थे। श्वेत वर्ण का राज-छत्र और श्वेत चंवर भी साथ थे। हर्षपूर्ण कोलाहल से सारी अयोध्या गूंज उठी। कुछ देर प्रतीक्षा करने पर भी जब श्रीराम आते दिखाई नहीं दिए तो भरत ने हनुमान से कहा, "वीरवर! कहीं आपने झूठमूठ ही तो आने की बात नहीं कह दी है?"

हनुमान बोले, "मेरा कथन एक दम सत्य है। वे पहुँचने ही वाले हैं।" और तभी उन्हें पुष्पक विमान दिखाई दे गया। फिर तो सभी आकाश की ओर देखने और श्रीराम की जय का घोष करने लगे। सभी लोग अपने-अपने वाहनों से उतर पड़े। इतने में विमान धरती पर आ गया। भरत ने अर्घ्य-पाद्य द्वारा श्रीराम का विधिवत् पूजनकर साष्टांग प्रणाम किया। फिर सुग्रीव से मिलते हुए भरत ने कहा, "आप हमारे पांचवें भाई हैं।" फिर वे अन्य वानर वीरों से मिले। फिर राक्षसेन्द्र विभीषण से मिलते हुए भरत ने उनके प्रति कृतज्ञ भाव व्यक्त किया। फिर शत्रुघ्न ने भाइयों और भाभी को प्रणाम किया। श्रीराम ने माताओं के चरण

हुए और फिर कुलगुरु वसिष्ठ को प्रणाम किया।

भरत ने चरण-पादुकाएं श्रीराम के चरणों में पहना दीं। फिर बोले, "प्रभो! मेरे पास धरोहर रूप में रखा हुआ आपका यह राज्य मैंने आपके श्री चरणों में लौटा दिया।"

वहां से विमान पर बैठकर श्रीराम भरत के नन्दिग्राम वाले आश्रम में गए और वहां पहुँचकर विमान को कुबेर के पास पहुँचा देने के लिए कहा।

भरत ने श्रीराम से विनयपूर्वक अभिषेक करवाने की प्रार्थना की। श्रीराम ने 'तथास्तु' कहकर भरत की बात मान ली। नाई बुलाया गया। उसने श्रीराम की जटाओं को कतर दिया। फिर स्नान करके और वस्त्राभूषणों से सज्जित होकर श्रीराम सिंहासन पर बैठे। माताओं ने भगवती सीता का शृंगार किया। समस्त वानर-वीरों को भी वस्त्रालंकारों से भूषित किया गया। सारथि सुमन्त्र रथ ले आए। श्रीराम रथारूढ़ हुए। शेष समागत अतिथि भी रथों पर चढ़कर नगर की शोभा देखने चले।

उधर मंत्रिगण अभिषेक के सम्बन्ध में मंत्रणा करने लगे। सेवकों को समस्त आवश्यक सामग्री एकत्र करने की आज्ञा दी गई।

भरत श्रीराम के रथ के सारथि बने। शत्रुघ्न छत्र पकड़े हुए थे। लक्ष्मण चंवर डुला रहे थे। विभीषण भी पास खड़े थे। वे भी चंवर-डुला रहे थे। सुग्रीव गजराज पर आरूढ़ होकर आ रहे थे। वानर-वीर भी हाथियों पर सवार थे। बाजे बज रहे थे। दुंदुभि और पटह-निनाद के कारण कुछ सुनाई नहीं पड़ता था। दोनों ओर अट्टालिकाओं से पुष्प-वर्षा हो रही थी। श्रीराम के रथ के आगे अग्रगामी सैनिकों की टुकड़ी चल रही थी। मंत्रियों, ब्राह्मणों और प्रजाजनों से घिरे हुए श्रीराम नक्षत्रों से घिरे चन्द्रमा की तरह शोभायमान हो रहे थे। श्रीराम अपने मंत्रियों से सुग्रीव की मित्रता, हनुमान के पराक्रम और वानर वीरों के शौर्य की चर्चा करते जाते थे।

इस शोभायात्रा के साथ श्रीराम ने धन-धान्य से परिपूर्ण अयोध्या पुरी में प्रवेश किया। अट्टालिकाओं में बैठी हुई महिलाओं ने पुष्पवृष्टि द्वारा उनका अभिनन्दन किया। श्रीराम राज प्रासाद पहुंचे। श्रीराम की आज्ञा से कपीन्द्र सुग्रीव को श्रीराम के निजी प्रासाद में ठहराया गया।

भरत राज्याभिषेक समारोह के कार्यों की तैयारी में लग गए। भरत के कहने से सुग्रीव ने चार वानर-वीरों को सुवर्णघट देकर चार समुद्रों का जल लाने की आज्ञा दी। इस कार्य में जाम्बवान्, हनुमान, गवय और ऋषभ को नियुक्त किया गया था। वे चार समुद्रों के अतिरिक्त पांच सौ नदियों का जल भी अभिषेक के लिए ले आए। यह सागर-सरिताओं का पवित्र जल कुलगुरु वसिष्ठ को सौंप दिया गया।

अभिषेक समारोह का समारम्भ हुआ। श्रीराम-सीता को रत्न-जटित चौकी पर बिठाकर वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, कात्यायन, सुयज्ञ, गौतम और विजय—इन आठ वेदविदों ने उनका अभिषेक किया। सब से प्रथम औषधियों के रसों तथा सागर-सरिताओं के

जल से ब्राह्मणों ने अभिषेक किया, तदनन्तर सोलह कन्याओं ने, मंत्रियों ने, प्रमुख योद्धाओं और प्रतिष्ठित नागरिकों ने अभिषेक किया। फिर कुलगुरु वसिष्ठ ने पारम्परिक राजमुकुट उन्हें पहनाया। श्वेत राज-छत्र उनके ऊपर तन गया। सुग्रीव और विभीषण ने श्वेत चंवर डुलाने का कार्य सम्पन्न किया। देवराज इन्द्र की भेजी हुई सौ कमलों की माला और एक मुक्ताहार भी उनके वक्ष की शोभा बढ़ाने लगे।

श्रीराम ने ब्राह्मणों को एक लाख गौएं, एक लाख घोड़े और सौ सांड दान किए। इनके अतिरिक्त तीस कोटि सुवर्ण मुद्राएं तथा वस्त्राभूषण भी दान में दिये। महात्मा सुग्रीव को सोने की बहुमूल्य माला तथा अंगद को नीलम जटित बाजूबन्द भेंट किए। सीता जी ने अपने गले का मुक्ताहार उतारकर पवनपुत्र हनुमान को भेंट किया। अन्य वानर वीरों का भी वस्त्राभूषण देकर सत्कार किया गया। लंकापति विभीषण का भी यथोचित सत्कार किया गया।

अभिषेक सम्पन्न होने पर सभी वानर और राक्षस अपने-अपने स्थानों को लौट गये।

श्रीराम धर्मपूर्वक प्रजा का शासन करने लगे। उन्होंने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण! मैं तुम्हारा युवराज पद पर अभिषेक करना चाहता हूँ।"

पर बहुत समझाने-बुझाने पर भी सुमित्रानन्दन ने इसे स्वीकार नहीं किया। तब श्रीराम ने महात्मा भरत को युवराज पद पर अभिषिक्त किया।

इसके पश्चात् श्रीराम ने प्रजा-पालन करते हुए अनेक यज्ञों का अनुष्ठान किया।

श्रीराम के लम्बे राज्यकाल में कोई विधवा नहीं थी, कोई रोगी नहीं था और न सर्प, बिच्छु जैसे जन्तुओं का भय था। कोई चोर-डाकू नहीं था, कोई भी प्रजाजन समाज विरोधी कार्य नहीं करता था। बाल-मृत्यु नहीं होती थी। सभी अपनी पूर्ण आयु का उपभोग करके पके फल की तरह स्वाभाविक मृत्यु प्राप्त करते थे। सभी लोग स्वस्थ-प्रसन्न और कर्त्तव्य-परायण थे। रामराज्य में कभी अकाल मृत्यु, दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि या अनावृष्टि नहीं होती थी। धरती माता उत्तम अन्न, फल, पुष्प, वृक्ष और खनिजों से भरपूर थी। चारों वर्णों के लोग अपने-अपने कर्त्तव्य में तत्पर रहते थे।

●●●